कृष्णदास संस्कृत सीरीज

१०८

# षट्चक्रनिरूपणम्

सम्पादकः

गोस्वामी प्रह्लाद गिरि वेदान्तकेशरी



कृष्णदास अकादमी · वाराणसी

2

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

१०८

श्रीपूर्णानन्दयतिविरचितम्

# षट्चक्रनिरूपणम्

कालीचरणकृत 'श्लोकार्थपरिष्कारिणी'-शंकरकृत 'षट्चक्र-
भेदटिप्पणी'-विश्वनाथकृत 'षट्चक्रविवृत्ति' संस्कृतव्याख्यासमेत-
सविमर्श 'प्रह्लाद' हिन्दीव्याख्यासहितम्

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च

गोस्वामी प्रह्लाद गिरिः

वेदान्तकेशरी

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८८

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४५
मूल्य : रु० ३५–००



पो० बा० नं० १११८
चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग ), वाराणसी–२२१००१

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो. बा. १००८, वाराणसी–२२१००१ ( भारत )
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
108
****

# SAṬCHAKRANIRŪPAṆA

OF

## SHREE PURṆANAND YATI

Edited With

*'Shlokarthaparishkarini' of Kalicharan, 'Shatchakrabhedatippani' of Shankar, 'Shatchakravivritti' of Vishwanath. Sanskrit Commentaries, 'PRAHLAD' HINDI COMMENTARY & CRITICAL NOTES*

Hindi Commentator & Editor
**Gōswāmi Prahlād Giri**
*Vedantakeshari*

KRISHNADAS ACADEMY
*VARANASI-221001*
1988

Oriental Publishers & Distributors

POST BOX No. 1118

Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi-221001

( INDIA )

First Edition

1988

Price Rs. 35-00

Also can be had from

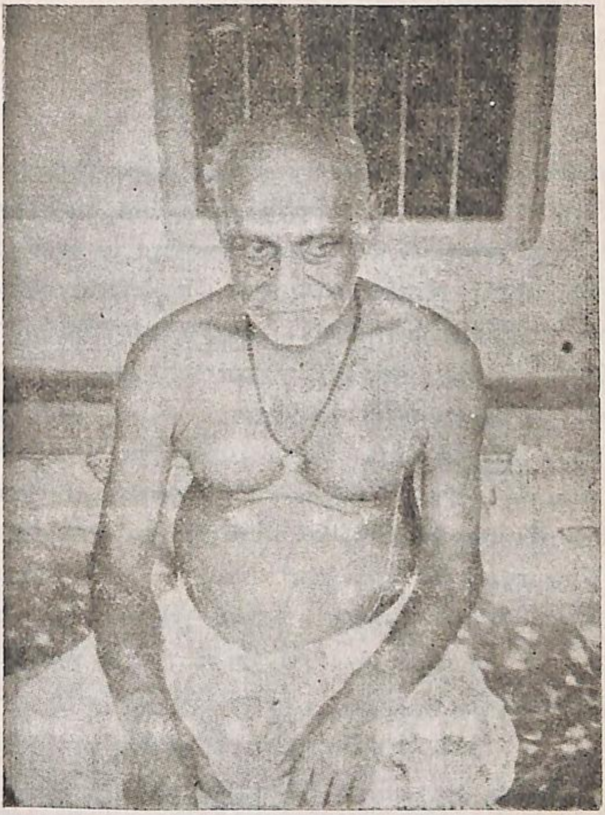
Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 ( India )

Phone : 63145

## समर्पणम्



यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतावचनानुसारं

प्रातःस्मरणीय-पूज्य-परमगुरुवर्य-

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र-महामाहेश्वर-महामहोपाध्याय-

ब्रह्मलीन-

*पण्डित रामेश्वर झा 'शिवयोगि' महोदयानां*

पुण्यस्मृतौ सादरम्...............

दीपावली
वि. सं. २०४५
वाराणसी

प्रह्लादः

# सम्पादकीय

बाल्यावस्थासे ही तन्त्र-मन्त्रके प्रति मेरी रुचि रही है। मैं केवल मन्त्र-यन्त्र॰ को ही तन्त्र मानता था, अतः इष्टोपासनापूर्वक मन्त्र-यन्त्रोंसे कार्यसिद्धिके लिए तान्त्रिक उपासना करता था, योगतन्त्रके सम्बन्धमें अज्ञानी था तथा यह भी उस समय नहीं जानता था कि योगतन्त्रसे भी किस प्रकार मोक्षप्राप्ति होती है। वस्तुतः इसी योगतन्त्रका ही अनुसन्धान करता था, किन्तु अज्ञानवश योगतन्त्रको ही तन्त्रोपासना मानता था, तन्त्रमें योगतन्त्र नामक शब्दका मेरी स्मृति पटलमें उद्‌भासित नहीं हुआ था। अतः तन्त्रका नाम लेकर ज्ञानार्जन हेतु अनेक साधु-सन्तोंसे मिलता था, किन्तु मुझे सन्तोषकी प्राप्ति नहीं होती थी। इसी बीचमें मेरे पूज्य गुरुवर्य स्वर्गीय-**म० म० पण्डितराज डॉ० गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी 'शिव'जी** ( जो अपने गुरुवर्यसे शक्तिपातद्वारा शिवस्वरूपमें प्रतिष्ठित थे ) मुझे उनके गुरु **महामहोपाध्याय पण्डित रामेश्वर झा 'शिवयोगी'**जीके पास साथमें लेकर गये। जैसे ही हम उनके निवास-स्थान ( श्रीरामेश्वर जोशीजीके घर, कोल्हुआ, वाराणसी ) पर पहुँचे, वैसे ही उन्होंने कहा—"मैं जिसे खोजता था, वही आ गया है।" तब उनसे मैंने पूछा—"क्यों ?" उन्होंने कहा—"तुम भी तो मुझे खोज रहे हो।" रामकृष्ण परमहंसने सच ही कहा है—"गुरु अपने आप मिल जाते हैं, जब जिज्ञासा तीव्र हो जाती है।"

अद्‌भुत घटनाएँ घटती थीं नित्य-प्रतिदिन। उनके पास कौन आ रहा है—इसे कमरेके अन्दरमें रहकर बिना देखे पहलेसे ही वे बता देते थे।

समयके साथ मैं भी प्रतिदिन प्रातः-सायं उनका दर्शन करता था। पहले पहले मुझे उन्होंने विशेषरूपसे इष्टोपासना, तन्त्रोपासना आदिका ज्ञान प्रदान किया, जिसकी मैं पहलेसे ही उपासना करता आ रहा था। तथापि मेरी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। कालक्रमसे मुझे उन्होंने प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, कश्मीरी शैवागम आदिका ज्ञान प्रदान किया। पुनः श्रीचक्रोपासना तथा साधनाकी शिक्षा उन्होंने प्रदान की। पहलेसे मैं योगाभ्यास करता आ रहा था अतः उन्होंने अन्तमें योगतन्त्रका ज्ञान अर्थात् षट्‌चक्रनिरूपण करके कुण्डलिनी-जागरणकी साधना करनेका ज्ञान प्रदान किया। उनके सान्निध्यमें रहकर मैं भी साधनामें रत रहा। जब उनके निर्वाणका समय आ गया तब उससे कुछ माह पूर्व उन्होंने मुझे शक्तिपातसे शिवस्वरूपमें प्रतिष्ठापित कर दिया। यह तो स्वानुभूति ही है, वर्णनातीत है। कुछ माहके पश्चात् 'मैं स्वरूपमें स्थित हो रहा हूँ' कहकर उन्होंने निर्वाणको प्राप्त किया। वे अद्वितीय शैवागमके 'शिवयोगी'

साक्षात् शिव थे। षट्चक्रके चिन्तनसे, कुण्डलिनी-जागरणसे जो फल प्राप्त होते हैं, वे सारे फल उनमें विद्यमान थे।

मेरी बहुत दिनसे यही इच्छा थी कि आगम शास्त्रपर कुछ विचार करूँ। संयोगसे प्रकाशक महोदयने मेरे पास आकर 'षट्चक्रनिरूपणम्'की व्याख्या हिन्दीमें करनेको कहा। अतः प्राप्त-गुरुज्ञानसे यथाशक्ति मैंने इसका विवेचन किया है। तान्त्रिक योगियोंके लिए कहाँतक मैं सहायक बन सका हूँ--इसका स्वयं विचार करेंगे। ग्रन्थ, टीका तथा षट्चक्रयोगके सम्बन्धमें विशेषरूपसे भूमिकामें सुविस्तृत विवेचन किया गया है, अतः पाठक उसके अवलोकन करनेका कष्ट करेंगे।

जिनकी कृपा एवं सहायतासे मेरा कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ है उन्हें कृतज्ञताका प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। अतः--

सर्वप्रथम मैं अपने पूज्य गुरुवर्य स्वर्गीय **म० म० पण्डितराज डॉ० गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी' शिव'जी** ( काशीपण्डितसभाध्यक्ष, राष्ट्रपतिसम्मानित)का स्मरण करता हूँ कि जिनकी कृपासे मैं आज संस्कृतवाङ्मयमें निर्बाध प्रविष्ट हुँ। साथमें मुझे अपने शक्तिपातके द्वारा शिवस्वरूपमें प्रतिष्ठित करानेवाले सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामाहेश्वर प्रातःस्मरणीय पूज्य परमगुरुवर्य स्वर्गीय **महामहोपाध्याय पण्डित रामेश्वर झा 'शिवयोगी'जी** ( राष्ट्रपतिसम्मानित )का हृदयमें स्वात्मैकस्वरूपसे चिन्तन करता हूँ। इन्हींके चरणकमलयुगलालम्बी होनेसे मुझे चक्रज्ञानकी प्राप्ति हुई है, अतः उन **'शिवयोगी'**जीको इस ग्रन्थका समर्पण करना उचित समझता हूँ। साथ ही श्रीनेपाली संस्कृत महाविद्यालय, मङ्गलागौरी, वाराणसीके प्राचार्य पूज्य गुरुवर्य स्वर्गीय **दामोदरशर्मा भारद्वाजजी** ( जिनका स्वर्गवास विगत १०-९-१९८७ ई० सन्‌को हुआ है )को अपने श्रद्धासुमनोंका अर्पण करता हूँ कि जो मेरे अच्छे पथप्रदर्शक रहे। साथ-साथ पूज्य गुरुवर्य **आचार्य पञ्चानन गिरिजी** (एम० ए० अंग्रेजी), बोध गया मठ, वैजनत्था, वाराणसी,के चरणकमलयुगलमें श्रद्धावनत हूँ कि जिनके आशीर्वादसे आज मेरी लेखनी अविरामगतिसे कार्यरत है।

अन्तमें इस ग्रन्थके प्रकाशक **'कृष्णदास अकादमी'**के सञ्चालकजीको अशेष धन्यवाद प्रदान करता हूँ कि जिन्होंने इसे प्रकाशित कर तन्त्रागम योगियोंका बड़ा उपकार किया है तथा प्राचीन तन्त्रागमकी रक्षा की है। सर्वान्तमें पाठकोंको मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। इति शिवम्।

दीपावली
वि० सं० २०४५ **—प्रह्लाद**
वाराणसी

# भूमिका

प्रत्येक प्राणीका परम लक्ष्य है—परमपुरुषार्थ मोक्षको प्राप्त करना। अतः वह अपनी रुचिके अनुसार मोक्षके मार्गका अनुसरण करता है। सभी मार्ग उसी एक मात्र चौराह—ईश्वरको प्राप्त करते हैं। महिम्नः स्तोत्रमें भी कहा गया है—

"रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।"

'हे ईश्वर ! जिस प्रकार नदियाँ टेढ़े-मेढ़े विभिन्न मार्गो से जाकर एक मात्र सागरको प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार विभिन्न रुचिवाले पुरुष भिन्न-भिन्न मार्गो का अनुसरणकर एक मात्र आपको ही प्राप्त करते हैं।'

विभिन्न रुचियोंके कारण मार्ग भी अनेक हो गये हैं; जैसे—कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, योगमार्ग तथा ज्ञानमार्ग। इन सभी मार्गो का लक्ष्य एक मात्र परमपुरुषार्थ मोक्षको प्राप्त करना है। उपासनाके अन्तर्गत तन्त्रोपासना आती है, किन्तु योग तथा तन्त्र दोनों मिलकर योगतन्त्रमार्ग नामक एक और मार्गका निर्देशन करते हैं। प्रस्तुत कुण्डलिनीयोग योगतन्त्रके अन्तर्गत आता है। कुण्डलिनीयोगके अन्य नाम जैसे—लययोग तथा षट्चक्रभेद हैं। इसी षट्चक्रभेदके विधानको बतलानेवाला ग्रन्थ **'षट्चक्रनिरूपणम्'** है।

**ग्रन्थकारका परिचय :—**

तन्त्रागम साहित्यको व्यवस्थित रूप प्रदान करनेवाले बहुतसे तान्त्रिक समय-समयपर अवतरित हुए हैं। उन तन्त्रावतारोंमें **परमहंस स्वामी पूर्णानन्द यति** अन्यतम हैं, कि जिन्होंने **'षट्चक्रनिरूपणम्'**की रचना की है। स्वामी पूर्णानन्द यति जीका जन्म बङ्ग प्रान्तके म्येंनसिंह जिलेके एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। ये षोलहवीं शताब्दीके एक महान् तान्त्रिक साधक थे। जब इन्होंने गुरुसे दीक्षाग्रहणकर गुरूपदिष्ट साधनासे पूर्ण आनन्दको प्राप्त किया, तब गुरुने इनका नाम पूर्णानन्द रक्खा, जो कि आगे चलकर परमहंस स्वामी पूर्णानन्द यतिके नामसे प्रसिद्ध हुए।

**ग्रन्थका परिचय :—**

परमहंस स्वामी पूर्णानन्द यति द्वारा विरचित **'श्रीतत्त्वचिन्तामणि'** नामक ग्रन्थ तन्त्रागममें सर्वप्रसिद्ध है। इसमें पचीस अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें तत्त्वबोधका निरूपण किया गया है। द्वितीय अध्यायमें दीक्षाकी आवश्यकता तथा विधियोंका निरूपण किया गया है। तृतीय अध्यायमें दीक्षाके लिए स्थान चयन, कूर्मचक्र, वस्तु-

याग तथा विघ्ननाशक मण्डलके साथ देवताओंके मन्त्र एवं मण्डल, उनकी पूजा आदिका निरूपण किया गया है। पञ्चम अध्यायमें सहायक देवता तथा दीक्षामें उनके स्थान एवं उनकी पूजा, कुम्भके लिए धातु तथा आकार आदिका निरूपण किया गया है। षष्ठ अध्यायमें षट्चक्रोंका निरूपण किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ **'षट्चक्रनिरूपणम्'** मूल ग्रन्थ श्रीतत्त्वचिन्तामणिका षष्ठ अध्याय है। इसमें (१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध तथा (६) आज्ञा—इन छहों चक्रोंका निरूपण किया गया है। अतः इस ग्रन्थका नाम 'षट्चक्रनिरूपण' है। इसमें कुल पचपन श्लोक हैं। इन श्लोकोंका विषय भेदसे निम्न प्रकारसे विभाजन किया गया है—

(१) श्लोकसंख्या १ से ३ तक विभिन्न नाड़ियोंका निरूपण किया गया है।

(२) श्लोकसंख्या ४ से १३ तक मूलाधार चक्रका निरूपण किया गया है।

(३) श्लोकसंख्या १४ से १८ तक स्वाधिष्ठान चक्रका निरूपण किया गया है।

(४) श्लोकसंख्या १९ से २१ तक मणिपूर चक्रका निरूपण किया गया है।

(५) श्लोक संख्या २२ से २७ तक अनाहत चक्रका निरूपण किया गया है।

(६) श्लोकसंख्या २८ से ३१ तक विशुद्ध चक्रका निरूपण किया गया है।

(७) श्लोकसंख्या ३२ से ३८ तक आज्ञा चक्रका निरूपण किया गया है।

(८) श्लोकसंख्या ३९ से ४९ तक सहस्रारका निरूपण किया गया है।

(९) श्लोकसंख्या ५० से ५५ तक कुण्डलिनीको मूलाधारसे सहस्रार पर्यन्त एवं सहस्रारसे मूलाधार पर्यन्त ले जाने-आनेकी विधि, गुरु प्रशंसा तथा माहात्म्य आदिका निरूपण किया गया है।

**ग्रन्थके टीकाकार एवं उनकी टीकाएँ :—**

**'षट्चक्रनिरूपणम्'** योगतन्त्रका अद्वितीय सुव्यवस्थित ग्रन्थ है। अतः इसके महत्त्वको देखते हुए तान्त्रिक टीकाकारोंने इसकी टीकाएँ की हैं। योगतन्त्र दुरवबोधगम्य होनेसे प्रस्तुत ग्रन्थकी टीकाएँ अल्पसंख्यामें मिलती हैं। ग्रन्थ तथा टीकाओंसे विषयज्ञान तो हो जाता है, किन्तु गुरुपरम्परासे प्राप्त ज्ञानसे ही साधक सिद्ध होता है—यह निष्पक्ष निर्णय है। ग्रन्थका ज्ञान स्पष्ट रूपसे साधकको प्राप्त हो, इस उद्देश्यसे इसकी संस्कृत टीकाएँ की गयी हैं; जो निम्न प्रकारसे हैं—

(१) श्रीकालीचरणकृत 'श्लोकार्थपरिष्कारिणी'—संस्कृत टीकाका प्रकाशन ई० सन् १८५८ में हुआ था। इस संस्करणके सम्पादक आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश थे, प्रेस 'सुचारु प्रेस, कलकता' रहा।

(२) ई० सन् १८६९ में श्रीकालीचरणकृत टीका तथा **श्रीरमावल्लभकृत संस्कृत टीका**—इन दोनोंका प्रकाशन हुआ था, जिसके सम्पादक श्रीकालीदास भट्टाचार्य थे।

(३) ई० सन् १९४१ में **श्रीविश्वनाथकृत 'षट्चक्रविवृत्ति'** नामक संस्कृत टीकाका प्रकाशन हुआ था। इसके सम्पादक आर्थर एवेलन् महोदय थे।

(४) ई० सन् १९४१ में **श्रीशङ्करकृत 'षट्चक्रभेदटिप्पणी'** नामक संस्कृत टीकाका प्रकाशन हुआ था। इसके सम्पादक आर्थर एवेलन् महोदय थे।

उपर्युक्त 'षट्चक्रविवृत्ति' एवं 'षट्चक्रभेदटिप्पणी'—दोनों टीकाओंका प्रकाशन ई० सन् १९४१ में आर्थर एवेलन् महोदयके प्रवर्तनसे हुआ था।

संस्कृत टीकाओंमें उपर्युक्त चार टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। इन टीकाओंमें विशद विवेचन किया गया है। संस्कृतज्ञोंके लिए ये टीकाएँ बहुत ही उपयोगी हैं। जो पाठक संस्कृत नहीं जानते हैं उनके लिए राष्ट्रभाषा हिन्दीका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होनेसे प्रायः सभी शास्त्रोंके हिन्दी अनुवाद आज प्रचलित हैं। अतः इस दृष्टिसे 'षट्चक्रनिरूपणम्'की हिन्दी टीकाएँ कुछ विद्वानोंने की हैं, जो कि वर्तमान अप्राप्त हैं। इस आवश्यकताकी पूर्ति हेतु प्रस्तुत संस्करणका प्रकाशन किया गया है। प्रति श्लोकके अर्थके साथ-साथ विमर्शमें श्लोकके प्रतिपदोंके गूढ़ार्थ विवेचन किये गये हैं, जो कि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन कारणोंसे यह ग्रन्थ सुबोधगम्य हो गया है।

**षट्चक्रका विवेचन :—**

मानव शरीरमें बहत्तर हजार नाड़ियाँ विद्यमान हैं। ये नाड़ियाँ अपने मूलस्थानसे शरीरके विभिन्न भागमें गयी हैं। जहाँपर अनेक नाड़ियाँ एकत्र हो जाती हैं वहाँपर एक चक्र-सा स्थान बन जाता है। इस प्रकारसे शरीरमें छः चक्र है। इन चक्रोंका आकार कमल फूलके समान होनेसे इन्हें कमल व पद्म भी कहते हैं। नाड़ियोंके विशेष रूपसे बिखर जानेसे दलोंका भी निर्माण हो जाता है। इस प्रकारसे शरीरमें षट्कमल स्थित हैं। (१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपुर, (४) अनाहत, (५) विशुद्ध, तथा (६) आज्ञा। सहस्रार भी कमलाकार होनेसे उसे भी सहस्रदल कमल कहते हैं। इन कमलोंके निर्माणके प्रकारको जाननेके लिए सबसे पहले नाड़ियोंके ज्ञान आवश्यक हैं। हम उपयोगी नाड़ियोंका सर्वप्रथम विवेचन करेंगे। उसके बाद प्रत्येक चक्रका विवेचन करेंगे। उसके बाद कुण्डलिनीजागरण अर्थात् चक्रभेद आदिका विवेचन करेंगे।

**नाड़ियोंका विवेचन :—**

मानव शरीरमें स्थित बहत्तर हजार नाड़ियोंमें तीन नाड़ियाँ मुख्य मानी गयी हैं—( १ ) इडा, ( २ ) पिङ्गला तथा ( ३ ) सुषुम्णा। ये नाड़ियाँ अपने उद्गम स्थानसे निकलकर शरीरके विभिन्न भागमें गयी हैं। नाड़ियोंके उद्गम स्थानको नाडीकन्द कहते हैं। इस नाडीकन्दसे बहत्तर हजार नाड़ियोंकी उत्पत्ति हुई है। उपर्युक्त तीनों नाड़ियोंका उत्पत्ति स्थान भी वही नाडीकन्द है। गुदासे दो अंगुल ऊपर तथा मेढ़्से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तार पक्षीके अण्डाकार यह नाडीकन्द स्थित है। नाडीकन्दके ऊपर शरीरके पीछले भागमें मेरुदण्ड स्थित है। इडा नाड़ी इसी नाडीकन्दसे निकलकर मेरुदण्डके वाम भागमें होकर आज्ञा चक्रसे होकर नासारन्ध्र पर्यन्त गयी है। इसी प्रकार पिङ्गला दक्षिण भागमें होकर आज्ञा चक्रसे होकर नासारन्ध्र पर्यन्त गयी है। सुषुम्णा कन्दमूलसे निकलकर मेरुदण्डके मध्यमें होकर सहस्रार पर्यन्त गयी है। इडा नाड़ीका अधिष्ठातृ देवता चन्द्र है, अतः इसे चन्द्रनाड़ी भी कहते हैं। यह अमृत विग्रहवाली तथा शुक्ल वर्णवाली है। इससे शीतलताकी अनुभूति होती है। पिङ्गलाका अधिष्ठातृ देवता सूर्य है, अतः इसे सूर्य-नाड़ी भी कहते हैं। यह सूर्यविग्रहा तथा दाडिमीकेसरके समान प्रभावाली है। इससे उष्णताकी अनुभूति होती है। सुषुम्णाको चन्द्रसूर्याग्निरूपा तथा तीन गुणोंवाली कहा गया है। इसका मुखभाग खिले हुए धतूरेके पुष्पके समान है।

इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा—ये तीनों नाड़ियाँ त्रिवेणीके रूपसे ग्रन्थिभाव-को प्राप्तकर भ्रूमध्यमें अर्थात् आज्ञा चक्रमें मुक्त त्रिवेणी कहलाती हैं तथा ध्वजमूलमें अर्थात् मूलाधार चक्रमें युक्त त्रिवेणी कहलाती हैं।

सुषुम्णा नाड़ीके मध्यमें स्थित छिद्र भागमें वज्रा नाड़ी स्थित है। यह वज्रा नाड़ी मेढ़ प्रदेशसे निकलकर शिरमें स्थित सहस्रार पर्यन्त गयी है। इसी वज्रा नाड़ीके मध्यमें स्थित छिद्र भागमें चित्रिणी नाड़ी स्थित है। यह चित्रिणी नाड़ी सहस्रार पर्यन्त गयी है। इसी चित्रिणी नाड़ीसे समस्त कमल गूँथे हुए हैं, अर्थात् यही एक मात्र नाड़ी समस्त कमलोंका भेदन करती है। इसी नाड़ीके मध्यमें स्थित छिद्र भागको ब्रह्म नाड़ी कहते हैं। यह छिद्र मूलाधार स्थित स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रसे आरम्भकर सहस्रारमें स्थित ब्रह्म पर्यन्त है; अतः यह छिद्र ब्रह्म नाड़ी कहलाता है। सुषुम्णा नाड़ीके मुखप्रदेश अर्थात् कन्द एवं सुषुम्णाके सन्धिस्थानको ब्रह्मद्वार कहते हैं। सहस्रारमें स्थित ब्रह्मसे अमृतका धार यहीं तक प्रवाहित होता रहता है।

**मूलाधार चक्र :—**

सुषुम्णा नाड़ीके मुखसे संलग्न ध्वजके नीचे तथा गुदाके ऊपर स्थित प्रदेशमें मूलाधार पद्म विद्यमान है। इसका मुख नीचेकी ओर है। इसके चार दल हैं। दलों-

का रँग रक्त है। इन चारों दलोंपर सोनेके समान आभावाले व, श, ष, स—ये चार अक्षर विराजमान हैं।

मूलाधार पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें एक चतुर्कोणाकार धरामण्डल है। इसका वर्ण पीत है। यह आठों दिशाओंके आठ शूलोंसे घिरा हुआ है। उसीके मध्यमें अधोभागमें धराबीज 'लँ' विराजमान है। यह पीत वर्णवाला है। इसकी चार भुजाएँ हैं। इसका वाहन ऐरावत हाथी है।

धराबीजके बिन्दुके मध्यमें शिशुरूप ब्रह्मा विराजमान है। यह रक्तवर्णवाला है। इसके चार मुख तथा चार बाहु हैं। इसकी चारों भुजाओंमें दण्ड, कमण्डलु, अक्षसूत्र तथा अभयमुद्रा सुशोभित हैं। यह ब्रह्मा मूलाधार पद्मका अधिष्ठातृ-देवता है।

मूलाधार पद्मकी अधिष्ठात्री देवी डाकिनी शक्ति है। यह पद्मकी कर्णिकामें विराजमान है। इसके अङ्ग उज्ज्वल हैं। यह रक्त नेत्रवाली हैं। इसकी चार भुजाएँ हैं। इन चारों भुजाओंमें दण्ड, कमण्डलु, अक्षसूत्र तथा अभयमुद्रा सुशोभित हैं।

मूलाधार पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें विद्युदाकार त्रैपुर नामक एक त्रिकोण स्थित है। उसके मध्यमें कामवायु तथा कामबीज स्थित है जो रक्त वर्णवाला है। इसीके ऊपर श्याम वर्णवाला स्वयम्भु लिङ्ग विराजमान है। इसीके ऊपरमें कुण्डलिनी शक्ति साढ़े-तीन लपेटोंसे बलयाकारमें स्थित है। यह अपने मुखसे स्वयम्भु लिङ्गके छिद्रको ढक रक्खी है। इसी कुण्डलिनीके मध्यमें अभेद रूपसे परशक्ति चित्कला स्थित है।

**स्वाधिष्ठान चक्र :—**

ध्वजके मूलप्रदेशमें स्वाधिष्ठान पद्म विद्यमान है। इसके छः दल हैं। दलोंका रँग सिन्दूर वर्ण है। इन छहों दलोंपर विजलीके समान आभावाले बिन्दुयुक्त ब, भ, म, य, र, ल—ये छः अक्षर विराजमान हैं।

स्वाधिष्ठान पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें अर्धचन्द्राकार एक जलमण्डल है। इसका वर्ण शुक्ल है। उसीके मध्यमें वरुणबीज 'वँ' विराजमान है। यह शरत्कालीन चन्द्रमाके समान अत्यन्त शुभ्र है। इसके हाथमें पाश सुशोभित है। इसका वाहन मकर है।

वरुणबीजके बिन्दुके मध्यमें विष्णु विराजमान है। यह नील वर्णवाला है। इसकी चार भुजाएं हैं। भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म सुशोभित हैं। वक्षस्थलमें श्रीवत्सचिह्न एवं कौस्तुभमणि सुशोभित हैं। यह पीत वस्त्रधारी है। यह युवक है। विष्णु स्वाधिष्ठान पद्मका अधिष्ठातृ-देवता है।

स्वाधिष्ठान पद्मकी अधिष्ठात्री देवी राकिणी शक्ति है। यह विष्णुके पार्श्वभागमें विराजमान है। इसका वर्ण श्याम है। इसकी चार भुजाएँ हैं। इन भुजाओंमें शूल, अब्ज, डमरु एवं टङ्क सुशोभित हैं।

**मणिपूर चक्र :—**

नाभिप्रदेशमें मणिपूर पद्म विद्यमान है। इसके दस दल हैं। दलोंका रँग मेघवर्ण है। इन दसों दलोंपर नीलकमलके समान प्रकाशवाले सचन्द्रबिन्दुयुक्त ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—ये दस अक्षर विराजमान हैं।

मणिपूर पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें बहिर्भागमें स्थित तीन स्वस्तिकोंसे युक्त त्रिकाणाकार एक वह्निमण्डल है। इसका वर्ण रक्त है। उसीके मध्यमें वह्निबीज 'रँ' विराजमान है। यह प्रातःकालीन सूर्यके समान रक्त वर्णवाला है। यह चतुर्भुज है। भुजाओंमें वज्र, शक्ति, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं। इसका वाहन मेष है।

वह्निबीजके गोदमें रुद्र विराजमान है। यह रक्ताकार है किन्तु भस्म लगाये रहनेसे इसका शरीर श्वेत दीखाई दे रहा है। यह वृद्धरूपी है। इसकी दो भुजाएँ। हैं भुजाओंमें वर एवं अभय मुद्रा सुशोभित हैं। यह रुद्र मणिपूर पद्मका अधिष्ठातृ-देवता।

मणिपूर पद्मकी अधिष्ठात्री देवी लाकिनी शक्ति है। यह रुद्रके पार्श्वदेशमें विराजमान है। इसका वर्ण श्याम है। इसकी चार भुजाएँ हैं। भुजाओंमें वज्र, शक्ति, अभय एवं वरमुद्रा सुशोभित हैं। यह पीत वस्त्रादि विविध रचनाओंसे अलंकृत तथा प्रसन्न चित्तवाली है।

**अनाहत चक्र :—**

हृदय प्रदेशमें अनाहत पद्म विद्यमान है। इसके बारह दल हैं। इन बारह दलोंपर सिन्दूरके समान रङ्गवाले क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ—ये बारह अक्षर विराजमान हैं।

अनाहत पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें षट्कोणाकार एक वायुमण्डल है। यह धूम्र वर्णवाला है। उसीके मध्यमें वायुबीज 'यँ' विराजमान है। यह धूमावलीके कारण धूसर वर्णवाला है। इसकी चार भुजाएँ हैं। भुजाओंमें अंकुश सुशोभित है। इसका वाहन कृष्णसार मृग है।

वायुबीजके मध्यमें ईश विराजमान है। यह हंसके समान श्वेत वर्णवाला है। इसकी दो भुजाएँ हैं। भुजाओंमें वर एव अभय मुद्रा सुशोभित हैं। अनाहत चक्रका अधिष्ठातृ-देवता ईश है।

अनाहत पद्मकी अधिष्ठात्री देवी काकिनी शक्ति है। यह ईशके पार्श्वदेशमें विराजमान है। इसका वर्ण नवीन विजलीके समान पीत है। इसकी तीन आँखें हैं।

तथा चार भुजाएँ हैं । भुजाओंमें पाश, कपाल, वर एवं अभय मुद्रा सुशोभित हैं । यह समस्त अलंकारोंसे भूषित, कङ्काल मालाका धारण करनेवाली, पूर्ण रसार्द्र हृदयवाली तथा प्रसन्न चित्तवाली है ।

अनाहत पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें एक त्रिकोणाकार शक्ति अर्थात् योनि है । यह योनि कोरोंडो विद्युत्के समान प्रकाशवाली तथा अत्यन्त कोमल है । इसी त्रिकोणके मध्यमें बाण नामक शिवलिङ्ग विराजमान है । जिस प्रकार मणिमें सूक्ष्म छिद्र रहता है, उसी प्रकार बाणलिङ्गके अग्रभागमें सूक्ष्म छिद्र है । यह बाण लिङ्ग अत्यन्त कमनीय है, कामकी शोभाका आलय है । यह सोनेके समान वर्णवाला है । इसी कर्णिकाके मध्यमें वायुसे आन्दोलनरहित दीपशिखाकार हंसरूपी जीवात्माका निवासस्थान है ।

**विशुद्ध चक्र :—**

कण्ठ प्रदेशमें विशुद्ध पद्म विद्यमान है । इसके षोलह दल हैं । दलोंका रंग धूम्रवर्ण है । इन षोलहों दलोंपर रक्तवर्णवाले समस्त स्वरवर्ण अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—ये षोलह अक्षर विराजमान हैं ।

विशुद्ध पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें पूर्णचन्द्राकार वृत्तरूप एक आकाशमण्डल है । इसका वर्ण शुक्ल है । उसीके मध्यमें आकाशबीज 'हँ' विराजमान है । इसका वर्ण शुक्ल है । इसकी चार भुजाएँ हैं । इन भुजाओंमें पाश, अभयमुद्रा, अङ्कुश, वर-मुद्रा सुशोभित हैं । इसका वाहन शुक्ल वर्णवाला हाथी है ।

आकाशबीजके गोदमें अर्द्धनारीश्वररूपी सदाशिव विराजमान है । यह श्वेत-वर्णवाला है । इसकी तीन आँखें तथा दस भुजाएँ हैं । यह पाँच मुखवाला है । इसने व्याघ्रचर्मरूपी वस्त्रका धारण किया है । विशुद्ध पद्मका अधिष्ठातृ-देवता सदाशिव है ।

विशुद्ध पद्मकी अधिष्ठात्री देवी शाकिनी शक्ति है । यह पद्मकी कर्णिकामें विराजमान है । यह सुधासमुद्रके समान अत्यन्त शुक्ल वर्णवाली है । इसने पीत वस्त्र-का धारण किया है । इसकी चार भुजाएँ हैं । इन भुजाओंमें शर, चाप, पाश, अङ्कुश सुशोभित हैं । विशुद्ध पद्मकी कर्णिकामें एक निष्कलङ्क पूर्णचन्द्रमण्डल है ।

**आज्ञा चक्र :—**

दोनों भौहोंके मध्यप्रदेशमें आज्ञा पद्म विद्यमान है । इसके दो दल हैं । दल अत्यन्त शुभ्र हैं । इन दोनों दलोंपर ह एव क्ष—ये दोनों अक्षर विराजमान हैं । अक्षर शुभ्र हैं ।

आज्ञा पद्मकी कर्णिकामें चक्राधिष्ठात्री देवी हाकिनी शक्ति विराजमान है। यह चन्द्रमाके समान शुक्ल वर्णवाली है। इसके छ मुख हैं। यह देवी चतुर्भुजा है। इन भुजाओंमें ज्ञानमुद्रा, कपाल, डमरु एवं जपवटी सुशोभित हैं।

आज्ञा पद्मके मध्यमें सूक्ष्म रूपमें मन विराजमान है। पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें एक त्रिकोणाकार योनि है। उस योनिमें लिङ्गरूपसे इतर नामक शिव विराजमान है, अर्थात् इतर लिङ्ग विराजमान है। यह इतर लिङ्ग विजलीके समान प्रकाशमान है। इस इतर लिङ्गके ऊपर एक त्रिकोण है। उस त्रिकोणमें वेदोंके आदिबीज प्रणव 'ॐ'—-रूपी अन्तरात्मा विराजमान है। यह प्रणवाकृति अन्तरात्मा ज्योतिः-स्वरूप है। इस अन्तरात्माकी चारों ओर एक प्रकाशमण्डल है। इस प्रकाशमण्डलके द्वारा मूलाधारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तका मार्ग प्रकाशित हो रहा है।

प्रणवाकृति ज्योतिःरूप अन्तरात्माके ऊपर अर्थात् अर्धचन्द्रके मध्यवर्ती बिन्दुके ऊपर नाद स्थित है। यह नाद अत्यन्त शुक्ल वर्णवाला है। नाद वायुका लयस्थान है। यह महानाद शक्तिरूप है।

**सहस्रार :—**

शङ्खिनी नाड़ीके शिखर स्थित तथा विसर्गके नीचे प्रकाशरूप शून्य प्रदेशमें पूर्णचन्द्राकार सहस्र दल पद्म स्थित है। यह अधोमुख है। इसके एक हजार दल हैं। दल अतिशुभ्र हैं। इन दलोंपर 'अ'से लेकर 'क्ष' तक–ये पचास अक्षर विराजमान हैं। अक्षर शुभ्र हैं। इस पद्मका केशरपुञ्ज प्रातःकालीन सूर्यके समान रक्त वर्णवाला है।

सहस्रदल पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें कलङ्करहित एक पूर्ण चन्द्रमण्डल है। उस चन्द्रमण्डलके मध्यमें विद्युत्के समान रूपवाला एक त्रिकोण है। उस त्रिकोणके मध्यमें चन्द्रकी अमा नामकी षोलहवीं कला स्थित है। यह रक्त वर्णवाली है, अधोमुखी है। कमलनालके मध्यमें स्थित तन्तुके सौवें भागके समान है इसका शरीर।

इसी अमा कलाके मध्यमें निर्वाण कला विद्यमान है। यह बारहों सूर्योंके समान प्रकाशवाली है। इसका शरीर केशके अग्रभागके हजारवें भागके समान है। अर्थात् यह अत्यन्त सूक्ष्म है। यह अर्धचन्द्राकार विग्रहवाली है।

इसी निर्वाण कलाके मध्यदेशमें निर्वाणशक्ति विराजमान है। यह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाली है। इसका शरीर केशके अग्रभागके करोड़वें भागके समान है। अर्थात् यह अत्यन्त सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है। यह ब्रह्मकी शक्ति माया है। इसीके मध्यमें शून्य है अर्थात् परंबिन्दुरूप शून्य है। इस परंबिन्दुरूप शून्यमें परमशिवकी स्थिति है। अर्थात् परंबिन्दुरूप शून्यमें परम शिवका साक्षात्कार होता है। इसी परमशिवके पद—स्थानको स्वाभीष्ट देवताका स्थान साम्प्रदायिक लोग मानते हैं। शिव, शक्ति, हंस, विष्णु, ब्रह्म आदि नामसे यही स्थान प्रसिद्ध है।

**कुण्डलिनी-योग :—**

मानव अपनेको अपूर्ण समझता हुआ पूर्ण होनेके लिए सांसारिक वस्तुओंको एकत्र करता रहता है, किन्तु उसे उन वस्तुओंसे पूर्णताकी प्राप्ति नहीं होती है; क्योंकि वस्तु स्वयं अपूर्ण है। इस प्रकार निराश होकर विवेक शक्तिको खोकर वह सद्गुरुके पास जाता है। सद्गुरुसे वह पूर्णताकी प्राप्तिके उपायोंके निर्देशके लिए प्रार्थना करता है। गुरु उसे जिज्ञासु जानकार श्रद्धालु समझकर पूर्णताकी प्राप्तिके उपायोंको बताते हैं। उसे ज्ञान दिया जाता है कि पूर्णता स्वयंमें है। स्वयं पूर्ण है, किन्तु माया अर्थात् अज्ञानके कारण शिष्यको यह अनुभूति नहीं होती है कि वह पूर्ण है। तब योगीगुरु कुण्डलिनीयोगके द्वारा उसे पूर्णत्व प्रदान करते हैं। इसी कुण्डलिनीयोगको लययोग अथवा षट्चक्रभेद कहते हैं। इस प्रकारसे यह स्पष्ट विदित है कि कुण्डलिनीयोगका प्रयोजन पूर्णत्वको प्राप्त करना है। अब कुण्डलिनीयोग किस प्रकारसे किया जाता है उसका हम विवेचन करते हैं—

जब शिष्य योगीगुरुके पास जाता है तब गुरु शिष्यको यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदिका अभ्यास कराते हैं। इन सबसे शिष्य जब अभ्यस्त हो जाता है तथा उसके अन्तःकरण शुद्ध हो जाते हैं एवं चित्तकी एकाग्रता हो जाती है तब गुरु उसे कुण्डलिनी योग अर्थात् षट्चक्र भेदका ज्ञान प्रदान करते हैं। शिष्य उसे अच्छी तरहसे समझ ले तब गुरुके द्वारा बताये गये आसनमें बैठकर कुण्डलिनी जागरण करे। विनिर्दिष्ट आसनपर बैठकर प्राणवायु अथवा श्वासका कुम्भककर 'हंसः' मन्त्राका 'मैं ब्रह्म हूँ' इसप्रकार मानसिक चिन्तन करते हुए हृदयसे जीवात्माको मूलाधारमें ले जायँ, जहाँपर कुण्डलिनी सोयी हुई है। उसके बाद धीरे-धीरे गुदाका सङ्कोचन कर, अपान वायुका निरोध करे। वायुका उत्तोलनकर मूलाधार कमलकी कर्णिकाके मध्यवर्ती त्रिकोणस्थ कामको वायें तरफसे घूमावे। उसके उद्दीप्त होनेपर उसमें स्थित कामाग्निसे उत्तप्त हुई कुण्डलिनीका हुङ्कारके द्वारा जागरण करे। यह हूँकार कूर्चबीज है। जब तक कुण्डलिनी उत्तप्त नहीं होती, उसका जागरण नहीं होता है। जब कामवायुको आन्दोलित किया जाता है तब उसमेंसे तेज उत्पन्न होता है। इसप्रकारसे गरमीवायुके कारण कुण्डलिनी उत्तप्त हो जाती है, तब हूंकार करना चाहिए। जब हूंकार करेंगे तब कुण्डलिनीको झटका लगेगी। इस प्रकारसे तेज झटका लगने पर जिस स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रको अपने मुखसे आच्छादित कर रक्खी थी उसी छिद्रमें वह प्रवेश कर जाती है एवं स्वयम्भू लिङ्गके मूलसे निकली ब्रह्म नाड़ीके मुखमें प्रवेश कर जाती है। उस कुण्डलिनीका अनुसरण जीवात्मा भी करती है। जब यह कुण्डलिनी ब्रह्म नाड़ीमें प्रवेश करती है तब इस चित्रिणी नाड़ी अर्थात् ब्रह्म नाड़ीसे गुंथे

हुए कमलोंको प्राप्त कर यह हजारों सूर्यों के समान प्रकाशमान्, करोडों चन्द्रमाओंके समान शीतल बन जाती है। सारे कमल भी प्रकाशित हो जाते हैं।

इस प्रकारसे लयक्रमसे वह कुण्डलिनी तीनों लिङ्गोंका भेदन कर सहस्रारमें पहुँच जाती है। लयक्रम एवं सृष्टिक्रमका आगे कथन किया जायेगा।

सर्व प्रथम जब कुण्डलिनी मूलाधार पद्ममें स्थित रहती है तब उसका वैखरी भाव होता है। जब स्वयम्भू लिङ्गका भेदन करती है और अनाहत पद्ममें पहुँच जाती है तब उसे मध्यमा भाव प्राप्त होता है। उस मध्यमा भावसे अनाहत पद्ममें स्थित बाण लिङ्गका भेदन कर जब आज्ञा पद्ममें पहुँच जाती है तब उसे पश्यन्ती भाव प्राप्त होता है। पश्यन्ती भावसे आज्ञा पद्ममें स्थित इतर लिङ्गका भेदन कर जब सहस्रारमें स्थित परब्रह्मके पास पहुँच जाती है तब उसे पराभाव प्राप्त होता है। तब हंस रूप जीवात्मा परम हंस रूप परमात्मभावको प्राप्त करता। हैं कुण्डलिनी भी चैतन्यस्वरूपा बन कर उस चैतन्य स्वरूप ब्रह्ममें एकाकार हो जाती है। यही कुण्डलिनीयोग है। इस अवस्वामें विशुद्ध सत्त्वरूपा कुण्डलिनी महाकुण्डलिनी कहलाती है। जब तक सहस्रारमें स्थित परंब्रह्ममें एकाकार नहीं होती है तब तक वह कुलकुण्डलिनी कहलाती है। महाकुण्डलिनी ही नित्यानन्द रूप मुक्तिको प्राप्त कराती है। हृदयस्थानसे अब 'मैं ब्रह्म हूँ' इस भावनासे आयी जीवात्मा यहाँपर ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाती है। यही मोक्ष-प्राप्ति है।

ध्यान रहे कि परं ब्रह्म अर्थात् परम शिवमें जब कुण्डलिनी पहुँचती है, उस समय उसके मध्यमें सारे कमलोंके देवता, देवी, बीज, तत्त्व आदि लीन रूपमें विद्यमान रहते हैं। जब परम शिवमें कुण्डलिनी सूक्ष्म भावको प्राप्त करती है तब उसमेंसे क्षरित अमृतका पान करती है। वही परमानन्दकी अनुभूति है। इस प्रकारसे सारे देव-देवी तृप्त हो जाते हैं। सब अभेदात्मक भावको प्राप्त करते हैं। यही अभेदात्मक अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यकी अनुभूति होना ही मोक्षप्राप्ति होना है। यह तूरीया अवस्था है योगी की। यही भावातीत अवस्था है। योगी जब अज्ञानी रहता है तो उसका पशुभाव होता है। जब वह परम लक्ष्यकी प्राप्ति हेतु साधनामें वीरता पूर्वक रत रहता है तो वह उसका वीरभाव है। जब उसकी लक्ष्यप्राप्ति हो जाती है, अद्वैतभावमें स्थिति हो जाती है तब वह उसका दिव्यभाव है। यही वेदान्तकी सप्तज्ञानभूमि है।

**लयक्रम :—**

सर्व प्रथम गुरुके द्वारा बतायी गयी विधिसे मूलमन्त्रके द्वारा हृदयसे जीवको मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनीके पास ले आवे। तत्पश्चात् कुण्डलिनी जब अग्नि

तथा वायुके सम्मिलित आक्रमण एवं हूंकारसे जागृत हो जाती है तब उसे ब्रह्म-रन्ध्रके मध्यमें ले आवे।

तत्पश्चात् मूल मन्त्रके द्वारा मूलाधारमें स्थित ब्रह्मा, डाकिनी शक्ति, दलों-के अक्षर तथा पृथ्वी बीज 'लँ'को गन्धतत्त्वमें बदलकर उन्हें उस कुण्डलिनीके शरीरमें विलीन करे।

इस प्रकार कुण्डलिनी जब गन्धतत्त्व तथा जीवको लेकर स्वाधिष्ठन पद्ममें पहुँच जाती है तब मूल मन्त्रके द्वारा उस पद्मके विष्णु, शकिणी शक्ति, दलोंके छ अक्षर तथा वरुण बीज 'वँ'––सारेके सारे रसतत्त्वमें बदल जाते हैं। पूर्वका गन्धतत्त्व भी रसतत्त्वमें बदल जाता है।

इस प्रकार मूल मन्त्रके द्वारा कुण्डलिनी रसतत्त्व तथा जीवको लेकर जब मणिपुर पद्ममें पहुंच जाती है तव उस पद्मके रुद्र, लाकिनी शक्ति, दलोंके दस अक्षर तथा अग्नि बीज 'रँ'––सारेके सारे रूपतत्त्वमें बदल जाते हैं। पूर्वका रस-तत्त्व भी रूपतत्त्वमें बदल जाता है।

इस प्रकार कुण्डलिनी रूपतत्त्व तथा जीवको लेकर जब अनाहत पद्ममें पहुँच जाती है तब मूल मन्त्रके द्वारा उस पद्मके ईश्वर, काकिनी शक्ति, दलोंके बारह अक्षर तथा वायु बीज 'यँ'—सारेके सारे शब्दतत्त्वमें बदल जाते हैं। पूर्वका रूपतत्त्व भी स्पर्शतत्त्वमें बदल जाता है।

इस प्रकार कुण्डलिनी स्पर्शतत्त्व तथा जीवको लेकर जब विशुद्ध पद्ममें पहुँच जाती है तब मूल मन्त्रके द्वारा उस पद्मके सदाशिव, शाकिनी शक्ति, दलोंके षोलह अक्षर तथा आकाश बीज 'हँ'—सारेके सारे शब्दतत्त्वमें बदल जाते हैं। पूर्वका स्पर्शतत्त्व भी शब्दतत्त्वमें बदल जाता है।

इस प्रकार कुण्डलिनी शब्दतत्त्व तथा जीवको लेकर जब आज्ञा पद्ममें पहुँच जाती है तब मूलमन्त्रके द्वारा उस पद्मके परशिव, हाकिनी शक्ति तथा दलोंके दो अक्षर अहंकारतत्त्वमें बदल जाते हैं। पूर्वका शब्दतत्त्व भी अहंकारतत्त्वमें बदल जाता है। तथा कुण्डलिनी प्रणवके समान तेजोमयी बन जाती है।

इस प्रकार कुण्डलिनी अहंकारतत्त्व तथा व जीवको लेकर जब सहस्रारमें पहुँच जाती है तब मूल मन्त्रके द्वारा उस सहस्रारमें स्थित अमा कलामें अहंकार-तत्त्व विलीन हो जाता है। अमाकला निर्वाणकलामें, निर्वाणकला निर्वाणशक्तिमें तथा निर्वाणशक्ति परमशिवमें विलीन हो जाती है। इस प्रकार कुण्डलिनी चैतन्य-रूपा बनकर जीवभावको विलीन कर देती है। उस समय कुण्डलिनी महाकुण्डलिनी

कहलाती है तथा जीव भी मुक्तजीव हो जाता है अर्थात् योगी जीवन्मुक्त हो जाता है।

**सृष्टिक्रम :--**

जब लयक्रमसे जीवके साथ कुण्डलिनी परमशिवमें पहुँच जाती है तब कुछ क्षण उसमें रमण करती है। कुण्डलिनीका अभेद रूपा बना जाना ही रमण करना है। तब उस परमशिवसे अमृतका क्षरण होता है अर्थात् पूर्णानन्दरस--मोक्षका प्रवाह होता है।

तत्पश्चात् योगी महाकुण्डलिनीको जिस प्रकारसे सहस्रारमें स्थित परमशिवमें ले गया था उसी प्रकार पुनः उसे मूलाधारमें ले आवे।

सृष्टिक्रममें यही विशेषता है कि योगीका जीवभाव नहीं रहता है तथा कमलोंके सारे देवता आदि पूर्णामृतरससे आप्लावित रहते हैं। इस प्रकारसे योगी जीवन्मुक्त विचरण करता रहे।

**योगके द्वारा प्राणत्याग करनेकी विधि--**

जब योगीको स्वेच्छापूर्वक योगके द्वारा प्राणत्याग करना है अर्थात् प्रारब्ध कर्मके क्षय हो जाने पर देहत्याग करना हो तो उसे आज्ञा चक्रमें प्राणत्याग करनेके लिए निर्देश दिया गया है--

जब योगीको यह विदित हो जाय कि प्रारब्ध कर्मकी समाप्ति हो रही है अर्थात् प्राणवियोगका काल आ गया है तब वह 'मैं ब्रह्ममें लीन हो रहा हूँ' इस प्रकार आनन्दित मनसे योगासनमें बैठ जाय। तत्पश्चात् कुम्भकके द्वारा वायुको रुद्ध कर हृदयमें रहनेवाली जीवात्माको मूलाधारमें ले आवे। तब गुदाका आकुञ्चन कर यथोक्त विधानसे कुण्डलिनीको जाग्रत कर मूलादिसे ब्रह्मरन्ध्रके अन्त तक विद्युदाकार आनन्दस्वरूप कुण्डलिनीमय सूत्ररूपी नादका ध्यान करके प्राणरूपी श्वास परमात्मक हंसको उस नादमें विलीन करके जीवके साथ चक्रभेदके क्रमसे आज्ञा चक्रमें लाकर उस आज्ञा चक्रमें स्थित कुण्ललिनीमें स्थूल-सूक्ष्मके क्रमसे पृथिवी आदि प्रपञ्च समुदायको विलीन करके उस कुण्डलिनीको पुनः जीवात्माके साथ उसमें स्थित शिवशक्तिमय बिन्दुके साथ अभेदभावको प्राप्त कराकर स्थित रहे। उसके बाद ब्रह्मरन्ध्रके भेदसे देहका त्यागकर ब्रह्ममें लीन हो जाय।

**योगके द्वारा प्राणत्याग करनेका फल :--**

जब योगी योगके द्वारा प्राणत्याग करता है तब वह ब्रह्मको प्राप्त करता है जो कि पर है। अर्थात् सबसे परे, जिसके परे कोई नहीं अर्थात् परंब्रह्म है; जिसका

कभी भी ध्वंस नहीं होता है अतः वह नित्य है; जो अजन्मा है; तथा सबका कारण है; एवं जिसकी श्रुतियोंके द्वारा प्रतिपादित ज्ञानके द्वारा अनुभूति होती है। उसी परब्रह्मको जो प्राप्त कर लेता है अर्थात् जो ब्रह्म हो जाता है, वह उपर्युक्त लक्षणोंसे लक्षित समग्र फलको प्राप्त करता है।

इस प्रकारसे शास्त्रोंके अनुसार हमने षट्चक्र आदिका विवेचन किया है। विशेष जानकारीके लिए अनुभवी गुरुका आश्रय लेना अत्यावश्यक है। 'षट्चक्र'के विशेषज्ञानके लिए **'कुण्डलिनीयोगविमर्शः'** नमक ग्रन्थकी रचना करनेका विचार है। पाठक व विद्वानोंकी प्रेरणासे यथाशीघ्र कार्य पूर्ण होनेकी आशा रखता हूँ। इति शिवम्।

दीपावली
वि० सं० २०४५
वाराणसी

—प्रह्लाद

# विषय-सूची

## (संस्कृत-भागः)

# विषय-सूची
## (हिन्दी-भाग)

## परिशिष्ट

ॐ श्रीसच्चिदानन्दाय नमः

अथ

परमहंसश्रीपूर्णानन्दयतिविरचितम्

# षट्चक्रनिरूपणम्

योगनिरूपणप्रतिज्ञा

अथ तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्गतः ।
उच्यते परमानन्द-निर्वाह-प्रथमाङ्कुरः ॥*

## श्रीकालीचरणकृतश्लोकार्थपरिष्कारिणीव्याख्या

महायोगज्ञानात् परिचितषडम्भोजविभवः
स एवान्तस्तत्त्वप्रकटनसमर्थो न हि परः ।
बुधश्रेष्ठो ज्येष्ठोऽप्यमिलितकृपानाथकरुणः
षडब्जान्तस्तत्त्वं षसहविभवं प्रस्फुटयितुम् ॥

### श्रीमच्छङ्करकृतषट्चक्रभेदटिप्पण

प्रणम्य शैलाधिपकन्यकायाः पदाब्जमब्जासनविष्णुपूज्यम् ।
प्रतन्यते श्रीयुतशङ्करेण षट्चक्रटीकाख्यसुपुस्तिकेयम् ॥

### श्रीविश्वनाथकृतविवृत्याख्यटीका

टीका श्रीविश्वनाथेन नत्वा संतन्यतेऽम्बिकाम् ।
कैवल्य-कलिका-तन्त्र-द्वितीय-पटलस्य च ॥

अथ दुःखपङ्कमग्नं जगदुद्दिधीर्षुः परमकारुणिकः पूर्णानन्दस्वामी मुक्तिसम्पादकतत्त्वज्ञानसिद्धये षट्चक्रे कुण्डलिनीयोगं वक्तुमिच्छन् साधकावधानाय प्रतिजानीते—अथेति। अथाऽनन्तरं स्वकृतश्रीतत्त्वचिन्तामण्यां षट्चक्रनिरूपणात् पूर्वप्रदर्शित-तत्तत्कर्मकथनानन्तरमित्यर्थः। अस्यार्थः—**परमानन्दनिर्वाहप्रथमाङ्कुरः** उच्यते इत्यन्वयः। **परमानन्दो** ब्रह्म, "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"ति श्रुतेः। तस्य निर्वाहस्तत्साक्षात्काररूपनिष्पत्तिस्तस्मै प्रथमाङ्कुरस्तत्कारणभूतप्रथमप्रकाशमानकर्मस्वरूपो मया पूर्णानन्देनोच्यते इत्यर्थः। सोऽङ्कुरः किम्भूतः? **तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्गत** इति। **तन्त्रानुसारेण तन्त्रमतेन षट्चक्रादीनां** मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरका-नाहत-विशुद्धा-ज्ञाख्यानाम्, आदिना तत्सम्बन्धि-नाडीलिङ्गव्योमपञ्चकशिवशक्त्यादीनाञ्च यः क्रमस्तच्चिन्तनकुण्डलिन्युत्थापनब्रह्मपद्मगमनागमनशिवशक्तिमेलनादिविधानानुपूर्विकरूपः **क्रमस्तेन उद्गतः** प्राप्तः योगसाधनाद्यभिन्न इत्यर्थः। ततश्च तन्त्रविहितषट्चक्रघटितयोगसाधनाभिन्नब्रह्मसाक्षात्कारादिकारणीभूतकर्मस्वरूपोऽङ्कुरो मया उच्यत इति समुदयानुगत-तात्पर्यार्थः ॥ * ॥

अथेत्यादि। यद्यप्यथशब्दो मङ्गलप्रश्नाद्यर्थे वर्त्तते, तथाप्यानन्तर्यार्थ एव गृह्यते, यद्ग्रन्थीयप्रस्तावस्तत्प्रस्तावस्यानन्तरत्वात्। मङ्गलार्थोऽयमिति केचित्। तन्त्रानुसारेण शिवोक्ततन्त्रीयप्रस्तावानुसारेणेत्यर्थः। षट्चक्रादिक्रमोद्गतः षट्चक्रादिक्रमेण उद्गतो योऽर्थ इत्यर्थः। अत्रादिपदेन सहस्रदलपद्मादिकमुच्यते। परमानन्दो निरञ्जनस्तस्मिन् यो निर्वाहो ज्ञानप्राप्तिस्तस्य प्रथमाङ्कुर इति यावत्॥ * ॥

बृद्धरूपी परमेश्वरो वशिष्ठाय कुलभावमुक्त्वा कुलाचारं विना तस्मिन् नाधिकारः, अतस्तदुपदेष्टं गुरुसम्मानपूर्वकमाह—**यज्ज्ञातेनेत्यादि**। तथाच **कालिकापुराणे**—यः पूजयेद् वामभावैर्न तस्य ऋणशोधनम्।
पितृ-देव-नरादीनां जायते च कदाचन॥
सोऽभ्यस्य त्रिपुरायोगं तेन योगेन संयुतः।
जायते यदि सुप्राज्ञस्तदा मोक्षमवाप्नुयात्॥—(७४।१३३-३४)

'त्रिपुरायोगं' कुण्डलिनीयोगं, कुण्डलिन्याः सर्वदेवात्मकत्वात्। उक्तं—"सर्वदेवमयी सा हि" इति॥ * ॥

इडादिनाडीत्रयस्वरूपम्

**मेरोर्बाह्य-प्रदेशे शशि-मिहिर-शिरे सव्य-दक्षे निषण्णे**
**मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ।**
**धूस्तूरस्मेर-पुष्प-ग्रथिततम-वपुः कन्दमध्याच्छिरःस्था**
**वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलन्ती ॥ १ ॥**

अथ तादृशवक्ष्यमाणयोगः षट्चक्रनाड्योर्ज्ञानं विना न सम्भवतीत्यतः प्रथमं तदुप-युक्तनाड्यो निरूप्यन्ते—मेरोरित्यादित्रिभिः श्लोकैः । **मेरोर्मेरुदण्डस्य** । स च दण्डो मूलावधि-ग्रीवापर्यन्तव्यापकपृष्ठास्थीति स्फुटीकरिष्यामः । **तद्बाह्यदेशे** । **शशिमिहिरशिर** इति । **शशी चन्द्रः, मिहिरः सूर्यः, शिरा नाडी** । ततश्च चन्द्र-सूर्यस्वरूपिण्यौ द्वे नाड्यौ इडा-पिङ्गलाख्ये । **शव्यदक्षे** वामदक्षिणे । **निषण्णे** स्थिते इत्यर्थः । तदाह **भूतशुद्धितन्त्रे**—

मेरोर्वामे इडा दक्षे पिङ्गला च स्थिते उभे ॥

इति । अनयोश्चन्द्रसूर्यस्वरूपत्वमाह **सम्मोहनतन्त्रे**—

वामगा या इडा नाडी शुक्ला चन्द्रस्वरूपिणी ।
शक्तिरूपा हि सा देवी साक्षादमृतविग्रहा ॥
दक्षे तु पिङ्गला नाम पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।
रौद्रात्मिका महादेवी दाडिमीकेसरप्रभा ॥ इति ॥

इमे नाड्यौ मूलाद् ऋजुरूपेणाज्ञानचक्रान्तं प्राप्य नासारन्ध्रगते । तदुक्तं **यामले**

**मेरोरिति । मेरोर्बहिःस्थाने शशिमिहिरशिरे इडा-पिङ्गलाख्ये स्त इति । सव्यदक्षे वामदक्षिणयोः, अत्र प्राण्यङ्गत्वात् समाहारः । निषण्णे सुप्ते इति यावत् । मध्ये**

मेरोर्मेरुदण्डस्य बाह्यप्रदेशे क्रोड़े शशिमिहिरशिरे इडापिङ्गलानाड्यौ । "मेरुदण्डबहिःपार्श्वे चन्द्रसूर्यात्मके" इति मायातन्त्रात् । तयोः स्थितिप्रकारमाह **टीकाकारधृततन्त्रे**—वाममुष्कात् तु सम्भूता नाडी दक्षिणगामिनी ।
सुषुम्णाकलिता जाता वामभागं समाश्रिता ॥
हृद्गता दक्षभागस्था जत्रुमध्यं समाश्रिता ।
वामं तु नासिकाद्वारं प्राप्नोति गिरिजेऽमले ॥
नाडी दक्षिणमुष्कात् तु सञ्जातोत्तरगामिनी ।
सुषुम्णाकलिता जाता भागं दक्षिणमाश्रिता ॥
हृद्गता वामभागस्था जत्रुमध्यं समाश्रिता ।
दक्षिणं नासिकाद्वारं प्राप्नोति गिरिजेऽमले ॥

इडा च पिङ्गला चैव तस्य वामे च दक्षिणे ।
ऋज्वीभूते शिरे ते च वामदक्षिणभेदतः ।
सर्वपद्मानि संवेष्टय नासारन्ध्रगतेशुभे ।। इति ।।

अत्र 'शिरे ते च' इत्यत्र चकारो वार्थः । तेन सर्वपद्मानि संवेष्टय वामदक्षिणभेदतो वामदक्षिणभेदेन वेणीबन्धक्रमेण सर्वपद्मानि संवेष्टय वा नासारन्ध्रगते इत्यर्थः । एतेनाऽनयोः स्थित्यां द्विविधः कल्पो दर्शितः । अन्यत्राऽनयोर्धनुराकारेण स्थितिरुक्ता । तद्यथा—

विद्धि ते धनुराकारे नाडीडापिङ्गले परे ।। इति ।।

धनुराकारप्रकारमाह—

या वाममुष्कसम्बद्धा सा श्लिष्यन्ती सुषुम्णया ।
दक्षिणं जत्रुमाश्रित्य धनुर्वक्रा हृदि स्थिता ।
वामांशजत्र्वन्तरगा दक्षिणां नासिकामियात् ।। इति ।।

जत्रु स्कन्धभुजयोः सन्धिः ।

तथा द्रक्षिणमुष्कोत्था नासाया वामरन्ध्रगा ।।

इति च । वामदक्षिणमुष्कोस्थिते ते भ्रूमध्यपर्यन्तं प्राप्य तत्र इडा-पिङ्गला-सुषुम्णानाडीत्रयाणां त्रिवेणीरूपेण ग्रन्थिभावमापन्ने नासारन्ध्रमिलिते इत्यर्थः । तदुक्तम्—

**मेरोरिति सम्बन्धनीयम् । त्रितयगुणमयी सत्त्वरजस्तमोगुणमयी । त्रितय इति अवयवार्थे तयप् । यतश्चन्द्रसूर्याग्निरूपा अतस्त्रितयगुणमयो । कन्दमध्यात् मूलाधारा-**

चापाकृतिर्भूत्वा दक्षिणगामिनी उत्तरगामिनीति ध्येयम् । मध्ये नाडी सुषुम्णेति । मध्ये मेरुदण्डस्य मध्यस्थविवरे ।

मेरुदण्डबहिःपार्श्वे चन्द्रसूर्यात्मिके शिरे ।
मध्ये सुषुम्णा.......................... ।।

इति मायातन्त्रात् । स्पष्टमाह सारसमुच्चये —

या मुण्डाधारदण्डान्तरविवरगता हारनीहारगौरी
सौधीं धरां नभोऽम्भोरुहकुहरविधोः संस्रवन्तीं वहन्ती ।
तस्या वज्राख्यनाड्याः खगमुदरदरीमध्यगं यो विदध्यात्
तस्या ब्रह्माण्डभाण्डप्रलयमपघनं स्याद् घनं मृत्युमृत्योः ।।

सा कीदृशी ? हारनीहारगौरी मुक्ताहारनीहारगौरी । "गौरोऽरुणे सिते पीते" इत्यमरः । एतेन सुषुम्णान्तर्गताया वज्राया मेरुदण्डान्तर्विवरगतात्वकथनेन सुषुम्णाया अपि मेरुदण्डान्तर्विवरगतात्वसिद्धिः । यद्वा—[या] मुण्डाधारदण्डे यदन्तर्विवरं तत्र [विवर] गता, अर्थात् सुषुम्णाया विवरगता ।

इडायां यमुना देवी पिङ्गलायां सरस्वती ।
सुषुम्णायां वसेद् गङ्गा तासां योगस्त्रिधा भवेत् ॥
सङ्गता ध्वजमूले च विमुक्ता भ्रूवियोगतः ।
त्रिवेणीयोगः स प्रोक्तस्तत्र स्नानं महाफलम् ॥ इति ॥

मध्य इति । मेरुदण्डमध्यरन्ध्रे इत्यर्थः । तदुक्तं--

मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मरन्ध्रगा ।

इत्यादि । तथा **त्रिपुरासारसमुच्चये**--

या मुण्डाधारदण्डान्तरविवरगतेत्यादि च ॥

अत्र यद्यपि--मेरोर्वामे स्थिता नाडी इडा चन्द्रामृता शिवे ।
दक्षिणे सूर्यसंयुक्ता पिङ्गला नाम नामतः ।
तद्बाह्ये तु तयोर्मध्ये सुषुम्णा वह्निसंयुता ॥

इति **तन्त्रचूडामणि**वचनेन सुषुम्णाया मेरोर्बाह्यस्थितः प्रतीयते, तथापि तद्वचनं मतभेदेन । ग्रन्थकारमते तु "सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान्" इत्युत्तरश्लोके षट्पद्मानां मेरुमध्यरन्ध्रस्थत्वकथनेन तदाधारभूतायाः सुषुम्णाया मेरुमध्यरन्ध्रस्थत्वम् ।

**त्रितयगुणमयीति । त्रितयं गुणं** सुषुम्णा वज्रा चित्रिणीति रूपभेदेन त्रिसूत्ररूपं, तदात्मिकेत्यर्थः । अथवा **त्रितयगुणं** सुषुम्णादिनाडीत्रयमपेक्ष्य इयमेका इयमेका इयमेकेति त्रितयावर्त्तनं यत्र सा त्रितयगुण, तन्मयीत्यर्थः । यद्वा **त्रितयगुणाः** सत्त्वरजस्तमोगुणा यस्यां, तन्मयीत्यर्थः । ततश्च चित्रिणी सत्त्वगुणमयी, वज्रा रजोगुणमयी, सुषुम्णा तमोगुणमयीति । **चन्द्रसूर्याग्निरूपेति** । चित्रिणी चन्द्ररूपा तेन शुक्लवर्णा, वज्रिणी सूर्यरूपा तेन दाडिमीकेसरप्रभा, सुषुम्णा वह्निरूपिणी तेन रक्तवर्णेति । यतत्त्रिविधव्याख्यानप्रमाणमाह सुषुम्णालक्षणमभिधाय **भूतशुद्धौ**--

**दिति यावत्** । शिरस्थाः शिरःस्थिताः । **तदेव धूस्तूरपुष्पस्फुटितस्येव प्रथिततमं प्रकृष्टं**

अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये ।
छिद्रात्मीय-विना-बहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि न ॥

इत्यमरः । एवञ्च 'सुषुम्णाकलिते'ति परम्परया आश्रितेत्यर्थः । यद्वा--तत्र तत्र स्थाने मेरुदण्डं मित्त्वा सुषुम्णाकलिता इत्यर्थः । **गौतमीयेऽपि**--

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं मुने ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥
तिस्रः कोटयस्तदर्द्धेन शरीरे नाड्यो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ॥

तदन्तर्द्व्यङ्गुलोर्ध्वे तु वज्राख्या चित्रिणी तथा ।
अतः सुषुम्णा त्रिगुणा ललन्ती ललना यथा ।।
सत्त्वादित्रिगुणाधारा चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।। इति ।।

**कन्दमध्याच्छिरःस्थेति** । **कन्दः** सर्वनाडीनां मूलम् । तल्लक्षणमाह—

गुदात् तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात् तु द्व्यङ्गुलादधः ।
चतुरङ्गुलविस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत् ।।
नाड्यस्तस्मात् समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।। इति ।।

तद्रूपकन्दमारभ्य शिरःस्था शिरःस्थिताधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकावर्त्ति-द्वादशदलपङ्कजाधःपर्यन्तस्थितेत्यर्थः । "कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वादशार्ण-सरसीरुहं भजे" इति **गुरुपादुकास्तोत्रस्मरणात्** । कुण्डलीविवरकाण्ड-रूपायाश्चित्रिणीनाड्यास्तदवधिकत्वे तदधिकरणसुषुम्णाया अपि तदवधिक-त्वम् । अन्यथा सहस्रदलोर्ध्वपर्यन्तस्थायित्वे सहस्रदलपद्मस्य चत्वारिंशच्-श्लोके "शून्यदेशे प्रकाशमि" त्यनेन शून्यदेशे स्थायित्वानुपपत्तेः । सुषुम्णा-वृतत्वे शून्यदेशत्वाभावात् ।

अत्र केचित्—"मेरोर्मध्यपृष्ठगतास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्त्तिता" इति **निगमतत्त्वसार-वचनं** प्रमाणं दर्शयित्वा इडा-पिङ्गला-सुषुम्णेति तिसृणां नाडीनां मेरुमध्यस्थितिं वदन्ति । तन्न । इडा-पिङ्गलयोर्मेरुवहिःस्थितेः सर्वतन्त्रवचनसिद्धत्वाद्, ग्रन्थकारेणापि "मेरोर्बाह्यप्रदेशे" इत्यनेन तयोर्बहिः स्थितेः स्पष्टमुखेनाऽभिधानाच्च ।

प्रसिद्धं वपुर्यस्याः । **एतेन—उभयतो धूस्तूराकृतिर्द्विमुखीति फलितार्थः । अपरा चास्या**

प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला चन्द्रस्वरूपिणी ।।
शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहाः ।।
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्णा वह्निरूपिणी ।

मेरुदण्डे मेरुदण्डान्तरविवरे । **शारदायामपि**—

षण्णवत्यङ्गुलायामं शरीरमुभयात्मकम् ।
गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद् द्व्यङ्गुलं विदुः ।।
तस्माद् द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम् ।
नाड्यस्तत्र समुद्भूता मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्त्तिताः ।।
इडा वामे स्थिता नाडी पिङ्गला दक्षिणे मता ।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णा वंशमाश्रिता ।।

किञ्च इडा-पिङ्गलयोर्मेरुमध्यस्थत्वे धनुराकाराभङ्ग्या हृदयाज् जत्रु-संलग्नत्वं न सम्भवति। निगमतत्त्वसारवचने "तिस्रो नाड्य" इति सुषुम्णा वज्रा चित्रिणीति तिस्रः, न त्विडा-पिङ्गलयोस्तदन्तर्भावः। अत्र सुषुम्णाया मूलादिमस्तकपर्यन्तस्थितिप्रकारमाह--

सुषुम्णा चव्यवल्लीव मेरुश्लिष्टा पुरोगता।
ग्रीवान्तं प्राप्य गलिता तिर्यग्भूता वरानने।
शङ्खिनीनालमालम्ब्य गता सा ब्रह्मसादनम्॥ इति॥

तथाऽन्यत्र--चापाकारे स्थिते चान्ये सुषुम्णा प्रणवाकृतिः।
पृष्ठास्थिघुण्टितो भिन्ना तिर्यग्भूता ललाटगा।
भ्रूमध्ये कुण्डली लग्ना मुखेन ब्रह्मरन्ध्रगा॥ इति॥

"गलिता" मेरुदण्डान्निःसृता। तथा "घुण्टितो भिन्ना" इत्यस्याप्ययमर्थः। एतेन मेरुदण्डस्य ग्रीवापर्यन्तस्थितिः प्रतीयते।

? **शङ्खिनीनालमालम्ब्येति**। शङ्खिनीलक्षणमाह--

ईश्वर उवाच--

सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्णापार्श्वयोः स्थिते।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पूर्वपार्श्वयोः॥

तथा--गान्धारायाः सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता च शङ्खिनी।
शङ्खिनी नाम सा नाडी सव्यकर्णान्तमिष्यते॥

**मध्ये वज्रानाम्नी नाडी, सा तु मेढ्रदेशात् शिरसि परिगता। सुषुम्णायाः किञ्चित् खर्वा,**

पदाङ्गुष्ठद्वये याता शिफाभ्यां शिरसा पुनः।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी॥

भट्टाः--शिफाभ्यां मूलाभ्याम्। शिरसा अग्रभागेन। वंशं पृष्ठवंशम् आश्रित्य विवरगतात्वमुक्तम्। या मुण्डाधारदण्डान्तरविवरगतेत्यनेनाहुः। **तन्त्रान्तरे तु**—

व्योम प्रोद्भिद्य नासाग्रे गतौ चन्द्र-दिवाकरौ।
अधोवक्त्रं महापद्मं क्रोडीकृत्य सुषुम्णया॥
व्याघट्य नासिकामध्यं ग चित्रा तु तद् गता।
ऊर्ध्वं भित्त्वा तु लिङ्गं वै इतरान् पुष्करान् तथा॥
बहिरुद्गमनाकाङ्क्षाकाङ्क्षिणी मोक्षदायिनी (?)।
जीवेनाहतसम्बन्धात् स्थिता सप्तमसंनि[वि]धौ॥

तद् गता सुषुम्णायां गता। सा तु तत्समदेश गता, लिखिष्यमाणाविरोधात्। अत एव "सप्तमसंनि[वि]धौ" इत्युक्तम्। नासिकामध्यं नासिकाद्वयमध्यस्थानं न तु नासिका-द्वयमध्यं गता तत्र इडापिङ्गले गते। अत एव "कुम्भयेच्च सुषुम्णया" इति सङ्ग-

तथाऽन्यत्र--शङ्खिनी कण्ठविवरात् तिर्यग्भूता ललाटगा।
चित्रिणीसङ्गताश्लिष्टा यावच्छिरसमम्बिके ॥ इति ॥

ततश्च सरस्वतीगान्धार्योर्मध्ये कन्दमूलमारभ्य कण्ठपर्यन्तं गता वक्रगत्या एकाग्रेण वामकर्णरन्ध्रमिलिता, अपराग्रेण मस्तकान्तं प्राप्तेति।

अत्र केचित्--पादादिब्रह्मरन्ध्रान्तं यदस्थि कीलकोपमम्।
चतुर्दशानां लोकानां मेरुदण्डः प्रचक्षते ॥

इति **निगमतत्त्वसार**-वचनं प्रमाणं दर्शयित्वा पादादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं मेरुदण्डस्य स्थितिमाहुः। तच्चिन्त्यम्। यः पृष्ठदण्डः स एव मेरुदण्डस्तस्य मूलकन्दादूर्ध्वावधि ग्रीवापर्यन्तस्थितेः प्रत्यक्षसिद्धत्वेन प्रत्यक्षसिद्धवस्तुनो वचनमन्यथा कर्त्तुं न शक्नोति।

किञ्च अखण्डैकास्थ्नो मेरुदण्डस्य पादादिस्थितत्वे पादयोराकुञ्चनप्रसारणादिक्रिया न स्यात्, तस्मान्मूलोर्ध्वावधिरेव मेरुदण्डः। निगमतत्त्वसारवचनस्य त्वयमर्थः--पादादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शरीरमधिकृत्य यदस्थि कीलकोपमं कीलकवद्धारकमिति।

**मेढ्रदेशा**न्मूलकन्दाद् द्व्यङ्गुलोर्ध्वावधि। तदुक्तं **भूतशुद्धौ**--

तन्मध्ये द्व्यङ्गुलोर्ध्वे तु वज्राख्या चित्रिणी तथा ॥ इति ॥ १ ॥

**सहस्रदलपङ्कजसुषुम्णास्ययोरुपर्यधोभावेन सम्पुटत्वात्। ज्वलन्ती देदीप्यमाना ॥ १ ॥**

च्छते। त्रितयेति। यतः सोमसूर्याग्निरूपा अतस्त्रितयगुणमयी। सुषुम्णा कादृशी? स्मेरं प्रस्फुटितं तथाच प्रस्फुटितकनकधूस्तूरपुष्पमिव ग्रथितं वपुर्यस्याः सा तथा। यथा कनकधूस्तूरपुष्पस्य मध्ये अन्यत् पुष्पम् एवम्भूतग्रथित-तमवपुरिति भावः। केचित् तु—प्रथिततमवपुरिति पाठमाहुः। कुतः सुषुम्णा उत्पन्ना तदाह—कन्दमध्यादिति। कन्दरूपमाह **शारदायाम्**--

गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद् द्व्यङ्गुलं विदुः।
तस्माद् द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम् ॥
तत्र नाड्यः समुद्भूता·············इत्यादि।

गोरक्षसंहितायान्तु—ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥

इत्युक्तम्। कन्दयोनिः कन्दरूपोत्पत्तिस्थानं, नाडीनामित्यर्थः। वज्राख्यां नाडीमाह—वज्राख्येति। मेढ्रदेशात् लिङ्गमूलात् शिरः पर्यन्ता इत्यर्थः। कुत्र सा? तदाह। अस्या मध्ये। सुषुम्णाया मध्ये ज्वलन्ती उज्ज्वलन्तीत्यर्थः। "मध्यमं चावलग्नञ्च मध्योऽस्त्री" इत्यमरः। मायातन्त्रेऽपि--

मध्ये सुषुम्णा तन्मध्ये वज्राख्या लिङ्गमूलतः ॥ इति ॥ १ ॥

चित्रिणीनाडीसंस्थितिः

**तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या**
**लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान् ।**
**भित्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्धबोधस्वरूपा**
**तन्मध्ये ब्रह्मनाड़ी हरमुखकुहरादादिदेवान्तसंस्था ॥ २ ॥**

**तन्मध्ये** इति । वज्रामध्ये इत्यर्थः । **प्रणवविलसिता** आज्ञाचक्रावच्छेदे तन्मध्ये प्रणवप्रकाशेन प्रकृष्टोद्दीप्यमाना । अत एव ग्रन्थकारेण सप्तत्रिंशच्श्लोके "तदनु च नवीनार्कबहुलप्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितमि"त्युक्तम् । **लूतातन्तूपमेया** मर्कटसूत्रतुल्यसूक्ष्मा **तद्ग्रथनरचनया सकलसरसिजान् भित्त्वा देदीप्यते** इत्यर्थः ।

यत् तु—चित्रिणीशून्यविवरे संजाताम्भोरुहाणि षट् ।
तत्पत्रेषु महादेवी भुजङ्गी विहरन्ति च ॥

इति कल्पसूत्रचतुर्थकाण्डीयवचनं, तद् एकवचनान्तभुजङ्गीकर्त्र्या बहुवचनान्त-विहरन्ति-क्रियान्वयायोगादमूलम् । समूलत्वेऽपि तस्यायमर्थः—विहरन्तीति शिवोक्तत्वात् एकवचनार्थे बहुवचनम् । चित्रिणीरन्ध्रविवरे

**तन्मध्ये इति । तन्मध्ये वज्रामध्ये चित्रिण्याख्या नाडी प्रसिद्धत्वेन विलसति । प्रणव इव विलसिता प्रदीप्ता । योगिनां योगगम्या, अतिसूक्ष्मत्वात् । अत एव लूतातन्तूपमेया । सकलसिरसिजान् मूलाधारादीन् । मेरुमध्ये सुषुम्णावज्रानाड्यौ, तयो-**

चित्रानाडीमाह—तन्मध्य इत्यादिना । तन्मध्ये वज्रमध्ये । प्रणवविलसिता आज्ञाचक्रस्थप्रणवाधारत्वात् । सा कीदृशी ? सकलसरसिजान् भित्त्वा एतत्पद्मग्रथनरचनया देदीप्यते । पद्मान् किम्भूतान् ? मेरुमध्यान्तरस्थान् मेरुमध्ये यदन्तरं विवरं परम्परया तत्स्थान् ।

मध्ये सुषुम्णा तन्मध्ये वज्राख्या लिङ्गमूलतः ।
तन्मध्ये चित्रिणी सूक्ष्मा बिसतन्तुसहोदरा ।
मूलमूलात् सहस्रारस्तदन्तर्ब्रह्मनाडिका ॥
तथा—मूलादिषट्सरोजातं चित्रिणीग्रथितं प्रिये ।
लिङ्गाधोर्ध्वनाभिबुक्कण्ठभ्रूमध्यदेशजम् ॥

इति मायातन्त्रात् । 'मूलमूलात् सहस्रार'स्तन्मूलाधारमूलात् सहस्रार इति । तथाच सहस्रारं चित्रिण्या ग्रथितम् । अत्र च—

तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ।
सर्वतेजोमयी सा तु योगिनीहृदयङ्गमा ।
विसर्गाद् बिन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठिति तत्त्वतः ॥

इति करणार्थविषयाधारे सप्तमी । ततश्च भुजङ्गी कुण्डलिनी महादेवी चित्रिणीशून्ये चित्रिणीनाड्या मध्यरन्ध्रे यद् विवरमिस्ततो बहिर्गमनपथस्तेन पथा चक्रभेदक्रमेण षडम्भोरुहाणि सञ्जाता सम्प्राप्ता सती तत्पत्रेषु विहरति दीप्यते इत्यर्थः । यद्वा यानि षडम्भोरुहाणि सुषुम्णान्तराले विहरन्ति प्रकाशन्ते, भुजङ्गी चित्रिणीरन्ध्रविवरेण तत्पत्रेषु सञ्जाता संस्थिता सती अनन्तरं **सहस्रदले** विहरतीति । न तु तद्वचनात् षट्पद्मानां चित्रिणीविवरे स्थितिः प्रतीयते । **तन्मध्ये** चित्रिणीमध्ये । **ब्रह्मनाडीति** । अत्र नडगताविति धातोर्नड्यते गम्यतेऽनया पदव्या इति नाडी पदवी, ब्रह्मणो नाडीति व्युत्पत्त्या ब्रह्मनाडी ब्रह्मपदवी शब्दब्रह्मरूपायाः कुण्डलिन्याः परमशिवसन्निधिगमनपथरूपचित्रिणीनाड्यन्तर्गतशून्यभाग इति यावत् । न तु चित्रिणीमध्ये नाड्यन्तरमस्तीति निष्कर्षः । **हरमुखकुहरात्स्वयम्भुलिङ्ग**च्छिद्रादादिदेवः सहस्रदलकमलकर्णिकामध्यस्थपरबिन्दुः । अन्यत्सुगमम् ।। २ ।।

**रन्तरस्थान् मध्यस्थान् भित्त्वा तेषां पद्मानां ग्रथनरचनया देदीप्यते भृशं दीप्तिं करतीत्यर्थः । एतस्या मध्यवर्त्तिनी ब्रह्मनाडी कन्दस्थहरमुखच्छिद्रात् परमशिवान्तरस्थिता मध्ये आश्रिता । शुद्धबुद्धीनां बोधो ज्ञानं यस्याः ।। २ ।।**

इति गौतमीयवचनस्य बिन्दुपर्यन्तम् इन्दुपर्यन्तमिति वा पाठः । लथाटस्थबिन्दुपर्यन्तम् इन्दुपर्यन्तं वा व्याप्य सहस्राराधोदेशपर्यन्तगा तद्वर्तीत्यर्थो बोध्यः । केन चित्रायां पद्मानि सन्ति तदाह **तन्त्रचूडामणौ**—

तयैव ग्रथितं पद्मं मूलादिपद्मपञ्चकम् ।
कालिकाकाररूपेण डाकिन्याद्यवलम्बितम् ।।

'तयैव' चित्रयैव । 'पद्मं' मूलादिषडिति शेषः । 'पद्मपञ्चकं' स्वाधिष्ठानादिपञ्चकम् । कलिकाकाररूपेण ग्रथितमिति सामान्यत उक्त्वा विशेषरूपेणोक्तम् । एतेन मूलाधारपद्मं विकसितम् । एवं समस्तपद्मान्यधोमुखान्येव । तदुक्तं **कौलिकतन्त्रे ताराकल्पे**—

सप्तपद्मं मयैवोक्तं सुषुम्णाग्रथितं प्रिये ।
अधोवक्त्रादिमान्तश्च(?)नाख्येयं यस्य कस्यचित् ।।

येन तस्याश्चित्रात्वं तदाह **श्रीक्रमे**—

तस्याश्चान्तर्गता तिष्ठेत् चित्राख्या योगिनिवल्लभा ।
पञ्चवर्णोज्ज्वला देवि पञ्चभूतप्रकाशिनी ।
पञ्चदेवाः पर्वलग्नाः सप्तान्या नाडयो मताः ।।

अन्यत्रापि—ब्रह्मा जनार्दनो रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः ।
चित्राख्यनाड्यन्तरस्थाः पञ्चभूताधिदेवताः ।।

अत्र पञ्चभूतानां पञ्चधिदेवता उक्ताः । भ्रूमध्ये तु परशिवोऽस्ति, लिखिष्यमाणवचनात् ।। २ ।।

विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा
शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखमयी शुद्धबोधस्वभावा ।
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशं
ग्रन्थिस्थानं तदेतद् वदनमिति सुषुम्णाख्यनाड्या लपन्ति ॥ ३ ॥

श्लोकान्तरेण तां विशेषयति--**विद्युन्मालेति**। **लसत्तन्तुरूपेति**। लसन्ती दीप्यमाना तन्तुरूपिणी अब्जतन्तुसदृशी कुण्डलिनी यत्र सेत्यर्थः। **सकलसुखमयी** सर्वानन्दमयीत्यर्थः। **शुद्धबोधस्वभावेति**। शुद्धबोधाय तत्त्वज्ञानाय स्वस्य आत्मनो भावो भावना यत्रेत्यर्थः। तदास्ये ब्रह्मनाड्या आस्ये हरमुखकुहरे। ब्रह्मद्वारं कुण्डलिन्याः शिवसन्निधिगमनाय प्रवेशनिर्गमपथरूपमित्यर्थः। **सुधाधारगम्यप्रदेशमिति**। सुधाधारः परमशिवशक्तिसामरस्यनिःसृतामृतधारो गम्यते मूलाधारस्थशिवशक्तिभ्यां लभ्यते येन

**विद्युन्मालेत्यादि। एतस्या ब्रह्मनाड्या एव विशेषणान्याह--विद्युन्मालेति। विद्युन्मालेव विलासः प्रकाशो यस्याः। मुनिमनसि प्रकाशमानमृणालतन्तुरूपा। अतः सूक्ष्मा। शुद्धज्ञानस्य प्रबोधः प्रकाशो यस्याः। अतः कलासहितानां सुखमयी। यद्वा सर्वेषां सुखमयी। शुद्धभाव एवात्मभावो यस्याः। यद्वा शुद्धभावनां स्वे परमात्मनि भावो ज्ञानं यतः सा तथा। तस्या मुखे ब्रह्मद्वारं प्रकाशते। अमृतस्य य आसारः**

ब्रह्मनाडीमाह--तस्यान्तरिति। तस्यां चित्रायां तद्ब्रह्मनाडी प्रसिद्धब्रह्मनाडी। हरमुखकुहरात् मूलाधारस्थ-स्वयम्भूलिङ्गमुखविवरात्। आदिदेवान्तसंस्था ब्रह्मपर्यन्ता। **मायातन्त्रेऽपि**--"शिरा स्याद् ब्रह्मपर्यन्तमि"त्यादि। विद्युन्मालेव विलासो यस्याः सा। पद्मसूत्रतुल्या, अतः सूक्ष्मा। शुद्धज्ञानिनः प्रबुध्यन्ते ज्ञायन्ते यया सा तथा। अमृतस्राविणीत्वात् सकलसुखयुता। भावो मनोधर्मः, स्वभावः आत्मधर्मः, शुद्धो भावः स्वभावो यस्याः सा इति पञ्चम्यन्तबहुव्रीहिः "भावो हि मानसो धर्मः" इत्युक्तेः। येन द्वारेण कुण्डलिन्या ब्रह्मणि गमनं तद् द्वारमाह--ब्रह्मद्वारमिति। तदास्ये ब्रह्मनाड्या आस्ये।

मूलाधारात् सहस्रारस्तदन्तर्ब्रह्मनाडिका।
शिरा स्यात् ब्रह्मपर्यन्तं तदन्तर्द्वारमुत्तमम् ॥

इति मायातन्त्रात्।

ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति।
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥

## मूलाधारचक्रनिरूपणम्

**अथाधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् ।**
**अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ ४ ॥**

द्वारेण तद्रूपप्रदेशमित्यर्थः । **तदेदिति** । तस्य द्वारस्य एतत् समीपवर्त्ति प्रदेशं सुषुम्णाया **ग्रन्थिस्थानं** कन्दसुषुम्णयोः सन्धिस्थानं सुषुम्णाया वदनञ्चेति **लपन्ति** आगमज्ञा वदन्तीति समुदयार्थः ॥ ३ ॥

नाडीं निरूप्य अङ्गप्रत्यङ्गादिसहितं मूलाधारचक्रं निरूप्यते—**अथाधारपद्ममिति** नवभिः श्लोकैः । **सुषुम्णास्यलग्नं** चतुष्पार्श्वे कन्दसुषुम्णयोः सन्धिस्थानसंलग्नपत्रमित्यर्थः । **ध्वजाधो गुदोर्ध्वं** लिङ्गुमूलादधोऽवधि सुषुम्णापर्यन्तमित्यर्थः । चतुःशोणपत्रं रक्तवर्णचतुर्दलम् । **वकारादिसान्तैः**

शीकरस्तस्य गम्यप्रदेशो गमनप्रकृति यदास्यमिति यावत् । "प्रदेशः स्थानमार्गयो"रिति त्रिकाण्डशेषः । तदेतद्वदनं सुषुम्णानामनाडया ग्रन्थिस्थानं सुधियो वदन्तीति । ततस्तया सहास्यलग्नं मिलनं तत्रैवेति ॥ ३ ॥

अथाधार इति नाडीप्रस्तावानन्तरं षट्पद्मानां यथाक्रमं मूलतः सङ्गतिः कथ्यते । अथाधारपद्मं वक्ष्ये इति सम्बन्धः । सुषुम्णाया आस्ये संलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं गुदस्योर्ध्वे अपानस्थाने तत्पद्मस्य अवस्थितिः । चतुःशोणपत्रं चत्वारि रक्ताकारपत्राणि यस्य । अधःस्थितं वक्त्रं कर्णिकादि यस्येति । उद्यत्सुवर्णस्य या आभा तस्या इव वर्णो

इति गोरक्षसंहितावचनाच्च । सुधेति सुधाकणस्रुतिप्रदेशं ग्रन्थिस्थानम् । एतद्द्वारं सुषुम्णाया नाड्या वदनं धीरा वदन्ति ॥ ३ ॥

आधारपद्ममाह—अथेत्यादिना ।

षण्णवत्यङ्गुलायामं शरीरमुभयात्मकम् ।
गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद् द्व्यङ्गुलं विदुः ।
तस्माद् द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम् ॥

इति शारदोक्तकन्द एव मुख्यनाडी एव ग्रन्थिस्तदूर्ध्वं ध्वजाधः सुषुम्णास्यलग्नम् । तथा च मायातन्त्रे—मुख्यनाडीत्रयं ग्रन्थेरूर्ध्वं वज्राध ईश्वरि ।
रक्तवर्णो वेदवर्णो मूलाधारोऽप्यवाङ्मुखः ॥

इति । उद्यत् प्रस्फुटितम् ।

तयैव ग्रथितं पद्मं मूलादिपद्मपञ्चकम् ।
कलिकाकाररूपेण डाकिन्याद्यवलम्बिकम् ॥

इति वचनात् । पूर्वमेव व्याख्यातं तत् । सुवर्णाभवर्णैरिति । तथाच दक्षिणामूर्त्तौ—

धरामण्डलस्वरूपम्

**अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासि-शूलाष्टकैरावृतं तत् ।**
**लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं तदन्ते समास्ते धरायाः स्वबीजम् ॥५॥**

व श ष स इति **वेदवर्णैर्युतम्** । अत्र षट्चक्रेषु पद्मानां दलावच्छेदे दक्षिणावर्त्तेन वर्णयोगश्चिन्तनीयः । तदुक्तं **विश्वसारतन्त्रे**—

सर्ववर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्त्तितम् ।
दक्षिणावर्त्तयोगेन लिखनं चिन्तयेद्धिया ॥ इति ॥४॥

**अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रमिति** । एतत्पद्मकर्णिकायां चतुष्कोणरूपं पृथ्वीमण्डलं समास्ते इत्यर्थः । मण्डलं विशेषयति--समुद्भासीत्यादिना । तस्य मण्डलस्याऽष्टदिक्षु प्रकाशमानाष्टशूलैर्युक्तमेतन्मण्डलं **पीतवर्णम्** । स्पष्टमाह--

मूलाधारे धराचक्रं चतुष्कोणं प्रियंवदे ।
पीतवर्णं परिवृतं चाष्टशूलैः कुलाचलैः ॥ इति ॥

शूलैः कादृशैः ? कुलाचलैरिति । कामिभ्याः स्तनसदृशाग्रैरित्यर्थः । यद्वा कुलाचलैरिति ।

नीलाचलं मन्दरञ्च पर्वतं चन्द्रशेखरम् ।
हिमालयं सुबेलञ्च मलयञ्च सुपर्वतम् ।
चतुष्कोणे वसेद् देवि एतत् सप्तकुलाचलम् ॥

यस्य; एवम्भूतैरन्तस्थीयवकाराद्यैर्दलैः सकारान्तैश्चतुर्वर्णैर्युतम् । एतेन एतद्वर्णोपलक्षितदलान्यस्य वक्ष्यमाणस्वदलान्तरालमध्यवर्ति-तद्भूतवर्णत्वात् ॥ ४ ॥

अमुष्मिन् इति । अमुष्मिन् पद्मे धरायाः पृथिव्याश्चतुष्कोणावच्छिन्नं चक्रं सम्यक्प्रकारेण उद्भासितुं शीलं येषाम्, एवम्भूतैरष्टशूलैरावृतं तच्चक्रमिति । श्रीमद्भगवद्भैरवीकलाविर्भूतडाकिन्यादिनिवासभूतत्वात् पृथिव्यादिचक्राणां तन्त्राऽधिष्ठि-

आधारे स्वर्णवर्णेऽस्मिन् पद्मेषु वादिसान्तानि संस्मरेत् ।
द्रुतसौवर्णवर्णानि वर्णानि परमेश्वरि ॥ इति ॥

**सारसमुच्चये** षट्सु पद्मेषु वर्णा बिन्दुयुक्ता ग्रन्थगौरवभिया नात्र प्रकटिताः ॥ ४ ॥

चतुष्कोणचक्रमिति । तथा च **मायातन्त्रे**--

तत्कर्णिकान्तरे पृथ्वी चतुष्कोणा सुपीतभा ॥ इति ॥

तथा **तन्त्रान्तरे**--भूगृहं चतुरस्रं स्यादम्भोवज्रविभूषितम् ॥ इति ॥

धरायाः स्वबीजमिति । तथाच **शारदायाम्**--

वृत्तं दिवस्तत् षड्बिन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनः ।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्नेरर्द्धेन्दुसंयुतम् ॥

धराबीजध्यानम्

**चतुर्बाहुभूषं गजेन्द्राधिरूढं तदङ्के नवीनार्कतुल्यप्रकाशः ।**
**शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदबाहुर्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेदः ॥ ६ ॥**

इति निर्वाणतन्त्रवचनाद् यथा पृथ्वीमध्ये सप्त कुलाचलास्तथात्राऽष्टशूलानि कुलाचलसदृशानीति भावः । **तदन्ते** इति । तस्य धरामण्डलस्यान्ते मध्ये **धरायाः** स्वबीजं लकारः समास्ते । एतद्बीजमपि पीतवर्णम् । तद्यथा—

बीजं तन्मध्यतश्चैन्द्रं पीतवर्णं चतुर्भुजम् ।
वज्रहस्तं महाबाहुमैरावतगजस्थितम् ॥ इति ॥

तेन लसत्पीतवर्णमित्युभयसम्बन्धः ॥ ५ ॥

धराबीजध्यानमाह—चतुरित्यादि । यदेव धराबीजं, तदेव ऐन्द्रबीजमित्यविरुद्धम् । तदङ्के इति धराबीजस्याऽङ्के । **सृष्टिकारी** ब्रह्मा वसेदित्यन्वयः । तदङ्के धराबीजस्य बिन्दुमध्ये इति बोध्यम् । तदुक्तम्—

मूलाधारे धराबीजं तद्बिन्दौ ब्रह्मणः स्थितिः ।
तदङ्के शिशुरूपस्य गजारूढोऽमराधिपः ॥ इति ॥

शिशुरूपस्य ब्रह्मणः स्थितिरित्यन्वयः । तदङ्के धराबीजक्रोडेऽमराधिप इति तु मतान्तरम् । स्वमते धराबीजैन्द्रबीजयोरभेदात्, "मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता मन्त्ररूपिणी ।" इति वचनाच्च तयोरभेदवर्णनम् । **निर्वाणतन्त्रे** —

तत्वाच्च मूलाधारादीनां चक्रसंज्ञा प्रतीयते । "भैरवीचक्रसंस्थितिरि"त्यादियामलवचनात् । कीदृशं ? लसन् पीतवर्णो यस्य । विद्युदिव अङ्गं यस्य । तच्चक्रमध्ये पृथिव्याः स्वबीजमास्ते सानुस्वारलकार इति ॥ ५ ॥

चतुर्बाहुभूषमिति बीजस्य विशेषणम । चत्वारो बाहवो भूषा अलङ्कारा इव यस्य । गजेन्द्रमधिरूढं, "गत्यर्थाकर्मके"त्यादिसूत्रात् कर्त्तरि क्तः । तदङ्के तस्याङ्के बीजाकारमूर्त्तेरङ्के । प्रातःकालीनसूर्यतुल्यदीप्तिः सृष्टिकारी शिशुर्विराजते । लसन्तश्चत्वारो

अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकम् ।
तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः ।
वर्णैः स्वैरञ्जितान्याहुः स्वस्वनामावृतान्यपि ॥ इति ॥

तत्तद्भूतसमवर्णानि मण्डलानि । तथा स्वैर्वर्णैः ह-य-र-व-ल-वर्णैर्युक्तानि । स्वस्वनामावृतानि पृथिव्यादीनां स्वस्वनामावृतानीत्यर्थः । एतदनुसारेण सर्वेषु स्वस्वबीजानि ज्ञेयानि ॥ ५ ॥

चतुर्बाहुरिति । अत्र पद्मे ब्रह्मास्तीत्याह—तदङ्क इत्यादिना । नवीनार्कतुल्य-

ऐन्द्रबीजं वरारोहे लिङ्गस्य वामदेशके ।
सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम् ।
तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिः ।। इति ।।

अत्र बीजस्योर्ध्वे नादोपरि ब्रह्मस्थितिकथनेन नादोर्ध्वे बिन्दुमध्ये स्थितिरवगम्यते । "लिङ्गस्य वामदेशके" इति मतान्तरम् । अत एव **शारदायाम्**—

आधारांश्च विदुस्तत्र मतभेदादनेकधा ।

इत्युक्तम् । स किम्भूतः ? **लसद्वेदबाहुरिति** ।

अत्र केचिद् ब्रह्मणो द्विभुजदर्शनेन लसद्बाहुवेदाः सामवेदादयो बाहौ यस्येति व्युत्पत्तिं कृत्वा तदेव संस्थापयन्ति । तन्न । ब्रह्मणो हस्ताभ्यां वेदधारणस्य कुत्राऽप्यदर्शनात् किन्त्वत्र ब्रह्मा चतुर्भुजत्वेनैव ध्येयः । तथा स्पष्टमाह **भूतशुद्धौ**—

तदङ्के च चतुर्बाहुं रक्तवर्णं शिशुं शिवे ।
चतुर्वक्त्रं हंसपृष्ठे ब्रह्माणं विद्धि पार्वति ।। इति ।।

**मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेद** इति । अस्य ब्रह्मणश्चतुर्भिर्भागैर्यो भेदोऽवयवेषु विशेषः, सैव मुखाम्भोजलक्ष्मीरित्यर्थाद् ब्रह्मणश्चतुर्मुखत्वमायातम् । यद्वा—मुखे अम्भोजलक्ष्मीर्यस्य, तथा चतुर्भिर्भागैरर्थान् मुखावच्छेदे भेदो यस्येति विशेषणद्वयम् । "चतुर्भागवेद" इति पदेऽभेदरूपेण पूर्वप्रकारार्थः ।

अत्र [ केचिद् ] ब्रह्मणो हस्तेऽस्त्रानभिधानेऽपि—

दण्ड-कमण्डलु-धरामक्षसूत्राभयं तथा ।
ध्यायेत् तां रक्तवर्णाञ्च ब्राह्मीं कृष्णाजिनोज्ज्वलाम् ।।इति।।

**विश्वसारतन्त्रोक्त**ब्राह्मीध्याने ब्रह्मशक्तिहस्ते दण्डकमडलवक्षसूत्राभयदर्शनात् अत्रापि तथा कल्प्यते, 'यस्य देवस्य यद्रूपमि' त्यादिना **सप्तसतीस्तोत्रे** शिवशक्तयोरेकास्त्रदर्शनादिति वदन्ति ।

वस्तुतस्तु—अभय-वरद-हस्तं कुण्डिकामक्षमालाम् ।
दधतममलभूषं चिन्तयेदादिमूर्त्तिम् ।।

इति **यामलो**क्तकर्मान्तरीयध्यानप्राप्ताभयवरादीनि ध्येयानि । स्पष्टयन्यत् ।। ६ ।।

बाहवो यस्य । मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागो वेदो यस्य । अर्थात् चतुर्मुखविशिष्टब्रह्मा इत्यर्थः ।। ६ ।।

प्रकाशो रक्तवर्णः सृष्टिकारी ब्रह्मा चतुर्बाहुयुक्तः । चतुर्भागवेदो मुखम्भोजलक्ष्मीर्यस्य स तथा ।। ६ ।।

आधारपद्मस्थ-डाकिनीशक्तिस्वरूपम्

**वसेदत्र देवी च डाकिन्यभिख्या लसद्वेदबाहूज्ज्वला रक्तनेत्रा।**
**समानोदितानेकसूर्यप्रकाशा प्रकाशं वहन्ती सदा शुद्धबुद्धेः ॥ ७ ॥**

आधारपद्मे डाकिनीशक्तिस्थितिमाह–**वसेदिति। अत्र पद्मे डाकिनी** नाम्नी **देवी वसेद्**इत्यन्वयः। सा किम्भूता ? **सदा** सर्वस्मिन् काले शुद्धबुद्धेस्तत्त्वज्ञानस्य **प्रकाशं वहन्ती** तत्त्वज्ञानसम्पादयित्रीत्यर्थः। तथाच योगाङ्गत्वेनाऽत्र तां ध्यात्वा तत्त्वज्ञानमाप्नोतीति भावः। इयं देवी चक्राधिष्ठात्री। तदुक्तम्—

वक्त्रं व-श-ष-सोपेतं डाकिन्या समधिष्ठितम् ॥ इति ॥

तथा—डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा।
शाकिनी हाकिनी चैव क्रमात् षट्पङ्कजाधिताः ॥ इति ॥

अस्या ध्यानविशेषमाहाऽन्यत्र—

रक्ताक्षीं रक्तवर्णां पशुजन-भयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां
वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं चैकवक्त्राम्।
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथनीं पायसान्ने प्रसक्तां
मूलाधारेऽमृतार्थे परिवृतवपुषं डाकिनीं चिन्तयेत् ताम् ॥ इति ॥

तथा—सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम्।
कृष्णाम्बरपरीधानां नानाभरणभूषिताम् ॥ इत्यादि—

कर्मान्तरोक्त-डाकिनीध्यान-प्राप्त-कृष्णाम्बरं ध्येयमिति। अत्र ब्रह्मादीनां षट्चक्रस्थसकलदेवानां भावभेदेनोर्ध्वाधोवक्त्रेण स्थितिचिन्तनमाह **शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतमायातन्त्रे—**

पार्वत्युवाच—
अधोवक्त्रस्थितिस्तत्र अधोभागे कथं भवेत्।

**वसेदत्रेति। अत्रैव चक्रे डाकिन्यभिख्या नाम यस्याः, सा वसेत्। "अभिख्या नामशोभयो"रित्यमरः। लसद्भिः प्रकाशद्भिश्चतुर्बाहुभिरुज्ज्वला रक्ताकारनेत्रा च सा देवी। समानोदितेति। एककालीनोदितानामनेकसूर्याणामिव प्रकाश उदयो यस्याः सा**

अत्र डाकिनी शक्तिरस्तीत्याह वसेदत्रेति। तथाच भट्टधृततन्त्रे—
मूलाधारं ब्रह्मणः स्थानमेतत् सौवर्णाभं डाकिनी देवताऽत्र ॥ इति ॥
एषा डाकिनी अनेकसूर्यप्रकाशा। अतिशयरक्ता इत्यर्थः। तन्त्रान्तरे—

मूलचक्रकर्णिकास्थ-त्रिकोणस्वरूपम्

**वज्राख्या-वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं**
**कोणं तत् त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम् ।**

इति प्रश्ने— महादेव उवाच—

तत् सर्वं पङ्कजं देवि सर्वतोमुखमेव च ।
प्रवृत्तिभावचिन्तायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत् ।
निवृत्तिभावमार्गेषु सदैवोर्ध्वमुखानि च ।। इति ।।

अन्यत् सुगमम् ।। ७ ।।

मूलचक्रकर्णिकायां त्रिकोणं निरूप्यते—**वज्राख्या-वक्त्रदेश** इति । सुषुम्णाया आस्याद् द्वयङ्गुलोर्ध्वे लिङ्गमूलादधो वज्रावक्त्रम् । तत् तु मूलाधारकमल**कर्णिकामध्यस्थग**ह्वरान्तर्वत्ति, तत्र **त्रिकोणं विलसती-**त्यन्वयः । त्रिकोणं कीदृशम् ? **त्रैपुराख्यमिति** । त्रिकोणगर्भस्थ-कामबीज-घटक-ककारमध्ये त्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठानात् त्रैपुराख्यमिति तात्पर्यम् । तदुक्तं **शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां** ककारतत्त्वकथनमुपक्रम्य—

तेषां मध्ये स्थिता देवी सुन्दरी परदेवता ।। इति ।।

**तथा । सर्वदा शुद्धबुद्धीनां प्रकाशं वहन्ती, परमार्थविषयीभूता सदृशं विभाषयन्ती तदावाग्विराणां ज्ञाननेत्र ददातीत्यर्थः ।। ७ ।।**

**वज्राख्येति । अस्यैव पद्मस्य कर्णिकामध्यस्थं त्रैपुराख्यं त्रिपुरासम्बन्धीदं त्रैपुरं, तदेवाख्या नाम यस्य । चतुष्कोणं वज्राख्यनाड्याः समदेशे प्रकाशते । सर्वदैव विद्युदिव प्रकाशते कोमलं कामरूपपीठम् । यद्वा भक्ताभिलाषस्वरूपम् । तस्य कोणस्य मध्ये**

रक्तां रक्तत्रिनेत्रां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां ।
वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं कैकवक्त्राम् ।। इति ।।

शुद्धबुद्धेः प्रकाशं वहन्तीत्यन्वयः ।। ७ ।।

मध्ये अवान्तरदेवतादिकमभिधाय प्रकृतमाह—वज्राख्येति । वज्राख्याया वक्त्र-देशे । सामीप्ये सप्तमी, अधोभागे इति यावत् ।

मुख्यनाडीत्रयं ग्रन्थेरूर्ध्वं वज्राध ईश्वरि ! ।

इति मातातन्त्रात् । कर्णिकामध्यसंस्थं त्रैपुराख्यं त्रिकोणम् । तत् कामरूपाख्यं त्रिकोणम् । कन्दर्पो वह्निः समन्ताद् भ्रमति । नाम प्रकर्षे । जीवेशो वायुश्च निवसति । तथाच मायातन्त्रे—

**कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ता-**
**ज्जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः ॥ ८ ॥**

**कोमलं सुस्निग्धम्**। तथा **कामरूपं** कामं निरूप्यतेऽनुभूयते येन तादृशं, मदनागारात्मकमित्यर्थः। अत एव--

त्रिकोणं तत् तु विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्।

इत्युक्तम्। एतत् त्रिकोणं धराबीजस्योर्ध्वे। तदुक्तं **सम्मोहने** धराबीजमधिकृत्य—

वामा ज्येष्ठा तथा **रौद्री त्रिरेखा** च तदूर्ध्वतः॥ इति॥

तत्त्रिकोणामध्ये कन्दर्पवायुस्थितिमाह--**कन्दर्प** इति। **समन्तात्** त्रिकोणव्यापकरूपेणेत्यर्थः। **जीवेश** इति। अस्य जीवधारकत्वाज्जीवेश इत्युक्तम्। तथा हि—

कन्ददेशे वसेत् प्राणो ह्यपानो गुदमण्डले।

इत्यादि-वचने गुदमण्डलस्थ-वायोरपानत्वाभिधानात् तादृशगुदमण्डलस्थ-कन्दर्पवायोरप्यपानांशः। ततश्च—

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानञ्च कर्षति।
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः।
तथा चैतौ विसंवादे संवादे संत्यजेदिमम्॥ इति॥

समन्ताच्चतुर्दिक्षु सर्वदैव कन्दर्पो नाम वायुर्विलसति। काम एव वायुभूतोऽत्राऽस्तीति गुरुचरणाः। तेनैव हेतुना जीवात्मनाविर्भवतीत्याह--जीवेश इति। किम्भूतः ? बन्धूकपुष्पसमूहमत्यर्थमुपहसन्निव। ततोऽप्यत्यर्थरक्ताकारः। अतो वायू रूपवानित्यादि-

तत्कर्णिकान्तरे पृथ्वी चतुष्कोणा सुपीतभा।
तन्मध्ये योनिमध्ये च वह्निवाय्वोः समाश्रये॥ इति॥

श्रीक्रमेऽपि—कर्णिकायां स्थिता योनिः कामाख्या परमेश्वरि।
अपानाख्यं हि कन्दर्पमाधारे तत्त्रिकोणके।
स्वम्भूलिङ्गं तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं प्रिये॥ इति॥

रुद्रयामलेऽपि—भ्रमदयोनिगतं ध्यायेत् कामं बन्धूकसन्निभम्।
ज्वलत्कालानलप्रख्यं तडित्कोटिसमप्रभम्॥ इति च॥

तदेवाह—जीवेश इत्यादिना। बन्धूकपुष्पसमूहमभिहसन् तदधिकरक्तवर्ण इति भावः। "बन्धूको बन्धुजीवकः" इत्यमरः। "आधारे तत्त्रिकोणके" इत्युक्तत्वात्। तथा—

त्रिकोणमध्यस्थ-स्वयम्भुलिङ्गस्वरूपम्

**तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुत-कनककला-कोमलः पश्चिमास्यो ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भुः।**

'विसंवादे' परस्परवैपरीत्यगमने 'एतौ' प्राणापानवायू 'तथा' कर्षाकर्षिणौ 'संवादे' अविरोधिगमने 'इमं' देहं 'सन्त्यजेदि'त्यर्थक-तद्वचने कन्दर्पावान्तरनामकापानवायोः प्राणाकर्षकत्वेन देहधारणत्वाज्जीवधारकत्वं प्रतीयते। अतो जीवेश इत्युक्तिरिति भावः। अत एव ग्रन्थकृता दशमश्लोके "श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते" इत्यनेन श्वासोच्छ्वासरूपयोः प्राणापानयोर्जीवधारकत्वं स्वयमेवोक्तम्। स्पष्टमन्यत् ॥ ८ ॥

त्रिकोणमध्ये स्वयम्भुलिङ्गस्थितिमाह—**तन्मध्य** इति। त्रिकोणमध्ये **लिङ्गरूपी स्वयम्भुः** स्वयम्भुनामकशिवलिङ्गं विलसतीत्यन्वयः। **द्रुतकनककला-कोमल**स्तप्तकाञ्चनावयव इव स्निग्धभाव इत्यर्थः। **पश्चिमास्यो**ऽधोमुखः। तदुक्तं **कालीकुलामृते**--

तत्र स्थितो महालिङ्गः स्वयम्भुः सर्वदा सुखी।
अधोमुखः क्रियावांश्च कामबीजेन चालितः॥ इति॥

**ज्ञानध्यानप्रकाश** इति। ज्ञानध्यानाभ्यां प्रकाशो यस्य तादृश इत्यर्थः। तथा च ज्ञानेन निर्गुणरूपप्रकाशो ध्यानेन च सगुणरूपप्रकाशो यस्य स एवायं स्वयम्भुरिति भावः। दृष्टान्तेन विशेषयति—**प्रथमकिसलयाकाररूप** इति। अचिरोत्पन्नपत्राङ्कुरवदाकारो रूपं यस्य। तेन स्थूलमूलात् सूक्ष्माग्र-

सांख्यसिद्धान्तोऽपि संगच्छते। पुनः कीदृशः? कोटिसूर्याणामिव प्रकाशो दीप्तिर्यस्येति॥ ८॥

तन्मध्ये इति। तत्कोणस्य किञ्चिदुपरि लिङ्गरूपी स्वयम्भुर्भावरूपेण तिष्ठति। कीदृशः? द्रुता या कनककला वह्निश्लथीभूता तस्या इव कोमलः। पश्चिमा योऽधो-

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मिके।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गस्तु कोटिसूर्यसमप्रभः॥

इति गौतमीयात्। तथा--

अधोमुखो लिङ्गरूपी हेमाभो भ्रमणे रतः॥ इति॥ ८॥

पुनरपि मायातन्त्राच्चाह--तन्मध्ये इति। त्रिकोणमध्ये लिङ्गरूपि स्वयम्भूलिङ्गम् द्रुतसुवर्णकलाकोमल इति। सुवर्णवर्णयोगित्वात् कोमलत्वाच्च तथाभिहि-

**विद्युत् - पूर्णेन्दुबिम्ब - प्रकरकर-चय-स्निग्धसन्तान - हासी**
**काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूपप्रकारः ॥ ९ ॥**

पर्यन्तं चम्पककुसुममध्यस्थितशलाकावदुन्नतः श्यामवर्णश्चेत्यर्थः । तदुक्तं **शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम्**--

स्वयम्भुलिङ्गं तन्मध्ये सरन्ध्रं पश्चिमाननम् ।
ध्यायेच्च परमेशानि शिवं श्यामलसुन्दरम् ॥ इति ॥

यत्तु--मलाधारे स्मरेद् दिव्यं त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
तस्यास्त्रिरेखामानीय अधऊर्ध्वव्यवस्थिताम् ॥
नीलतोयद-मध्यस्थां तडित्कोटि-समप्रभाम् ।

इति **यामलवचने** कुण्डलिन्या नीलतोयदमध्यस्थविशेषणेन स्वयम्भुलिङ्गस्य नीलवर्णत्वमायातम् । तन् नीलश्यामयोरेकपर्यायत्वान्न विरुद्धम् । **विद्युत्-पूर्णेन्दुबिम्ब-प्रकरकर-चय-स्निग्धसन्तानहासीति** । विद्युत्-पूर्णचन्द्रबिम्बयोर्यः प्रकृष्टकर उत्तापरहितकिरणः तत्तुल्यकिरणसमूहेन मृदुप्रवाहविशिष्टप्रकाशोऽस्याऽस्तीत्यर्थः । **काशीवासी विलासीति** । अत्र काशीवासतुल्यवासविशिष्टः सन् विलासीत्यर्थः । तेन यथा काशीवासे सुखं भुनक्ति तद्वदत्रापीति भावः । अथवा विलास उल्लासः कामप्रफुल्लभाव इति यावत्, तद्विशिष्ट इत्यर्थः । "कामबीजेन चालित" इति वचनात् । अयं स्वयम्भुः काशीवासी । एतेनास्य विश्वेश्वरत्वं सूचितमिति । **सरिदावर्त्तरूपप्रकार** इति सरिदावर्त्ते यद्रूपं तत्प्रकारः । ततश्च यथा भ्राम्यमाणनदीजलं मध्यनिम्नं तन्मध्ये किञ्चिदुन्नतं शङ्खमध्योन्नतवदिति भावः । अयं स्वयम्भुः कामबीजोपरिस्थितः । तदाह **कालीकुलामृते**--

किञ्जल्कोपरि शृङ्गाटः सरन्ध्रः सुमनोहरः ।
तत्र स्थितो महालिङ्गः स्वयम्भुः सर्वदा सुखी ।
अधोमुखः क्रियवांश्च कामबीजेन चालितः ॥ इति ॥

---

मुखः । ज्ञानध्यानाख्ययोगाभ्यां प्रकश उदयो यस्य । नवीनपल्लवाकारस्येव रूपं यस्य । विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बसमूहानां करवृन्दस्निग्धसमूहस्येव हास्यं सविशेषो यस्य । तत्स्थानमपि

---

तम् । पश्चिमास्यः अधोमुखः । ज्ञानध्यानाभ्यां प्रकाश्यते यः स तथा । प्रथमकिसलयाकाररूपो नूतनपल्लवाङ्कुराकारः । विद्युदिति । तथाच पूर्णचन्द्रादधिकरससमूह इत्यर्थः । स्निग्धसन्तानं स्निग्धसमूहं हसतीति स्निग्धसन्तानहासी । काशी-

स्वयम्भुलिङ्गस्थ-कुण्डलिनीशक्तिस्वरूपम्

**तस्योर्ध्वे बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी**
**ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं संछादयन्ती स्वयम् ।**

तथान्यत्र--पूर्वोक्ता डाकिनी तत्र कर्णिकायां त्रिकोणकम् ।
यन्मध्ये विवरं सूक्ष्मं रक्ताभं कामबीजकम् ।
तत्र स्वयम्भुलिङ्गञ्चाधोमुखालक्तकप्रभम् ॥ इति ॥

**मतान्तरम्** ॥ ६ ॥

**स्वयम्भुलिङ्गे** कुण्डलिनीशक्तिस्थितिमाह--**तस्योर्ध्व** इति द्वाभ्याम् । अनयोरर्थः--**यथा कुण्डलिन्या श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन** प्रवर्त्तनेन **जगतां जीवो** जीवात्मा **धार्यते** देहावच्छेदे स्थाप्यते सा देवी **मत्तालिमालास्फुटं** यथा स्यात् तथाकृतिरेवं वक्ष्यमाणक्रमैर्वाचमर्थाज् जनयन्ती सती **अम्बुजगह्वरे** मूलाधारकमलकर्णिकामध्यत्रिकोणगह्वरे **तस्य** स्वयम्भुलिङ्गस्योर्ध्वभागे **विलसतीति** श्लोकद्वयस्य विशिष्टान्वितार्थः । **बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा** मृणालसूत्रतुल्यसूक्ष्मेत्यर्थः । **जगन्मोहिनी** जगतां मायारूपिणीत्यर्थः । **ब्रह्मद्वारमुखं** स्वयम्भुलिङ्गच्छिद्रं **मधुरं** मृदु यथा स्यात् तथा **स्वमुखेन** संछादयन्तीत्यर्थः । **नवीनचपलामालाविलासस्पदेति** । सर्वेषां नवीनत्वे प्रकाशाधिक्यदर्शनादत्र नवीनोत्कीर्त्तनमधिकप्रकाशप्राप्त्यर्थम् । ततश्चातिप्रकाशितविद्युन्मालानां विलासस्य स्थिरतरकौतूहलवासस्यास्पद इत्यर्थात्

काशी । विलासी विलसितुं शीलमस्य । सरिदावर्त्तरूपः प्रकार आकृतिर्यस्य, अतिचञ्चलत्वात् । एवम्भूतः सन् विलसति ॥ ६ ॥

तस्योर्ध्वे इति । तस्य शिवस्योर्ध्वेऽध इत्यर्थः । मृणालतन्तुसदृशी शरीरकला यस्याः, एवम्भूता सा कूजन्ती कुलकुण्डलिनीति वक्ष्यमाणश्लोकेनान्वयः । यतो बिसतन्तुसदृशी, अतः सूक्ष्मा । जगतां मोहिनी महामायारूपेणेत्यर्थः । ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मुख-

वासीत्यादिविशेषणम् । सरितामावर्त्तश्चक्रवज्ज जलानां भ्रमणं तद्रूपप्रकाशो यस्य स तथा । "स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः ॥ ९ ॥

तल्लिङ्गं सार्द्धत्रिवलयेनावेष्टय कुण्डलिनी शक्तिरस्तीत्याह—तस्योर्ध्वे इत्यादिना । बिसतन्तुसोदरतुल्या सा चासौ कला प्रकृतिश्चेति सा तथा । अतः सूक्ष्मा । नवीनचपलामाला तस्या विलसनशोभया सह आस्पदमास्पर्द्धा यस्याः सा तथा । "तडित् सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपलाप च" इत्यमरः । सुप्ता निद्रिता शिवोपरि लसन्ती सार्द्धत्रिवृत्ता आकृतिः शरीरं यस्याः सा तथा । सा तु अधोवक्त्रा । यथा **श्रीक्रमे**—

शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥ १० ॥

स्थिरतरातिप्रकाशितविद्युत्समूहप्रकाशतुल्य-प्रकाशवतीति पर्यवसितम्। वाक्यजननक्रममाह—**कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैरिति**। **कोमलकाव्यं** मृदुशब्दघटित-रूपगुणरसादि-वर्णनात्मक-वाक्यम्। बन्धः पद्मबन्धाश्वबन्धादि-चित्रकाव्यम्। **रचना** तदतिरिक्तगद्यपद्यात्मक-वाक्यम्। **भेद**स्तेषां विशेषः। **अतिभेद**स्तदितरसंस्कृतवाक्यसमुदायः। तयोर्यः **क्रमः** शास्त्रव्यवहारानुरूपरीतिः। तादृशीभी रीतिभिर्वाचं जनयन्तीति परिष्कृतार्थः, कुण्डलिन्याः संकृतप्राकृतविशेषाविशेषयावद्वाक्यजनयित्रीत्वात्। तदाह **शारदायाम्**—

भिद्यमानात् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदातः ॥ इति ॥

"**गद्यपद्यादी**"त्यादिपदाद् यावद् वाक्य गृह्यते। व्यक्तमाह **कादिमते**—

स्वात्मेच्छाशक्तिघातेन प्राणवायुस्वरूपतः।
मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्यो नाद उत्तमः ॥

कमलेन स्वयमेव सञ्छादयन्ती, सम्यक् प्रकारेणाच्छादयन्तीत्यर्थः। एतेन अमृतवर्त्मसञ्छादनं कृत्वा अमृतं पिबतीत्यर्थः। अस्तदमृतसंयोगेन तन्मुखं मधुरं। शङ्खस्य वेष्टनाकारतुल्या। नवीनविद्युच्छ्रेणीप्रकाश एव स्थानं यस्यास्तत्सदृशीति यावत्। सुप्ता अतः सर्पतुल्या। सर्पो हि सुप्तः कुण्डलाकारो भवति। शिवस्योपरि लसन्ती प्रकाशमाना सार्द्धत्रिवृत्ता आकृतिः शरीरं यस्याः ॥ १० ॥

अधोवक्त्रा स्थिता देवी ऊर्ध्वपुच्छातिशोभना।
अत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता ॥
परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ता हि भुजगाकृतिः।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति ॥
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं मनोमयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥
मस्तके मणिवद् भिन्ना स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनी ॥ इति ॥

योगान्तरेऽपि—मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं कुण्डलीशक्तिरुज्ज्वला।
निद्रावशगता देवी प्रसुप्तभुजगोपमा ॥ इति ॥

तथा मायातन्त्रेऽपि—सार्द्धत्रिवलयानन्दा नन्दिता भास्करप्रभा ॥ इति ॥ १० ॥

**कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं**
**वाचं कोमलकाव्य-बन्ध-रचना-भेदातिभेद-क्रमैः ।**

स एव चोर्ध्वतां नीतः स्वाधिष्ठानविजृम्भितः ।
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः ॥
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिधः ।
तथा तयोरूर्ध्वगतो विशुद्धौ कण्ठदेशतः ॥
वैखर्याख्यस्ततः कण्ठशीर्षताल्वोष्ठदन्तगः ।
जिह्वामूलाग्रपृष्ठस्थस्तथा नासाग्रतः क्रमात् ॥
कण्ठताल्वोष्ठकण्ठस्थः कण्ठौष्ठद्वयतस्तथा ।
समुत्पन्नान्यक्षराणि क्रमादादिक्षकावधि ॥ इति ॥

अलं विस्तरेण । कुण्डलिनीध्यानान्तरमाहाऽन्यत्र--

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भुलिङ्गवेष्टिनीम् ।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्ययेदूर्ध्ववाहिनीम् ॥

**कूजन्तीति । सा कुण्डलिनी मधुरं यथा स्यात् तथा शब्दं कुर्वन्तीत्यर्थः । एतेन लब्धध्वन्यात्मकः शब्दो भवति । तत्र स एव शब्दः कण्ठताल्वाद्यभिघातेन वर्णात्मकत्वेन परिगण्यत इत्याह । कोमलकाव्यबन्धग्रथनाया यो भेदो नानाप्रबन्धो गौडी वैदर्भी**

**कूजन्तीति** । उत्थिता सतीति शेषः । तथा **च तन्त्रा तरे**--

झिल्लीवाऽव्यक्तमधुरा कुजन्ती सततोत्थिता ॥ इति ॥

**कोमलकाव्यै**[वाक्यै]र्वाचं कूजन्तीत्यर्थः ।

तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् ।
वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः ॥

इति **शारदोक्तेः** । तत् चैतन्यम् । श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन वायुना तथा जगतां जीवः जीवात्मा हंसः धार्यते [ तदुक्तं –]

विभर्त्ति कुण्डलीशक्तिरात्मानं हंसमाश्रिता ।
हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणो नाडीसमा [पथा]श्रयः ॥
आधारातुद्गतो वायुर्यथावत् सर्वदेहिनाम् ।
देहं प्राप्य स्वनाडीभिः प्रयाणं कुरुते बहिः ।
द्वादशाङ्गुलमानेन तस्मात् प्राण इतीरितः ॥ इति ॥

**भट्टाः**—कुण्डली शक्तिरात्मानं परमात्मानं विभर्त्ति तद्योगभागिनी भवतीत्यर्थः । कीदृशी ? हंसं जीवात्मानमाश्रिता जीवाधिष्ठाना सतीत्यर्थः । हंसः प्राणाश्रयः,

**श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते**
**सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः ॥ ११ ॥**

तथा--ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीमिष्टदेवस्वरूपिणीम् ।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
पूर्णचन्द्रप्रभां रक्तां सदा चञ्चललोचनाम् ॥ इति ॥

"रक्तामि"ति सुन्दरीविषये ज्ञेयमिति **शाक्तानन्दतरङ्गिणीकारः** । वस्तुतस्तु सर्वदेवताविषये एव कुण्डलिनी रक्तवर्णत्वेन ध्येया न तु श्यामवर्णत्वेन, प्रायः सर्वतन्त्रे सर्वसंग्रहे च कुण्डलिन्यास्तडिदाकारत्वकथनात् । "श्यामामि"त्यनेन—

शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला ।
प्रतप्तकाञ्चनाभा सा श्यामा स्त्री परिकीर्त्तिता ॥

इत्येतद्वचनाक्रान्तत्वं ज्ञापितम् । न तु श्यामवर्णत्वमतः सर्वशास्त्र-सामञ्जस्यमिति । चक्रभेदनात् पूर्वं ब्रह्मद्वारमध्ये कुण्डलीध्यानमाह **कङ्कालमालिन्याम्**—

कोटिचन्द्रप्रतीकाशां परंब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च वराभयकरां तथा ॥
तथा पुस्तकवीणाञ्च धारिणीं सिंहवाहिनीम् ।
गच्छन्तीं स्वासनं भीमां नानारूपधरात्मिकाम् ॥इति१०-११॥

**पाञ्चाली कवितारीतिक्रमस्तस्य भेदस्य शृङ्गारादिनवरसबन्धेन योऽतिभेदस्तत्क्रमैः । मत्तभृङ्गमालेव स्फुटं यथा स्यात्तथा वाचश्च कूजन्ती तस्या एव वैखरीत्वमायातमिति । यया देव्या च श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो धार्यते सा मूलाधारपद्मकुहरे प्रकाशते । प्रोद्दामदीप्ता बलिर्यस्याः, दीप्तमिति भावे क्तः ॥ ११ ॥**

प्राणवायुसमाश्रयः इत्यर्थः । प्राणी नाडीसमाश्रयः । कथं तस्य नाडीसमाश्रयत्वम् ? इत्यत आह--आधारादिति । प्रयाणं कुरुते इति प्राण इति प्राणपदव्युत्पत्तिरपि दर्शितेत्यन्तेनाहुः ।

**दक्षिणामूर्त्तौ तु**--उच्छ्वासे चैव निश्वासे हस इत्यक्षरद्वयम् ।
तस्मात् प्राणस्तु हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः ॥
षटशतान्यधिकान्यत्र सहस्राण्येकविंशतिः ।
अहोरात्रं चरेद् वायुः स जपो मोक्षदायकः ॥ इति ॥

विज्ञानभैरवोक्ते अन्यत्रापि- सः कारेण बहिर्याति हंकारेण विशेत् पुनः ॥ इति ॥
प्रोद्दामदीप्तश्रेणी (?) ॥ ११ ॥

कुण्डलिनीमध्यस्थ-परशक्तिस्वरूपम्

**तन्मध्ये परमा कलाऽतिकुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा**
**नित्यानन्द - परम्परातिविगलत् - पीयूषधारा - धरा ।**
**ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यदभासया भासते**
**सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया ॥ १२ ॥**

स्वयम्भुलिङ्गवेष्टितकुण्डलिन्यूर्ध्वे समसूत्रपातन्यायेन दण्डकारेण लिङ्गाग्रपर्यन्तस्थितां परशक्तिमाह--**तन्मध्य** इति । अस्यार्थः--**यद्भासया** यस्याः शक्तचा दीप्त्या **ब्रह्माण्डादि तत्कटाहश्च भासते** प्रकाशते, **सेयं श्रीपरमेश्वरी तन्मध्ये** स्वयम्भुलिङ्गे कुण्डलिनीवेष्टनोर्ध्वे **विजयते,** सर्वान् वशवर्त्तिनः कृत्वा तिष्ठतीत्यर्थः । सा किम्भूता ? **परमाऽ**घटनघटनपटीयसी माया । **कला** नादशक्तिरूपा कुण्डलिन्यभेदशरीरिणी । तदुक्तं **शाक्तानन्द-तरङ्गिण्याम्**--कला कुण्डलिनी सैव नादशक्तिः शिवोदिता । इति ।

तथान्यत्र--तस्योपरि मनो ध्यायेच्चित्कलामी-समाश्रिताम् ।
प्रदीपकलिकाकारां कुण्डल्यभेदरूपिणीम् ॥ इति ॥

तथा **कालिकाश्रुतौ**

तस्याः शिखाया मध्ये तु अध ऊर्ध्वव्यवस्थिताम् ।
स ब्रह्मा स शिवः शूरः स एव परमेश्वरः ॥
स एव विष्णुः स प्राणाः स कालाग्निः स चन्द्रमाः ।
इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ॥

तस्याः शिखाया मध्ये त्रिबलयस्योर्ध्वे व्यवस्थितां परमां कलां नादरूपामित्यर्थ इति **ललितारहस्यकारः** । **अतिकुशला** सृष्टिसम्पादनयोग्यतारूप-

**तन्मध्य इति । तस्याः कुण्डलिन्या मध्ये परमा कला आस्ते । परं परमात्मानं मीयतेऽनयेति परमा । अत्यर्थ कुशलं यतः साऽतिकुशला । सूक्ष्मा, यतस्तस्या मध्ये परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी । समाधिरूपा नित्यमानन्दपरम्परा यस्याः सा तथा । अत्यर्थ-विद्युन्मालेव लसन्ती प्रकाशमाना दीधितिस्तेजो यस्याः । ब्रह्माण्डस्य आदिकटाहपर्यन्तं**

तस्याः कुण्डलिन्या मध्ये परमा नाम्नी शक्तिरुच्यते --तन्मध्ये इत्यादिना । परमा उत्कृष्टा । परा परानाम्नी अतिसूक्ष्मा । तथाच **भट्टधृततन्त्रे** --

सूक्ष्मा कुण्डलिनी मध्ये ज्योतिर्मात्रा परा मता ॥ इति ॥

सा एव परमात्मस्वरूपा । तथा च श्रुतिः--

तस्याः शिखाया मध्ये तु परमा सा व्यवस्थिता ॥ इति ॥

मूलाधारे कुण्डलिनीशक्तिचिन्तनफलम्

**ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तर - विवर-लसत्-कोटिसूर्य - प्रकाशां**
**वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी ।**

कौशलवतीत्यर्थः । **नित्यानन्दपरम्परेति ।** नित्यानन्दात् परम्परा परपरक्रम-सम्बन्धो यस्या इत्यर्थः । ततश्च नित्यानन्दो निर्गुणं ब्रह्म, तस्मात् सगुणा-विर्भावः, सगुणाच्छक्तिः, शक्तेर्नादो, नादाद् बिन्दुर्बिन्दोः कुण्डलिनी कुण्ड-लिन्यवान्तररूपेयं चित्कलेत्येवंप्रकारेण नित्यानन्दपरम्परेति भावः । यद्वा नित्यानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरेत्येकविशेषणम् । निन्यानन्दात् परम्परया नित्यानन्दात् परं बिन्दुः, तत्परमाज्ञाचक्रं, तत्परं विशुद्धचक्रमेवं क्रमेण मूलाधारपर्यन्तमतिविगलन्ती या पीयूषधारा सा ध्रियते गृह्यते यया सेत्यर्थः । स्पष्टमन्यत ॥ १२ ॥

मूलाधारे कुण्डलिनीचिन्तनफलमाह—**ध्यात्वैतदिति । मूलचक्रति ।** "मूलामाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदुरि"ति वचनान् मूलाधारचक्रं, तस्यान्तरे मध्ये यद **विवरं गह्वरं**, तस्मिन् लसत्कोटिसूर्यप्रकाशामित्यर्थः । **सकलसुरगुरूनिति** । "सिंहशार्दूलनागाद्याः पंसि श्रेष्ठार्थवाचका" इत्यम-रोक्त्या सुरगुरुवर्त्तिना गुरुशब्देन सुरश्रेष्ठा ब्रह्मविष्णुशिवादयः प्रतीयन्ते । ततश्च तदादिदेवान् **सेवते** स्तवादिवाक्यैस्तोषयतीत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ।

**तदयं महावक्यार्थनिर्णयः ।** मूलाधारचक्रं चतुर्दलं रक्तवर्णम् । व-श-ष-सेति स्वर्णाभचतुर्वर्णयुक्तदलकर्णिकायां धरामण्डलं चतुष्कोणामष्ट-

**यस्याः कलाया भासया सकलं भासते । यद्वा शरीरस्यापि ब्रह्माण्डसंज्ञा, "ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते हि सन्ति कलेवरे" इति प्रामाणिकोक्तवात् । सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते जयतीत्यर्थः । नित्यज्ञानस्योदयो यतः ॥ १२ ॥**

ध्यात्वैतदिति । **एतन् मूलाधारस्थं सर्वं ध्यात्वा नर एवमेवं भवति । तत्क्रमेणाह— वाचामीशो नराणामिन्द्रतुल्यः सहसा सर्वविद्याविनोदी च भवति । तस्य नित्यमेवा-रोग्यम् । निरवधि अहर्निशमेव । महानन्द ईश्वरस्तच्चिन्ताविशिष्टोऽन्तरात्मा यस्य,**

**नित्या ध्वंसप्रागभावरहिता । आनन्दपरम्परा आनन्दसमूहयुक्ता । अतिचपलाय-माना विद्युल्लता इव लसन्ती दीधितिर्दीप्तिर्यस्याः सा तथा । यस्याः कलायाः प्रभया ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगत् शरीरं भासते सा विजयते । नित्यज्ञानस्य उदयो यस्यां सा ॥१२॥**

आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा
वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः ॥ १३ ॥

स्वाधिष्ठानचक्रस्वरूपम्

सिन्दूर - पूर - रुचिरारुण - पद्ममन्यत्
सौषुम्णमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे ।

शूलावृतं पीतवर्णम् । तन्मध्याधो धराबीजं चतुर्भुजमैरावतारूढं पीतवर्णं वज्रहस्तम् । धराबीजबिन्दुमध्ये शिशुरूपो ब्रह्मा रक्तवर्णश्चतुर्भुजो दण्ड-कमण्डल्वक्षसूत्राभयहस्तश्चतुर्मुखः । तत्कर्णिकायां रक्तपद्मोपरि चक्रा-धिष्ठात्री डाकिनीशक्ती रक्तवर्णा चतुर्भुजा शूल-खट्वाङ्ग-खङ्ग-चषक-हस्ता । कर्णिकामध्ये विद्यदाकारत्रिकोणम् । तन्मध्ये कामवायुः काम-बीजञ्च रक्तवर्णम् । तदुपरि स्वम्भुलिङ्गः श्यामवर्णः । तस्योर्ध्वे कुण्डलिनी-शक्तिः सार्द्धत्रिवलयाकारा । तदूर्ध्वे लिङ्गाग्रे चित्कला दण्डकारेण स्थितेति प्रथमप्रकरणम् ॥ १३ ॥

मूलाधारचक्रं निरूप्य स्वाधिष्ठानचक्रं निरूपयति—**सिन्दूरपूरेत्यादि**-पञ्चभिः । प्रथमस्यायमर्थः—**ध्वजमूलदेशे** लिङ्गमूलस्थाने अन्यदाधार-चक्रभिन्नं **सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्मं** सिन्दूरस्य पूरणेन यथा मनोहररक्तवर्णं तद्वद् रक्तवर्णपद्मम् । आस्ते इति क्रियासमाहारेणाऽन्वयः । पद्मं विशेषयति—

**एवं भवतीत्यर्थः । एतत् कीदृशं ? मूलाधारमध्यप्रकाशम् । कोटिसूर्याणां प्रकाशो यस्य तत्तथा । स जनः काव्यप्रबन्धैर्वाक्यैः सकलसुरगुरुं शुद्धशीलः सन् सेवते, वाक्पति-सदृशो भवतीत्यर्थः ॥ १३ ॥**

**सिन्दूरेति । अन्यत् स्वाधिष्ठानाख्यं लिङ्गमूलसमदेशे आस्ते । सुषुम्णामध्य-घटकीभूतम् । सुषुम्णाशब्दात् स्वार्थे अणिति केचित् । तद् दूष्यम् । वस्तुतस्तु सुषुम्णाया इदं ब्रह्मनाड्यादि तन्मध्यभूतं पद्मं, तस्येदमित्यर्थे अण् । कीदृशम् ? सिन्दूररुचिर-**

काव्यबन्धैर्वाक्यैर्बृहस्पतीन् सेवते । गौरवे बहुवचनम् ॥१३॥

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मामाह—सिन्दूरेत्यादिना । अङ्गच्छदैः षट्पत्रैः विद्युत्-प्रकारैर्वाद्यैः पुरन्दरान्तैर्वादिलान्तैः सबिन्दुकं परिवृतं पद्मम् । तथा च **मायातन्त्रे** —

तदूर्ध्वे तु महेशानि स्वाधिष्ठानमृतुच्छदम् ।
रक्तवर्णं कर्णिकायामब्जमर्द्धेन्दसंयुतम् ।
मण्डलं वारुणं देवि तदूर्ध्वे मणिपूरकम् ॥ इति ॥

**अङ्गच्छदैः परिवृतं तडिदाभवर्णै**
**र्वाद्यैः सबिन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः ॥ १४ ॥**

अम्भोजमण्डलस्थितिवर्णनम्

**तस्यान्तरे प्रविलसद् विशद-प्रकाश-**
**मम्भोजमण्डलमथो वरुणस्य तस्य ।**

सौषुम्णमध्यघटितमिति । सुषुम्णानाडीमध्ये निर्मितम् । तथा अङ्गच्छदैः परिवृतं षट्पत्रयुक्तम् । पुरन्दरान्तैरिति । **पुरन्दरो** लकारस्तदन्तैर्वाद्यैस्तेन व-भ-म-य-र-लेति षड्भिस्तडिदाभवर्णैर्दलवत् परिवृतस्तेन दलावच्छेदे वर्णयोगः प्रतीतः । वर्णान् विशेषयति—**सबिन्दुलसितैरिति** । बिन्दुना सह वर्त्तमानाः सबिन्दवः, लसिताः प्रकाशिताः । सबिन्दवश्च ते लसिताश्चेति तैरित्यर्थः । ततश्चात्र विशेष्य-विशेषण भावकल्पने विशेषणीभूतबिन्दौ लसितत्वकारणत्वं प्रतीयते । "सुरापः पतती"त्यत्र कर्त्तृविशेषण-सुरापाने पतनकर्त्तृत्ववदिति । यद्वा बिन्दूनां लसितं बिन्दुलसितं बिन्दुप्रकाशस्तेन सह वर्त्तमानैर्वाद्यैरित्यर्थः ।। १४ ।।

एतत्पद्मकर्णिकायामम्भोजमण्डलस्थितिमाह—**तस्यान्तर** इति । तस्य पद्मस्याऽन्तरे मध्येऽम्भोजमण्डलम् अम्भोजाकारमण्डलं **प्रविलसत्** प्रकाशमानम् । तत् किम्भूतम् ? **विशदप्रकाशं** शुक्लवर्णम् । पुनः किम्भूतम् ? अर्द्धेन्दुरूपलसितमर्द्धचन्द्रयुक्तमित्यर्थः । इदं जलमण्डलम् । तदाह **शारदायाम्**—

**तथाऽरुणवर्णम् । पुनः कीदृशम् ? अङ्गच्छदैः षड्दलैरावृतम् । कीदृशैः ? तडिदिवाभा वर्णो येषां तथोक्तैः । पुरन्दरो लकारस्तदन्तैर्बिन्दुना परिलसितैरेवम्भूतैर्दलैरित्यर्थः । एतेन वर्णानां सर्वपद्मेषु दलमध्यवर्त्तित्वमायातम् ॥ १४ ॥**

**तस्यान्तर इति । तस्य पद्मस्य मध्ये अम्भसि जातं वरुणस्य मण्डलमास्ते । अथो शब्दः सम्भावनायाम् । कीदृशम् ? प्रकर्षेण विलसन् निर्मलप्रकाशो यस्य तत् तथा । तस्यैव वरुणस्य । अर्द्धेन्दुरूपेण लसितं मनोज्ञम् । अत एव वङ्कारबीजम् अमलं निर्मलशरच्चन्द्र इव शुभ्रम् । मकराधिरूढं मकरो जन्तुविशेष ओङ्कार इति ख्यातस्त-**

**दक्षिणामूर्त्तौ**—स्वाधिष्ठाने विद्रुमाभे बादिलान्तानि संस्मरेत् ।
विद्युत्पुञ्जसमाभानि विद्युद्भासितमस्तके ॥

इत्यादि ।। १४ ।।

विशदप्रकाशं शुक्लवर्णम् । **शारदायाम्**—"तत्तद्भूतसमाभानी"ति प्रागुक्तम् ।

**अर्द्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दुशुभ्रं**
**वङ्कारबीजममलं मकराधिरूढम् ॥ १५ ॥**

वरुणबीजबिन्दुमध्यस्थ-विष्णुस्वरूपम्

**तस्याङ्कदेश-कलितो हरिरेव पायात्**
**नील - प्रकाश-रुचिर - श्रियमादधानः ।**

अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकम् । इत्यादि । एतन्मण्डललक्षणमाह **राघवभट्टः**—"अर्द्धचन्द्रं कृत्वा तदुभयभागे सरोजद्वयं कुर्यादि"ति । **तदुक्तमाचार्यैः**—"अब्जोपेतार्द्धेन्दुमद्बिम्बमाप्यमि"ति । मण्डलमध्ये वरुणबीजस्थितिमाह—अथो इति । **तस्येति** । जलाधिष्ठातृत्वेन प्रसिद्धस्येत्यर्थः । **मकराधिरूढमिति** । पाशहस्तञ्च । तदाह—

तदन्वारुणं बीजं श्वेतं मकरवाहनम् ।
पाशहस्तं तदङ्के च हरिं श्यामं चतुर्भुजम् ॥ इति ॥

अयं वरुणबीजस्वरूपो वकारो यवर्गीयः, कुलाकुलचक्रे भूतलिपिमन्त्रे च तद्वकारस्यैव जलबीजत्वेनाऽभिधानात् । स्पष्टमन्यत् ॥ १५ ॥

वरुणबीजस्याङ्क विष्णुस्थितिमाह—तस्याङ्क इति । अङ्के बीजमस्तकस्थबिन्दुमध्ये । धराबीजबिन्दौ ब्रह्मणः स्थितिदर्शनादत्रापि तथा, दृष्टिपरिकल्पनान्यायात् । एवं वक्ष्यमाणं सर्वत्र बोध्यम् । **कलितः** स्थित इत्यर्थः । **नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधान** इति । नीलज्योतिषां या मनोज्ञा शोभा तां दधान इत्यर्थः । नेन नीलतेजःपुञ्जशरीरीति यावत् । **श्रीवत्स-कौस्तुभ-धर** इति । तद्ध्यानमाह **गौतमीये**—

कौस्तुभं हृदये रत्नं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
तदधो वनमालाञ्च चन्द्रायुतसमप्रभाम् ॥
कौस्तुभोर्ध्वे च श्रीवत्सं चन्द्रायुतसमप्रभम् ॥ इति ॥

दधिरूढम्, कर्त्तरि क्तः । अत एवाऽम्भोजमण्डलदर्शनात् "कमपि मणिपूरे" इति शङ्कराचार्यश्लोकस्य "महीं मूलाधारे" इत्यत्र चानुपपत्तिः, तत् तद्व्यवसायिभिः प्रतिध्यातव्यम् । वयन्तु तत्र व्यस्तसमस्ततया व्याख्यां ब्रूमः ॥ १५ ॥

तस्याङ्क इति । तस्य बीजस्य क्रोडदेशलसितो हरिर्विष्णुस्त्रिभुवनं पायात् । कीदृशः ? नीलप्रकाशां मनोज्ञां कान्तिमाधत्ते । पीतवस्त्रः । प्रथमयौवनगर्वोद्रेकं

अम्भोजं षड्दलपद्मम् अर्द्धचन्द्रयुतम् । वं बीजं मकराधिरूढम्, "स्वाधिष्ठानं विष्णुगेहं प्रदिष्टं बालार्काभं राकिणी देवतात्र" ॥ इति वचनात् ॥ १५ ॥

तस्याङ्के इत्यादि । नीलद्युतिरूपां मनोज्ञश्रियं शोभाम् आदधानः । गौतमीये—

**पीताम्बरः　　प्रथम-यौवन-गर्वधारी**
**श्रीवत्स-कौस्तुभ-धरो　　धृतवेदबाहुः ॥ १६ ॥**

स्वाधिष्ठानचक्रस्थ-राकिणीशक्तिस्वरूपम्

**अत्रैव भाति सततं खलु राकिणी सा**
**नीलाम्बुजोदर - सहोदर - कान्तिशोभा ।**
**नानायुधोद्यत - करैर्लसिताङ्ग - लक्ष्मी-**
**र्दिव्याम्बराभरणभूषितमत्तचित्ता　　॥ १७ ॥**

हरिस्तेऽस्त्र **तन्त्रान्तरे**——

पाशहस्तं तदङ्के च हरिं श्यामं चतुर्भुजम् ।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणं पीतवाससम् ॥ इति ॥

"पाशहस्तं" वरुणमिति पूर्वेणाऽन्वयः । अन्यत्र—"पीताम्बरं शान्तमूर्त्तिं वनमालाविभूषितम्" । इति । मूलाधारे हंसपृष्ठे ब्रह्मणः स्थितिदर्शनादत्र गरुडोपरि विष्णुश्चिन्तनीयः ॥ १६ ॥

एतत्पद्मे राकिणीशक्तिस्थितिमाह—अत्रैवेति स्पष्टम् । राकिणीध्यान-विशेषमाह—

श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकरयुतां तीक्ष्णटङ्कं वहन्ती-
मुग्रां रक्तत्रिणेत्रां कुटिलसविलसद्दन्तदंष्ट्राप्रभाभिः ।
दीप्तां तां देवदेवीं द्वितयकमलगां रक्तधारैकनासां
शुक्लान्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां राकिणीं चिन्तयेत् ताम् ॥

अत्र पद्मान्तरे राकिण्यः स्थितिदर्शनात् सर्वत्र रक्तपद्मान्तरोपरि षट्-शक्तीनां स्थितिरिति बोध्यम् ॥ १७ ॥

**धर्त्तुं शीलमस्य तथोक्तः । श्रीवत्सचिह्नं कौस्तुभञ्च दधातीत्यर्थः । धृताश्चत्वारो बाहवो येन स तथा ॥ १६ ॥**

**अत्रैवेति । अत्रैव पद्मे खलु निश्चितं सर्वदेवस्य प्रसिद्धा राकिणी आस्ते । नील-पद्मस्योदरतुल्या शोभा यस्याः । नानास्त्रेणोद्यतकरैः प्रकाशमानाऽङ्गशोभा यस्याः सा तथा । दिव्याम्बरालङ्काराभ्यां च मत्तं चित्तं यस्याः सा चेति तथा ॥ १७ ॥**

स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ इति ॥ १६ ॥

नीलाम्बुजोदरसदृशी कमनीयता शोभा यस्याः सा । नानायुधेति । तदुक्तं तन्त्रान्तरे —

श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकसहितां तीक्ष्णटङ्कं वहन्तीं
देवीं रक्तत्रिनेत्रां द्वितयदललसद्दंष्ट्रदन्तप्रभाभिः ॥ इति ॥ १७ ॥

स्वाधिष्ठानचक्रचिन्तनफलम्

**स्वाधिष्ठानाख्यमेतत् सरसिजममलं चिन्तयेद् यो मनुष्य-**
**स्तस्याऽहङ्कार-दोषादिक-सकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन ।**
**योगीशः सोऽपि मोहाद्भुत-तिमिरचये भानुतुल्यप्रकाशो**
**गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधावाक्यसन्दोहलक्ष्मीः ॥ १८ ॥**

स्वाधिष्ठानपद्मादिचिन्तनफलमाह—**स्वाधिष्ठानाख्य**मिति । तदुक्तं—

स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ इति ॥

अहङ्कारदोषादीत्यादिना कामक्रोधादयो गृह्यन्ते । तेन कामादिषड्-रिपवः क्षीयन्ते इत्यर्थः । **मोहाद्भुत-तिमिरचय** इति । दुर्निवार्य-महा-न्धकार-समूहे इत्यर्थः । ततश्च मायामोहरूपान्धकारनाशाय ज्ञानरूप-सूर्य-माप्नोतीति भावः । स्पष्टमन्यत् ।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः ।** स्वाधिष्ठानचक्रं सिन्दूरवर्णषड्दलम् । तद्दलं च तडिदाभ-सबिन्दु-व-भ-म-य-र-लेति-षड्वर्णयुक्तम् । तत्कर्णिकायां मध्यस्थलेऽर्द्धचन्द्रयुक्ताष्टदलपद्माकारमम्भोजमण्डलं शुक्लवर्णम् । तन्मध्ये वँ इति वरुणबीजं मकराधिरूढं पाशहस्तम् । तत्क्रोडे विष्णुर्गरुडोपरिस्थित-श्चतुर्भुजः शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी पीताम्बरो वनमाला-श्रीवत्स-कौतुम्भ-धारी युवरूपः । पद्मकर्णिकायां रक्तपद्मोपरि राकिणि शक्तिः श्यामवर्णा चतुर्भुजा शूलाब्ज-डमरु-टङ्क-धरा त्रिनेत्रा कुलिदंष्ट्रा भयङ्करी शुक्लान्न-रक्तधाराभिलाषिणीति द्वितीयप्रकरणम् ॥ १८ ॥

**स्वाधिष्ठानेति । एतत् स्वाधिष्ठानाख्यं सरसिजं यो मुनीन्द्रश्चिन्तयेत् तस्याऽहङ्कारादिदोषरूपसकलरिपवो ज्ञानप्रतिबन्धकत्वात् शुद्धज्ञानपरिपन्थिनस्तत्क्षणैनैव क्षीणा भवन्तीति । पद्मं कीदृशम् ? अमलं निर्मलम् । स योगीशश्च भवति । मोहाद्भुतान्धकारचये भानुतुल्यप्रकाशश्च भवति । स च गद्यैः संस्कृतया वाचा पद्यैः श्लोकप्रबन्धैर्नानाबन्धादिभिरमृतायमानकाव्यसमूहं श्रिये विरचयति ॥ १८ ॥**

स मोहादभुतान्धकारसमूहे भानुतुल्यस्तन्नाशको भवतीति । सुधेति अमृततुल्यकाव्य-समूहसम्पत्तिं भजन्ते । अत्र पश्यन्ती शक्तिरस्ति । प्रमाणं विशुद्धपद्मव्याख्याने लिखिष्यते ॥ १८ ॥

मणिपूरचक्रस्वरूपम्

**तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदल-लसिते पूर्णमेघ-प्रकाशे**
**नीलाम्भोजप्रकाशैरुपहितजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः।**
**ध्यायेद् वैश्वानरस्याऽरुणमिहिरसमं मण्डलं तत् त्रिकोणं**
**तद्बाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलसितं तत्र वह्नेः स्वबीजम् ॥ १६ ॥**

मणिपूरचक्रं निरूपयति--**तस्योर्ध्व** इत्यादि-त्रिभिः। तस्य स्वाधिष्ठानस्येत्यर्थः। **दशदललसित** इति दशदलैर्लसिते प्रकाशिते। पद्मे इति शेषः। पद्मे किम्भूते ? **पूर्णमेघप्रकाशे** कृष्णवर्णे। तथा **डादिफान्तैः** ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फेति-दशवर्णैरुपहितं युक्तं जठरं मध्यं यस्य तद्रूपे इत्यर्थः। सचन्द्रैरिति। चन्द्रोऽर्द्धचन्द्रो युगलाध्ववाहित्वाद् बिन्दुश्च ताभ्यां सह वर्त्तमानैर्वर्णैरित्यर्थः। वैश्वानरस्य वह्नेः। **अरुणमिहिरसमं** बालार्कसदृशमित्यर्थः। स्वस्तिकाख्यैरिति। "स्वस्तिकं नाम परम्परसम्बद्धं विदिग्गतचतुर्वक्त्रं रेखाद्वयमि"ति राघवभट्टोक्तं, तत्प्रकारैस्त्रिभिः स्वस्तिकैस्त्रिकोणावच्छेदेऽभिलसितमित्यर्थः। अत्र वह्निमण्डले वह्निबीजं रँ ॥ १६ ॥

तस्योर्ध्वं इति। तस्य पद्मस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदलकमले ललिते मनोज्ञे पूर्णमेघ इव प्रकाशो यस्य एवम्भूते पद्मे वैश्वानरस्य वह्नेः त्रिकोणं मण्डलं ध्यायेत्। कीदृशम् ? अरुणसूर्ययोस्तुल्यम्। पुनः कीदृशम् ? तद्बाह्ये त्रिकोणस्य बहिस्त्रिभिः स्वस्तिकाख्यैरभिलसितम्। तत्रैव वह्निमण्डले वह्नेः स्वबीजमास्ते सानुस्वारो रेफ इति। पद्मे किम्भूते ? नीलाम्भोजस्य प्रकाशो येषाम्, एवम्भूतैः सचन्द्रैर्डकारादिफकारान्तैरुपहितजठरे एतैर्वर्णैरुपशोभितजठरे, उपस्थितमध्ये इत्यर्थः ॥ १६ ॥

मणिपूरपद्मलाह—तस्यर्ध्वे इत्यादिना। तथाच--

मणिवद्भिन्नं तत् पद्म मणिपूरं तथोच्यते। इति।

नीलवर्णे नीलवर्ण-डादिफान्तवर्णैर्युक्ते। तथा च दक्षिणामूर्त्तौ--"सुनीले मणिपूरके। डफान्तानि महानीलप्रभानि परिचिन्तयेदि"ति। वह्नेर्मण्डलं बीजं चाह--वैश्वानरस्येत्यादिना। वैश्वानरस्य वह्नेर्मण्डलं रक्तवर्णं त्रिकोणम् तद्वाह्ये त्रिभिः स्वस्तिकैर्दकाराकारैर्युक्तम्। मायातन्त्रे--

दशपत्रं पयोजातं कर्णिकायां महेश्वरि।
वाह्नेयं मण्डमं रक्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ॥

स्वबीजं रेफः। "वर्णैः स्वै रञ्जितान्यासन्" इति प्रागुक्तेः प्रातःसूर्यसमरक्तवर्णम् ॥१६॥

मणिपूरचक्रस्थ-वह्निबीजवर्त्ति-रुद्रस्वरूपम्

**ध्यायेन् मेषाधिरूढं नवतपननिभं वेदबाहूज्ज्वलाङ्गं**
**तत्क्रोडे रुद्रमूर्त्तिर्निवसति सततं शुद्ध-सिन्दूर-रागः ।**
**भस्मालिप्ताङ्गभूषा-भरण-सितवपुर्वृद्धरूपी त्रिनेत्रो**
**लोकानामिष्टदाताऽभयलसितकरः सृष्टिसंहारकारी ॥ २० ॥**

मणिपूरचक्रस्थ-लाकिनीशक्तिस्वरूपम्

**अत्रास्ते लाकिनी सा सकलशुभकरी वेदबाहूज्ज्वलाङ्गी**
**श्यामा पीताम्बराद्यैर्विविधविरचनालङ्कृता मत्तचित्ता ।**

**ध्यायेदिति । भस्मालिप्ताङ्गभूषाभरणसितवपुरिति ।** भस्मलेपनाङ्गभूषाभरणाभ्यां शुक्लीकृतदेह इत्यर्थः । **ध्यायेन् मेषेति ।** ध्याने विशेषमाहाऽन्यत्र--

मेषस्थं साक्षसूत्रञ्च शक्तिहस्तं स्मरेत् ततः ॥ इति ॥

विशेषानभिधानादन्यहस्तद्वये वराभयौ चिन्तनीयौ, ध्यानान्तरे तथा दर्शनात् । **लोकानामिष्टदाता** वरदातेत्यर्थः । **अभयलसितकरस्तेन** वराभयधारीति भावः । अत्र वृषोपरि रुद्रो ध्येयः स्पष्टमन्यत् ॥ २० ॥

**अत्रास्त** इति । **विविधविरचनेति । विविधेन** मणिमुक्तादियोगेन चित्रविचित्रघटनेन **विरचना** यत्र तादृशमलङ्कृतं यस्या इत्यर्थः । यद्वा

ध्यायेदिति । वह्निबीजं ध्यायेदिति पूर्वश्लोकेनाऽन्वयः । कीदृशम् ? मेषमधिरूढम् । प्रातःकालीनसूर्यतुल्यम् । चतुर्बाहुभिरुज्ज्वलाङ्गम् । तस्य बीजकोशस्याऽङ्के रुद्रमूर्त्तिर्निवसति सततमेव । कीदृशः ? शुद्धसिन्दूरस्येव रक्ताकारो यस्य । भस्मलिप्तमेवाऽङ्गभूषाभरणं तेन सितं शुभ्रं वपुर्यस्य । वृद्धाकारः । त्रीणि नेत्राणि यस्य स तथा । त्रिलोकवासिनामभीष्टदाता । अभयलसितकरः । सृष्टेः संहारकारी ॥ २० ॥

अत्रास्त इति । अत्रैव पद्मे सा प्रसिद्धा लाकिनी आस्ते । कीदृशी ? सर्वेषामेव शुभकरी । चतुर्भिर्बाहुभिरुज्ज्वलाङ्गी । श्यामवर्णा । पीतवस्त्राद्यैर्या नाना विरचना

मणिपूरं तु नीलं, "रुद्रस्थानं लाकिनी देवतात्रे"ति वचनात् । तामाह रुद्रमूर्त्तिरित्यादिना । शुद्धसिन्दूररागः अतिशयरक्तवर्णः ॥ २० ॥
वेदबाहूज्ज्वलाङ्गीत्यादि । तदुक्तं तन्त्रे--

नाभिपद्मचिन्तनफलम्

**ध्यात्वैतन् नाभिपद्मं प्रभवति नितरां संहृतौ पालने वा**
**वाणी तस्याननाब्जे निवसति सततं ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः ॥ २१ ॥**

विविधविरचनया अलङ्कृतमलङ्कारो धार्यते यत्रेत्यर्थः। अत्र लाकिनी-ध्यानविशेषमाह--

नीलां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनलसितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं दधानामभय-वर-करां दक्षवामे क्रमेण।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गौरभक्तोत्सुकहृदयवतीं चिन्तयेत् साधकेन्द्रः॥

नाभिपद्मचिन्तनफलमाह--**ध्यात्वैतदित्यादि**। नाभिपद्मं मणिपूराख्यम्। "तत्पद्मं मणिवद् मणिपूरं तथोच्यते" इति गौतमीयात्। अन्यत् स्पष्टम्।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः**। नाभिपद्मं मेघवर्णदशदलम्। तद्दलं च नीलाभसबिन्दु-ड-ढ-ण-त-थ-द-ध-न-प-फेति दशवर्णयुक्तम्। तत्कर्णिकायां त्रिकोणाकारम् त्रिकोणवहिः स्वस्तिकायुक्तं रक्तवर्णं वह्निमण्डलम्। तन्मध्ये रँ इति वह्निबीजं रक्तवर्णं मेषाधिरूढं चतुर्भुजं वज्रशक्तिवराभयधरम्। तत्क्रोडे रुद्रो वृषारूढो रक्तवर्णो द्विभुजो वराभयधारी भस्मलेपनशुक्लाभरणाभ्यां शुक्लीकृतदेहो वृद्धरूपः। पद्मकर्णिकायां रक्तपद्मोपरि लाकिनीशक्तिर्नीलवर्णा त्रिवक्त्रा त्रिनेत्रा चतुर्भुजा वज्रशक्त्यभयवरकरा घोरदंष्ट्रा रक्तयुक्तखेचरान्नमांसाभिलाषिणीति तृतीयप्रकरणम्॥ २१॥

तया अलङ्कृता। मत्तं चित्तं यस्याः सा तथा। एतन्नाभिपद्मं मणिपूरकाख्यं ध्यात्वेत्यर्थः। संहारे पालने च प्रभवति समर्थो भवति। तस्याननाब्जे सप्ततमेव वाणी विलसति। कीदृशी? ज्ञानसमूहस्य प्राप्तिर्यतः। एनेन ब्रह्मविष्णुशिवतुल्यो भवतीत्यर्थः॥ २१॥

कृष्णां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनसहितां कुब्जिनीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं सदण्डामभयवरकरां दक्षवामे दधानाम्।

इत्यादि। ज्ञानेति। ज्ञानसमूहेन सह लक्ष्मीस्ताम्॥ २१॥

अनाहतपद्मस्वरूपम्

**तस्योर्ध्वे हृदि पङ्कजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं**
**काद्यैर्द्वादश वर्णकैरुपहितं सिन्दूररागान्वितैः ।**
**नाम्नाऽनाहतसंज्ञकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं**
**वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम् ॥ २२ ॥**

हृदि पङ्कजं निरूपयति—तस्योर्ध्व इत्यादि-षड्भिः । **हृदि पङ्कजमिति ।** एवम्भूतं **पङ्कजं हृदि** ध्यायेदिति क्रियाध्याहारेणाऽन्वयः । **सुललितं** सुस्निग्धमित्यर्थः । काद्यैरिति । क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठेति द्वादश-वर्णकैरिति बोध्यम् । तैरुपहितं युक्तमित्यर्थः । **नाम्नाऽनाहतसंज्ञकमिति ।**

शब्दब्रह्ममयः शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
अनाहताख्यं पद्मं तन्मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥

इति वचनादनाहतनामपद्ममिति तात्पर्यम् । यतः **सुरतरुं** कल्पतरुस्वरूप-मतो **वाञ्छातिरिक्तफलप्रदमिति** हेतुगर्भविशेषणमिति भावः । तत्पद्म-कर्णिकायां वायुमण्डलस्थितिमाह—वायोरिति ॥ २२ ॥

तस्योर्ध्व इति । तस्य पद्मस्योर्ध्वे हृदि सुललितं मनोरमं नाम्नाऽनाहतसंज्ञकं पद्ममास्ते । कीदृशम् ? बन्धूककान्तिवदुज्ज्वलम् । सिन्दूरराग इवाञ्चितैः प्राप्तैः । ककाराद्यैः ठकारान्तैर्द्वादशसंख्यकवर्णैर्दलमध्यवर्त्तिभिरुपशोभितम् । पुनः कीदृशम् ? सुरतरुः कल्पवृक्षस्तत्तुल्यम्, अतो वाञ्छातिरिक्तप्रदं वाञ्छितस्याप्यतिददातीति तत् तथा । अयम्भावः—कल्पवृक्षाः पूर्णवाञ्छितफलदातारः, अयन्तु तदतिरिक्तं मोक्षफलञ्च ददातीत्यर्थ । अत्रैव मण्डले वायोर्मण्डलं विद्यते । कीदृशम् ? धूमसदृशम् ? पुनः कीदृशम् ? षट्कोणस्य या शोभा तया अन्वितम् ॥ २२ ॥

अनाहतपद्ममाह—तस्योर्ध्वे इत्यादि । बन्धूकपुष्पकान्तिस्वरूपरक्तवर्णं कादि-ठान्तैः द्वादशवर्णैः सिन्दूरवर्णैर्युक्तम् । तथाच दक्षिणामूर्त्तौ—

पिङ्गवर्णे महावह्निकलिकाभानि संस्मरेत् ।
कादिठान्तानि वर्णानि चतुर्थेऽनाहते प्रिये ॥ इति ॥

तन्मध्ये षट्कोणपद्मं वायुमण्डलम् । तथाच मायातन्त्रे —

अनाहतं द्वादशारं रक्ताभं हृदि सुव्रते ।
तन्मध्ये पावनं पद्मं षट्कोणं धूम्रवर्णकम् ॥ इति ॥ २२ ॥

## वायुमण्डलमध्यस्थ-वायुबीज-स्वरूपम्

तन्मध्ये पवनाक्षरञ्च मधुरं धूमावली-धूसरं
ध्यायेत् पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परम्।
तन्मध्ये करुणा-निधानममलं हंसाभमीशाभिधं
पाणिभ्याममभयं वरञ्च विदधल्लोकत्रयाणामपि ॥ २३ ॥

वायुमण्डलमध्ये वायुबीजमाह—**तन्मध्य** इति। **पवनाक्षरं** यँ इति बीजम्। मधुरं मनोहरम्। **धूमावलीधूसरमिति**। धूमश्रेण्यावृतदेहत्वाद् धूमधूम्रवर्णमिति भावः। **कृष्णाधिरूढमिति**। कृष्णसाराधिरूढमित्यर्थः। वरुणहस्ते पाशदर्शनादत्र वायुहस्तेऽङ्कुशो ध्येयः। वायुबीजमध्ये ईशस्थितिमाह—तन्मध्य इति। स्पष्टम्। सर्वत्र शिवस्य त्रिनेत्रम्। शिवस्य त्रिनेत्रत्वादयं त्रिनेत्रः। एवं "ग्रैवेयाङ्गदहारनूपुरयुतं क्षौमाम्बरं चिन्तयेदि" त्यादि कर्मान्तरोक्त-ध्यानप्राप्त क्षौमाम्बरत्वमीशस्य। एवं "कान्तं कान्त-शशाङ्ककोटिकिरणं प्रोद्यत्कपर्द्दोज्ज्वलमि"ति ॥२३॥

तन्मध्य इति। तस्य मण्डलस्य मध्ये पवनाक्षरं वायुबीजम्। अक्षरपदेन बीज-मुच्यते। एतत्प्रकारं यस्य मण्डलं तस्यैव बीजमिति दृष्टत्वात्। कीदृशम्? मधुरं हृदयङ्गमम्। पुनः कीदृशम्? दीपकलिकाकारजीवात्मसम्बन्धिनी या धूमवली तथा धूसरम्। पाणिचतुष्टयेन लसितम्। कृष्णाजिनाधिरूढम्। परं प्रकृष्टञ्च। एवम्भूतं बीजं ध्यायेत्। तत्र वायुमण्डले। ईश एवाभिधा नाम यस्य, एवम्भूतं शूलपाणेर्वपुरास्ते। कीदृशम्? करुणावारिधिस्वरूपम्। अमलं निर्मलम्। हंसाभं सूर्य इव शोभा यस्य। पुनः कीदृशम्? पाणिभ्यां कराभ्याममभयं वरञ्च लोकत्रयाणामपि विदधत्। एतेनेयं मूर्त्तिर्हस्तपादादिविशिष्टेति ॥ २३ ॥

वायुबीजमाह—तन्मध्ये इत्यादिना। पवनाक्षरं यं। प्रमाणमाधारपद्मव्याख्याने उक्तम्। धूसरं ईषत् पाण्डुरम्। हस्तचतुष्टययुक्तं कृष्णसाराधिरूढम्। "रक्तमनाहत-मीश्वरगेहन्तु काकिन्यपीहोक्ता" इति वचनात्। तदेवाह—तन्मध्ये करुणानिधान-मित्यादिना। ईशाभिधमीश्वरनामानम्। हंसाभं सूर्यप्रभम्। अभयवरपाणिद्वय-युक्तम् ॥ २३ ॥

पद्मकर्णिकास्थ-काकिनीशक्ति-स्वरूपम्

**अत्रास्ते खलु काकिनी नवतडित्पीता त्रिनेत्रा शुभा**
**सर्वालङ्करणान्विता हितकरी सम्यग् जनानां मुदा।**
**हस्तैः पाश-कपाल-शोभन-वरान् संबिभ्रती चाभयं**
**मत्ता पूर्णसुधारसार्द्रहृदया कङ्कालमालाधरा ॥ २४ ॥**

अत्र कर्णिकायां काकिनीशक्तिस्थितिमाह--**अत्रास्त** इति। **मत्ताऽस्व-भावस्था** स्खलितभावा। **पूर्णसुधारसार्द्रहृदयेति**। **पूर्णः** सम्पूर्णस्तृप्तिजनको यः **सुधारसस्तेनार्द्रं** परोपकाराभिमतकोमलं हृदयं चित्तं यस्या इत्यर्थः। यद्वा पूर्णः पूर्णानन्दजनको यः सहस्रदलकमलान्तर्विगलितपरमामृतरसस्तेनार्द्रं परमानन्दोत्फुल्लशिथिलं हृदयं यस्या इत्यर्थः। अन्यत् स्पष्टम्।

कृष्णाम्बर-परीधानां नानाभरण-भूषिताम्।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्या काकिनीं मन्त्रसिद्धये॥

इति ध्यानप्राप्त-कृष्णाम्बरत्वमस्या बोध्यम्॥ २४॥

**अत्रास्त इति। अत्रैव पद्मे खलु निश्चितं काकिनी देवी आस्ते। नूतनविद्युदिव पीतवर्णा। त्रीणि नेत्राणि यस्याः सा। शुभा शुभदायिका। सर्वालङ्कारैरावृता। मुद्रा हर्षेण। जनानां सम्यक्प्रकारेण हितकारी। चतुर्भिर्हस्तैः कपाल-शूल-शोभनवराभयान् संबिभ्रती। मत्ता उन्मत्ता। कङ्कालमालाधरा अस्थिमाल्यधरा॥ २४॥**

तत्र काकिनी नवतडित्पीता गौरवर्णा त्रिनेत्रा पाशकपालवराभयान् चतुर्भिर्भुजैः बिभ्रती। कङ्कालेति अस्थिमालाधरा। "स्यात् शरीरास्थि कङ्कालः" इत्यमरः। तथाच तन्त्रे--

............................काकिनी मेघ(द)संस्थाम्।
पाशं शूलं कपालं डमरुमपि करैर्धारिणीं पीतवर्णां
दध्यन्ने सक्तिचित्तां स्ववयवनमितां वारुणीसक्तचित्ताम्॥

शूलडमरुस्थाने वराभयं तथा अस्थिमालेति **तन्त्रान्तरे** उक्तम्।

वाणलिङ्गं तु तन्मध्येऽधोमुखे शक्तिके इति।

त्रिस्त्रिकोणयुक्ते इति **क्रमात्**। तथा--

तन्मध्ये वाणलिङ्गन्तु सूर्यायुतसमप्रभम्।
शब्दब्रह्ममयः शब्दो न हेतुस्तदहेतुकः॥
अनाहताख्यं तत्पद्मं पुरुषाधिष्ठितं परम्॥

"पुरुषेण जीवात्मना" इति गौतमीयाच्च॥ २४॥

पद्मकर्णिकामध्यस्थ-त्रिकोणस्वरूपम्

**एतन्नीरज - कर्णिकान्तर - लसच्छक्तिस्त्रिकोणाभिधा**
**विद्युत्कोटिसमानकोमलवपुः सास्ते तदन्तर्गतः ।**
**बाणाख्यः शिवलिङ्गकोऽपि कनकाकाराङ्गरागोज्ज्वलो**
**मौलौ सूक्ष्मविभेदयुङ् मणिरिव प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः ॥ २५ ॥**

एतत्पद्मकर्णिकामध्ये त्रिकोणं निरूपयति—**एतदिति** । **त्रिकोणाभिधा** त्रिकोणाकारा । शक्तिरित्यनेन त्रिकोणस्याऽधोमुखत्वं ज्ञापितम् । **सा आस्ते** इत्यन्वयः । एतत् त्रिकोणं वायुबीजस्याऽधोदेशे । तदाहान्यत्र—

तत्क्रोडे ईशं तदधस्त्रिकोणे बाणलिङ्गकम् ।

इति । बाणाख्यलिङ्गं विशेषयति–**मौलौ सूक्ष्मविभेदयुगिति** । शिवलिङ्ग-मस्तकेऽर्द्धचन्द्रबिन्दुयोगात् तद्बिन्दुमध्ये शून्यरूपो त्रिभेदश्छिद्रं, तेन युक्त इत्यर्थः । **तदाह**—

त्रिकोणान्तर्बाणलिङ्गं कनकाभरणैर्युतम् ।
चन्द्रार्द्धमस्तकं देवं मध्ये रक्ताम्बुजं परम् ॥

इति । "मध्ये रक्ताम्बुजमि"ति हृत्पद्मस्य कर्णिकाधोदेशे ऊर्ध्वमुखरक्त-वर्णाष्टदलपद्ममित्यर्थः । एतत्पद्मोपरि मानसपूजा कार्या । तदुक्तं यथा—

तन्मध्येऽष्टदलं रक्तं तत्र कल्पतरुं तथा ।
इष्टदेवासनं चारु चन्द्रातपविराजितम् ॥
तथा—नानापुष्पफलैर्युक्तं मञ्जुवाक्पक्षिशोभितम् ।
इत्याद्यभिदाय–तत्र ध्यायेदिष्टदेवं तत्तत्कल्पोक्तमार्गतः ॥

इति । अलं विस्तरेण प्रकृतमनुसरामः । बाणलिङ्गमस्तके बिन्दुप्रकाशदृष्टा-माह—**मणिरिवेति** । यथा सरन्ध्रमणिप्रकाशस्तथा शिवलिङ्गोपरि बिन्दु-

**एतन्नीरज इति । एतत्पद्मकर्णिकान्तरप्रकाशा त्रिकोणाभिधा शक्तिरास्ते । प्रसिद्ध-त्वात् सेति । तदन्तर्गता सती आस्ते इति सम्बन्धः । यद्वा स एव शिवोऽन्तर्गतो यस्याः सा तथा । तस्याः शक्तेर्मौलावुपरि बाणाख्यः शिवलिङ्गकः समास्ते । स्वर्णाकारेणा-ऽङ्गरागेणोज्ज्वलः । सूक्ष्मरूपेणा विशेषभेदं युनक्तीति । एवम्भूतो मणिरिव । पुनः**

त्रिकोणं बाणलिङ्गं जीवात्मानञ्चाह— एतन्नीरजेत्यादिना । कनकं बन्धूकपुष्प-सदृशं, बन्धूकः पुष्पविशेषः तद्वदङ्गरागोज्ज्वलः ।

हेमबन्धूककुसुमशरच्चन्द्रनिभानि च ।

हृत्पद्म-चिन्तन-फलम्

**ध्यायेद् यो हृदि पङ्कजं सुरतरुं शर्वस्य पीठालयं**
**देवस्याऽनिलहीनदीपकलिकाहंसेन संशोभितम् ।**

प्रकाश इति भावः । **प्रोल्लासलक्ष्म्यालय** इति । प्रोल्लासः कालोद्गमस्तच्छोभायुक्त इत्यर्थः ।। २५ ।।

हृत्पद्मचिन्तनफलमाह—ध्यायेदित्यादि-द्वाभ्याम् । अस्यार्थः—यो **जनो हृदि पङ्कजं ध्यायेत्** स जनो **वाचामीश्वरो** वृहस्पतिसमो भवति । एवं सर्वत्र । ईश्वर इत्यादिप्रथमान्तेन भवति-क्रियान्वयो बोध्यः । अत्र पद्मकर्णिकायां हंसरूपजीवात्मस्थितिमाह—अनिलहीनदीपकलिकाहंसेन संशोभितमिति । वायुरहिता या दीपकलिका तत्सदृशहंसेन संशोभितमित्यर्थः । ततश्च पद्मकर्णिकायां वाताहतिरहितस्थिरतर-दीपशिखाकारहंसरूपो जीवात्मा वर्त्तत इति भावः । एतत्कर्णिकायां सूर्यमण्डलस्थितिं ज्ञापयति—**भानोर्मण्डलमण्डितान्तरलसत्किञ्जल्कशोभाधरमिति** । भानोर्मण्डलेन मण्डिता भूषिता ये अन्तरलसन्तः कर्णिकामध्ये प्रकाशमानाः किञ्जल्काः केसरा अथवा याः किञ्जल्कशोभास्ता धारयतीत्यर्थः ।

अत्र भानुमण्डलमण्डितत्वं किञ्जल्कविशेषणं, नत्वन्तरविशेषणम् । तथात्वे सर्वस्मिन् पद्मे किञ्जल्कशोभाधरत्वादत्र विशेषोपादानं व्यर्थं स्यात् । भानोर्मण्डलमण्डितत्वविशेषणविशिष्टत्वे तादृशविशिष्टकिञ्जल्कानामन्य-

**कीदृशः ? प्रोद्दामलक्ष्म्यालयः । सूक्ष्मभेदकत्वात् तस्याः शक्तेरेव प्रकृष्टोद्दामश्रियस्तत्रालय इति ।। २५ ।।**

ध्यायेदिति । य एतत् पद्मं कल्पवृक्षतुल्यं हृदि ध्यायेत् सः एवमेवं भवति । वाचामीश्वरो बृहस्पतितुल्यः । जगतामीश्वरः । रक्षाविनाशक्षमश्च अर्थाज् जगताम् । पद्मं कीदृशम् ? शर्वस्य देवस्य पीठालयम् । पुनः कीदृशम् ? अनिलहीनदीपकलिकारूपहंसे-

इति **योगिन्येकवाक्यत्वात्** । स्वयम्भूवाणलिङ्गेतरलिङ्गविशेषणं—हेमादि । मौलौ मस्तके सूक्ष्मविभेदयुक्तो विवरयुक्तो मणिरिव दीप्तचिह्नालयः ।। २५ ।।

सर्वस्य देवस्य पीठालयं निर्वात्तदीपशिखाकारहंसेन जीवात्मना शोभितम् । **मायातन्त्रेऽपि**—"आत्मा तत्र प्रदीपाभः" इति । भानोरित्यस्य मण्डलपदेनैकदेशेन

**भानोर्मण्डलमण्डितान्तरलसत्किञ्जल्कशोभाधरं**
**वाचामीश्वर ईश्वरोऽपि जगतां रक्षाविनाशे क्षमः ॥ २६ ॥**
**योगीशो भवति प्रियात् प्रियतमः कान्ताकुलस्याऽनिशं**
**ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणो ध्यानावधानक्षमः ।**

त्रासत्त्वात् तदुपादानं सार्थकमिति । एवञ्च भानोर्मण्डलस्य कर्णिकारूपकत्वे तत्तेजसा सर्वेषां किञ्जल्कानां शोभाधिक्यरूपमण्डितत्वं सम्भवति, नत्वेकदेशस्थितत्वे । ततश्च तत्कर्णिकायामादौ कर्णिकाव्यापकं वायुमण्डलं, तदुपरि तथा सूर्यमण्डलम्, तदुपरि वायुबीजत्रिकोणादिकं ध्येयम् । युक्तञ्चैतत्, मानसाऽर्चनायां "मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम" इत्यादिना पूजायामुपर्युपरिक्रमेण बह्न्यर्कचन्द्रमण्डलस्थितिदर्शनाद् दृष्टपरिकल्पनान्यायावतारात् । अलमतिविस्तरेण ।

ईश्वर इति । सृष्टिकर्त्ता इत्यर्थः । **रक्षाविनाशे क्षमः** स्थितिप्रलयकर्त्ता इत्यर्थः । तेन स जनः सृष्टिस्थितिप्रलयकर्त्तेति तात्पर्यार्थः ॥ २६ ॥

**योगीश** इति । **प्रियात् प्रितमः कान्ताकुलस्येति** योषिद्वर्गस्य कर्मकुशलः । **जितेन्द्रियगण** इति । जितेन्द्रियाणां मध्ये गण्यते तुल्यत्वेन गृह्यतेऽसावित्यर्थः । **ध्यानावधानक्षमो** ध्याने ब्रह्मचिन्तनेऽवधानाय स्थिरमनोऽभिनिवेशं कर्त्तुं क्षमः समर्थ इत्यर्थः । **काव्याम्बुधारावह** इति । काव्यरूपाम्बूनां धारा अविच्छेदनिःसरणमुह्यते धार्यते येन, तादृशो भवतीति । लक्ष्मीरङ्गणदैवतो विष्णुसदृश इत्यर्थः । यद्वा लक्ष्मीः सम्पत्तिः रङ्गणमानन्दानुभवो दैवमदृष्टं तत्समूहो दैवता जनतावत्, ततश्च लक्ष्मीभी रङ्गणाय दैवता यस्येति वहुव्रीह्यर्थे णप्रत्ययनेन तत्पदं सिद्धम् । अत एवोक्तम्—

**नाऽऽत्मना संशोभितम् । भानोर्मण्डलेन मण्डितेऽन्तरे लसन्ती प्रकाशमाना केशरशोभा भावो यस्य तत्तथा ॥ २६ ॥**

**योगीश इति । एतत्पङ्कजध्यानपरो जन एव भवति । योगीशः कान्ताकुलस्य सर्वस्त्रीणां प्रियात् स्वामिनोऽपि प्रियतमो भवति । ज्ञानीशः कृति च भवति । जित-**

सहान्वयः । तेन मण्डलमण्डितमन्तरं मध्यं यस्य स चासौ तसत्किञ्जल्कश्चेति स तथा । तस्य शोभाधरम् । "किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः ॥ २६ ॥

**गद्यैः पद्यपदादिभिश्च सततं काव्याम्बुधारावहो**
**लक्ष्मीरङ्गणदैवतः परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात् ॥ २७ ॥**

इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते मुक्तिपदं व्रजेत् ॥

इति **परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं** क्षणादिति। दुर्गद्वारपालादिना दुर्गमीकृतायामपि परपूर्यां प्रवेष्टुं शक्तः प्रवेशकारणभूतादर्शनाकाशगमनादियोग्यतापन्नो भवतीत्यर्थः ।

अत्र केचिद् 'दैवतमि'ति बिन्द्वन्तं पठित्वा यद्यपि जनविशेषणतया दवतमित्यस्य पुंस्त्वं भवितुं पार्यते, तथाप्यजहल्लिङ्गत्वान्नपुंसकत्वमिति वदन्ति । तन्न । "वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवता स्त्रियामि"त्यमरकोशे दैवतशब्दस्य पुंनपुंसकत्वकथनाद् दैवत इति विसर्गान्तपाठोऽपि साधुः । प्रदर्शितार्थे तु सुतरां तथेति । स्पष्टमन्यत् ।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः** । हृत्पद्मं बन्धूकाभं सिन्दूराभ-सबिन्दु-क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठेति द्वादशवर्णयुक्त-द्वादशदलम् । तदुपरि सूर्यमण्डलम् । तन्मध्ये विद्युत्कोटिनिभ-त्रिकोणम् । तदूर्ध्वे वायुबीजं कृष्णसाराधिरूढं धूमधूम्राभं चतुर्भुजमङ्कुशहस्तम । तत्क्रोडे हंसाभ ईशो द्विभुजो वराभयकरस्त्रिनेत्रः । अत्र कर्णिकायां रक्तपद्मोपरि काकिनीशक्तिः पीतवर्णा चतुर्भुजा पाश-कपाल-वराभयकरा पीतवस्त्रा सर्वालङ्करणान्विता सुधार्द्रहृदया कङ्कालमालाधरा । मध्यत्रिकोणे बाणलिङ्गशिवोऽर्द्धचन्द्रबिन्दुरूपमस्तकः स्वर्णवर्णः कामोद्गमोल्लसितः । तदधः स्थिरतरदीपकलिकाकारहंसरूपी जीवात्मा । एतत्कर्णिकाधोरक्तवर्णोर्ध्व-मुखाष्टदलपद्मम् । तत्र कल्पवृक्ष-रत्नवेदी-चन्द्रातप-पताकाद्यलङ्कृतं मानसपूजास्थानमिति चतुर्थप्रकरणम् ॥ २७ ॥

मिन्द्रियं नमो येन स तथा । ध्यानेनाऽवधाने क्षमो भवति । गद्यैः संस्कृतिवाक्यैः पद्यपदादिभिः श्लोकादि-प्रबन्धैर्गद्यपद्यरूपाम्बुधारावहो भवति । अत्यन्तवर्षणशीलो मेघरूपो भवतीति यावत् । लक्ष्मीतत्कुलदैवतमिति प्रशस्तलक्ष्म्याश्रयः कुलश्रेष्ठश्च भवतीत्यर्थः । यद्वा लक्ष्मीविशिष्टा कुलदेवता यस्य स तथा, स सत्कुलीनो भवतीति यावत् । दैवतमिति स्वार्थे अण् । एवं सः क्षणादेव परपुरे अन्यशरीरे प्रवेष्टुं समर्थो भवति । कुमारीतन्त्रे परपुरप्रवेशस्याप्येतत्पद्मध्यानफलत्वेनाभिधानात् ॥ २७ ॥

कण्ठस्थ-विशुद्धचक्र-स्वरूपम्

**विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूमधूम्रावभासं**
**स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः ।**

इदानीं कण्ठदेशे विशुद्धचक्रं निरूपयति—**विशुद्धाख्यमित्यादि-चतुर्भिः ।** **विशुद्धाख्यमिति ।**

विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महत् परम् ।। इति ।।

अस्यार्थः—**कण्ठे** विशुद्धाख्यं विशुद्धनामकं **सरसिजं समास्ते** इत्यन्वयः । पद्मं विशेषयति—अमलमिति । तेजोमयत्वान् मलरहितामित्यर्थः । स्वरैः सर्वैरकारादिविसर्गान्तैः षोडशस्वरैर्दीप्तबुद्धेर्निरन्तरयोगाभ्यासेन विषयानुरागरूपमलरहितत्वेन प्रकाशितबुद्धेः साधकस्य सम्बन्धे दीपितं प्रकाशितमित्यर्थः । स्वरैः किदृशैः ? **दलपरिलसितैरिति** । एतेन स्वराणां षोडशत्वादेतत् पद्मं षोडशदलमिति सूचितम् । व्यक्तमाहाऽन्यत्र--

तदूर्ध्वे षोडशदलं पङ्कजं धूम्रवर्णकम् ।
युक्तं शोणैः षोडषभिः स्वरैर्बिन्दुविभूषितैः ।
आरक्तकिञ्जल्कयुतं व्योममण्डलमण्डितम् ।।

इति । तथा **पूर्णेन्दुप्रथिततमनभोमण्डलं** पूर्णचन्द्रमण्डलवत् सम्पूर्णं शुक्लवर्णाञ्च, अत एव "तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधा" इति शारदोक्तवचनेन मण्डलानां तत्तद्दैवतभूतसमानवर्णविधानान् नभसः शुक्लवर्णत्वात् तन्मण्डलस्यापि शुक्लवर्णत्वं प्रतीयते । **नभोमण्डलं वृत्तरूपं समास्ते** । एतत्पद्मकर्णिकायामिति शेषः । **शुक्लवर्णाम्बरस्येति** । नभोमण्डलस्य मध्ये शुक्लवर्णस्याऽम्बरस्याकाशस्याऽङ्के "सदापूर्वो देवः शिव इति च समाख्यानसिद्धः" सदाशिवनाम्ना ख्यातो देवः सततं निवसतीति द्वितीयश्लोकेनाऽन्वयः । अम्बरस्य कीदृशस्य ? **हिमच्छायानागोपरि लसिततनोः**

विशुद्धाख्यमिति । अन्यत् निर्मलं विशुद्धाख्यं पद्मं कण्ठे आस्ते । किम्भूतम् ? धूमेन या धूम्राभा तस्या इव द्युतिर्यस्य तत्तथा । पुनः कीदृशम् ? सर्वैः षोडस्वरै रक्ताकारैर्दलैः परिलसितैर्दीपितं प्रकाशितम् । दीप्तबुद्धेर्दीपाकारबुद्धेर्जनस्य ज्ञानविषयो भवतीत्यर्थः । तत्रैव पद्मे शुक्लवर्णाम्बरधरस्य विष्णोः पूर्णेन्दुरिव प्रथिततमं ख्यातं

विशुद्धपद्ममाह—विशुद्धाख्याति । हिमच्छायायुक्तस्य नागस्योपरि लसित-

समास्ते पूर्णेन्दुप्रथिततम-नभोमण्डलं वृत्तरूपं
हिमच्छायानागोपरि लसिततनोः शुक्लवर्णाम्बरस्य ॥ २८ ॥

नभोबीजमध्यस्थ-सदाशिव-स्वरूपम्

भुजैः पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैः शोभिताङ्गस्य तस्य
मनोरङ्के नित्यं निवसति गिरिजाभिन्नदेहो हिमाभः ।

हिमच्छायया नागो हिमच्छायानाग इति तृतीयान्ततत्पुरुषेण हिमोपमाविशिष्टनाग इत्यर्थः । यद्वा हिमच्छायातुल्यो नाग इति शाकपार्थिवादित्वान् मध्यपदलोपे तत्पदसिद्धया शुक्लवर्णनाग इत्यर्थः । अत्र नागो हस्ती । व्यक्तमाह **भूतशुद्धौ**—तदन्तर्व्योमबीजञ्च शुक्लं हैमगजस्थितम् । इति । 'हैमे'ति हिमस्यायमिति इदमर्थतद्धितप्रत्ययेन हैमगजः शुक्लहस्ती इत्यर्थः । ततश्च शुक्लहस्त्युपरि परिलसिता प्रकाशमाना तनुर्यस्य तादृशस्येत्यर्थः ॥ २८ ॥

**भुजैरिति** । पुनः कीदृशस्य ? भुजैः **पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैः शोभिताङ्गस्येति** । पाशाङ्कुश-वराभय-हस्तस्येति फलितार्थः । पुनः कीदृशस्य ? मनोरिति । हँ इत्याकाशबीजं तदात्मकस्येत्यर्थः । तेनाऽत्र कर्णिकान्तरे नभोबीजं स्थितम् । तत् तूक्तरूपेण चिन्तनीयमिति तात्पर्यम् ।

सदाशिवं विशेषयति—**गिरिजाभिन्नदेह** इति अर्द्धनारीश्वर इत्यर्थः । **हिमाभः शुक्लवर्णः** । ततश्चार्द्धनारीश्वरत्वाद् वामार्द्धदेहं सुवर्णाभं दक्षिणार्द्धं शुक्लमिति । व्यक्तमाह—

शुक्लाम्बरेण संवीतं तत्र देवं सदाशिवम् ।
गिरिजाभिन्नदेहार्द्धं रोप्यहैमशरीरकम् ॥

नभोमण्डलं समास्ते । यद्वा पूर्णेन्दुना ख्याततमम् । "वियद्विष्णुपदो"त्यमरः । विष्णोः किम्भूतस्य ? हिमवर्णाभकान्तिर्विभा यस्य, एवम्भूतस्य नागस्योपरि लसिता तनुर्यस्य ॥ २८ ॥

भुजैरिति । तस्य विष्णोर्मनोरङ्के बीजाकारमूर्त्तेरङ्के पञ्चास्यः शिवो निवसति नित्यमेव । तस्य किम्भूतस्य ? पासाभित्यङ्कुशवरपरिलसितभुजैः शोभिताङ्गस्य ।

शरीरस्य चतुर्भिर्भुजैः पाशाङ्कुशादिलसितैः शोभितशरीरस्य दीप्तबुद्धेः उद्दीप्तज्ञानस्य ॥ २८ ॥

हिमाभः शुक्लः । सदाशिव इत्याख्यायुक्तः । सिद्धः प्रसिद्धः । तथा तन्त्रान्तरेऽपि—

**त्रिनेत्रः पञ्चास्यो ललितदशभुजो व्याघ्रचर्माम्बराढ्यः**
**सदापूर्वो देवः शिव इति च समाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः ॥ २६ ॥**

पद्मकर्णिकास्थ-शाकिनीशक्ति-स्वरूपम्

**सुधासिन्धोः शुद्धा निवसति कमले शाकिनी पीतवस्त्रा**
**शरं चापं पाशं सृणिमपि दधती हस्तपद्मैश्चतुर्भिः ।**

इति । 'तत्र' नभोबीजक्रोणे इत्यर्थः । तथा सदा सुधास्राविचन्द्रमसः कलाधोमुखान्वितमिति । **निर्वाणतन्त्रे** विशुद्धचक्राधिकारे--

यन्त्रमध्ये च वृषभं महासिंहासनं ततः ।
तस्योपरि सदा गौरी दक्षभागे सदाशिवः ॥
त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनम् ।
विभूतिभूषिताङ्गश्च रजताचलसोदरः ॥
व्याघ्रचर्मधरो देवः फणिमालाविभूषितः ।

इत्यादि । "तस्योपरि सदागौरी"ति शिवस्याऽर्द्धाङ्गरूपेण स्थितेति । व्यक्तमाह तत्रैव--

या गौरी लोकमाता च शम्भोरर्द्धाङ्गहारिणी ॥

इति । **ललितदशभुज** इति । लावण्येन प्रशंसितदशहस्तयुक्त इत्यर्थः । अत्र देवस्य दशभुजेष्वस्त्रविशेषानभिधानात्--

शूलं टङ्क-कृपाण-वज्र-दहनान् नागेन्द्र-घण्टाङ्कुशान् ।
पाशाभीतिकरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥

इति ध्यानान्तरे यान्यस्त्राण्युक्तानि तान्यस्य भुजेषु चिन्तनीयानीति ध्येयम् । **प्रसिद्ध** इति । प्राधान्येन ख्यात इत्यर्थः । अन्यत् सुगमम् ॥ २६ ॥

एतत्पद्मकर्णिकायां शाकिनीशक्तिस्थितिमाह--**सुधासिन्धोरित्यादि** । **कमले** विशुद्धचक्रकर्णिकायां शाकिनीनाम्नी शक्तिर्निवसतीत्यन्वयः । तां

शिवः किम्भूतः ? गिरिजया पार्वत्याऽभिन्नो देहो यस्य, हरगौरीमूर्त्तिरित्यर्थः । पुनः कीदृशः ? हिमस्यमेव शोभा यस्य । त्रिनेत्रः । मनोज्ञा दश भुजा यस्य स तथा । व्याघ्रचर्माम्बरैर्युक्तः । यद्वा व्याघ्रचर्मणा साम्बरेण च युक्तः, हरगौर्यात्मिकत्वात् । सदाशिव इति समाख्यानसिद्धः नित्यस्वरूपप्रसिद्धः । योगिनां मनसि प्रकाशः ॥ २६ ॥

सुधासिन्धोरिति । तत्र कमले पीतवस्त्रा शाकिनी निवसति । कीदृशी ? सुधा-

सदाशिवस्थानमिदं विशुद्धं शाकिन्यथेहापि च धूम्रवर्णा ॥ इति ॥ २६ ॥

सुधासिन्धोः शुद्धा शुक्ला । तथा च तन्त्रान्तरे —

**सुधांशोः सम्पूर्णं शशपरिरहितं मण्डलं कर्णिकायां**
**महामोक्षद्वारं  श्रियमभिमतशीलस्य  शुद्धेन्द्रियस्य ॥ ३० ॥**

विशेषयति—**सुधासिन्धोः शुद्धेति**। सुधासमुद्रसदृश-शुक्लवर्णा। तथाच यथा सुधासिन्धोरमृतमयसुशीतलशक्लत्वं तथा ज्योतिःस्वरूपायाः शाकिन्या उत्तापरहित-शक्लकिरण इति भावः। ध्यानान्तरे शाकिनीं विशेषयति—

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनलसितां पञ्चवक्त्राभिरामां
हस्तैः पद्मैश्च पाशं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
ध्यायेत् कण्ठस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्मादिनीमस्थिसंस्थां
दुग्धान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां शाकिनीं साधकेन्द्रः॥

इति। "ज्योतिःस्वरूपां" ज्योतिषां स्वभावतः शुक्लवर्णत्वेनेयं शुक्लवर्णा। अत्र ध्यानद्वये द्विविधास्त्रदर्शनादिच्छया विकल्पः। इयं देवी कर्णिकान्तश्चन्द्रमण्डले वर्त्तते। तदाह **प्रेमयोगतरङ्गिण्याम्**—

तत्रास्ते शाकिनी शक्तिः सुधांशोर्मण्डले शुभे॥

इति। एतत्कर्णिकायां **सुधांशोश्चन्द्रस्य** शशपरिरहितं निष्कलङ्कं **सम्पूर्णं** मण्डलमपि विलसतीति पूर्वक्रियायामन्वयः। मण्डलं विशेषणेन प्रशंसति—महामोक्षेत्यादि। एतन्मण्डलं शुद्धेन्द्रियस्य जितेन्द्रियस्य महामोक्षद्वारं निर्वाणमुक्तिमाहुः। एतच्चिन्तनादियोगमार्गमवलम्ब्य मुक्तिमाप्नोतीति भावः। **श्रियमभिमतशीलस्येति**। श्रियं योगलक्ष्मीमभिमन्यते आकाङ्क्षतीति श्रियमभिमतम्, तादृशं शीलं स्वभावो यस्य, तद्रूपस्य शुद्धेन्द्रियस्येति विशिष्टार्थः। अत्र कर्णिकायां चन्द्रमण्डलादिस्थितिप्रकारस्तु—आदौ कर्णिकान्तर्नभोमण्डलं, तन्मध्ये त्रिकोणं, तदन्तश्चन्द्रमण्डलं, तन्मध्ये नभोबीजादिकमिति। तद्यथा—

सिन्धोश्चन्द्राच् शुद्धसम्बन्धीययाऽमृतधारया शुद्धा इति यावत्। चतुर्भिर्हस्तपद्मैः शरं चापं पाशं सृणिमपि दधती। तस्य पद्मस्य कर्णिकायां सुधांशोश्चन्द्रस्य शशपरि-

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनविलसत्पञ्चवक्त्रां सुदंष्ट्रीं
हस्ताम्भोजेषु चापं शूलमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्॥ इति॥

पुस्तकं ज्ञानमुद्रामिति शरं पाशमिति तन्त्रान्तरे उक्तम्। सुधांशोश्चन्द्रस्य मण्डलम्। तथाच **स्वच्छन्दसंग्रहे**—

विशुद्धचक्र-चिन्तन-फलम्

**इह स्थाने चित्तं निरवधि विनिधायाऽऽत्मसम्पूर्णयोगः**
**कविर्वाग्मी ज्ञानी स भवति नितरां साधकः शान्तचेताः ।**

कर्णिकायां त्रिकोणस्थं पूर्णचन्द्रं तु चिन्तयेत् ।
हैमाभं गजमारूढमाकाशं तत्र चिन्तयेत् ॥
शुक्लाम्बरेण संवीतं तत्र देवः सदाशिवः ॥

इति । 'शुक्लाम्बरेण संवीत'माकाशमिति ॥ ३० ॥

विशुद्धचक्रचिन्तनफलमाह—इह स्थान इति । **आत्मसम्पूर्णयोग** इति । आत्मनि ब्रह्मणि **सम्पूर्णः** सर्वव्यापकत्वेन परिपूर्णो योगो ज्ञानं यस्य तादृशः । आत्तसम्पूर्णयोग इति पाठे—आत्तः प्राप्तः सम्पूर्णयोगो येनेत्यर्थः । अत एवोक्तं **श्रीमदाचार्येण**—"पूर्णबोधात्मना तिष्ठेत् पूर्णाचलसमुद्रवदि"ति । ततश्च यः **साधक इह स्थाने निरवधि चित्तं विनिधायऽऽत्मसम्पूर्णयोगो भवति, स ज्ञानी** उपदेशं विना सर्वशास्त्रार्थवेत्ता शान्तचेताः शान्तिगुणावलम्बिचित्तः—

दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥

इत्यादि-गुणोपहितचित्त इति यावत् । **त्रिकालानां दर्शीति** । अत्र केचित् ज्ञानलक्षणात्मकालौकिकसन्निकर्षरूप-योगधर्मेण सर्वं पश्यन्तीति । अन्ये तु

रहितं सम्पूर्णमण्डलमास्ते । कीदृशम् ? महामोक्षद्वारं निर्माणमुक्तिद्वारम् । पुनः कीदृशम् ? उल्बणबुद्धिशीलस्य जितेन्द्रियस्य श्रियं दधदित्यर्थः ॥ ३० ॥

इह स्थान इति । इह विशुद्धे पद्मे चित्तं यो निदध्यात् तस्य सम्पूर्णयोगविषये ज्ञानं भवतीत्यर्थः । अथवा तत् सर्वमेव सम्पूर्णयोगत्वेनोपदिष्टम् । तदेवाह क्रमेण—

अमृताद्यास्तथाकाशं चन्द्रबिन्दु तदूर्ध्वतः ।
कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरङ्गुले ॥ इति ॥

मतिशीलस्य ज्ञानशीलयुक्तस्य शुद्धेन्द्रियस्य जनस्य महामोक्षद्वारसम्पत्तिं दधत् मण्डलमित्यर्थः ॥ ३० ॥

स जीवो विपदामन्धकारस्वरूपाणां ध्वंससूर्यप्रकाशः । अत्र वैखरी शक्तिरस्ति । तथा च भट्टधृततन्त्रे—

सूक्ष्मा कुण्डलिनी मध्ये ज्योतिर्मात्रा परा मता ।
अश्रोत्रविषयात् तस्मात् किञ्चिदेवोर्ध्वगामिनी ॥

**त्रिकालानां दर्शी सकलहितकारो रोगशोकप्रमुक्त-**
**श्चिरञ्जीवी जीवी निरवधिविपदां ध्वंसहंसप्रकाशः ॥ ३१ ॥**

तादृशजनस्यात्मप्रत्यक्षे तत्र भासमानसर्वप्रमेयवस्तूनां प्रत्यक्षो भवतीति वदन्ति । **रोगशोकप्रमुक्तः** सिद्धमन्त्रत्वाद् रोगमुक्तश्चिरञ्जीवी छिन्नमाया-पाशत्वाच्छोकरहित इत्यर्थः । स जीवी जनो नितरामतिशयकविर्भवति । एवं सर्वत्र भवति-क्रियान्वयः । **निरवधिविपदां ध्वंसेति** । अवधिः सीमा तद्रहितविपन् निरवधिविपत् । आदिना पापपुण्यरूपकर्मबन्धे नानाविपत्ति-रिति यावत् । तेषां ध्वंसाय विपत्तिप्रागभावासमानकालीनविपत्तिनाशाय फलतो मोक्षाय । हंसस्य सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतहंसरूपान्तरात्मनः प्रकाशो यस्य तादृशो भवतीति । स्पष्टमन्यत् ।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः**— कण्ठमूले विशुद्धचक्रं षोडशदलं धूमधूम्ररूप-मारक्तकेसरं रक्तवर्ण-सबिन्दुक-षोडशस्वरयुक्तम् । कर्णिकायां नभोमण्डलं वृत्तरूपं शुक्लवर्णम् । तन्मध्ये त्रिकोणम् तत्र चन्द्रमण्डलम् । तदुपरि हँ इति नभोबीजं शुक्लवर्णं शुक्लाम्बरपरीधानं शुक्लगजारूढं पाशाङ्कुश-वराभय-धरम् । तत्क्रोडे वृषभोपरि स्थितमहासिंहासने सदाशिवोऽर्द्धनारीश्वर-त्वादर्द्धाङ्गसुवर्णाभार्द्धाङ्गशुक्लाभः पञ्चवक्त्रस्त्रिनेत्रः (दशभुजः) शूल-टङ्क-खड्ग-वज्र-दहन-नागेन्द्र-घण्टाङ्कुश-पशाभययुक्त-दशहस्तो व्याघ्रचर्माम्बरो भस्मलिप्तसर्वाङ्गो नागहारशोभितः सुधास्राव्यधोमुखार्द्धचन्द्रशेखरः । एतत्कर्णिकायां चन्द्रमण्डलमध्ये अस्थ्युपरि स्थिता शाकिनीशक्तिः शुक्लवर्णा चतुर्भुजा पाशाङ्कुशधनुःशरकरा पीताम्बरा पञ्चवक्त्रा त्रिनेत्रेति पञ्च-प्रकरणम् ॥ ३१ ॥

**कविर्वाग्मीत्यादि । स जनो निरवधि नित्यमेव विपत्प्राप्तानां त्राणे सूर्य इव तेजस्वी भवति ॥ ३१ ॥**

स्वयंप्रकाशा पश्यन्ती सुषुम्णानाभिमाश्रिता ।
सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी ॥
ततः संजल्पमात्रा स्यादविभक्तोर्ध्वगामिनी ।
सैवोरुकण्ठतालुस्था शिरोघ्राणरदाश्रिता ॥
जिह्वामूलोष्ठनिस्यूता कृतवर्णपरिग्रहा ।
शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी ॥ इति ॥३१॥

भ्रूमध्यस्थिताऽऽज्ञाचक्र-स्वरूपम्

**आज्ञानामाऽम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं**
**हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम् ।**

इदानीं भ्रूमध्यस्थिताज्ञाचक्रं निरूपयति--**आज्ञानामाऽम्बुजमित्यादि-**सप्तभिः । आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्त्तितमि"ति गुरोराज्ञासंक्रमणादाज्ञानाम । ततश्च तन्नामकं **तत् प्रसिद्धमम्बुजमास्ते** इति क्रियाध्याहारेणाऽन्वयः । एतत् पद्मं भ्रूमध्ये स्थितम् । यद्यथा—

तालुकण्ठं प्रविश्योर्ध्वं भ्रूयुगान्ते सितं शुभम् ।
द्विदलं ह्-क्ष-वर्णाभ्यां मनोऽधिष्ठितमम्बुजम् ॥

इति । पद्मं विशेषयति–**हिमकरसदृ**शमिति । चन्द्रवच्छुक्लवर्णमित्यर्थः । तथा **ध्यानधामप्रकाशं** ध्यानस्य धाम्ना तेजसा तेजोरूपशक्त्या प्रकाशो यस्येत्यर्थः । अत्र ध्यानशक्त्या धामवत् प्रकाशितावयवमित्यर्थः । वर्णानां कलाबीजत्वात् तत्र कलापदप्रयोगः । **नेत्रपत्रं** द्विदलम् । **सुशुभ्रमिति** । हक्षाभ्यां सुशुभ्रमित्यर्थः । तथाच स्वभावशुभ्र-ह्-क्ष-वर्णयोगेनाऽतिशुभ्रमिति भावः । एतेन ह्-क्ष-वर्णयोरपि शुक्लत्वं सूचितं, शुक्लयोगेनैव शुक्लस्यातिशयत्वसम्भवात् । यद्वा--आज्ञाचक्रं हिमकरसदृशं चन्द्रस्यामृतमयशीतकिरणवच्छीतकिरणं तथा सुशुभ्रञ्च हक्षाभ्यां कर्बूरवर्णाभ्यामिति बोद्धव्यम् । तदाह **ईश्वरकार्तिकेयसम्वादे--**

आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु शुक्लं द्विदलमण्डितम् ।
कर्बूर-ह्क्ष-लसितं मनोऽधिष्ठतरञ्जितम् ॥ इति ॥

एतत्कर्णिकायां हाकिनीशक्तिस्थितिमाह—**तन्मध्य** इति । **सा** हाकिनी-

आज्ञेति । तत् प्रसिद्धं भ्रूमध्ये आज्ञानाम पद्ममास्ते । कीदृशम् ? हिमकरसदृशम् । अतः प्रशस्तशुभ्रम । ध्यानधामनि प्रकाशो यस्य तत् । हकार-क्षकारोपलक्षित-दलाभ्यां परिलसितं वपुर्यस्य । कलाभ्यामिति केचित् पठन्ति । तन्मते हकारक्षकाररूपकलाभ्यां

आज्ञाचक्रमाह—आज्ञा नामेत्यादिना । गौतमीये--"आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्त्तितम् ।" इति । चन्द्रतुल्यक्लेदजनकं ध्यानस्थानं प्रकाशस्वरूपम् । हक्षाभ्यां विशुद्धाभ्यां कलाभ्यामक्षराभ्यां युक्तं द्विपत्रमतीवशुभ्रम् । **मायातन्त्रेऽपि--** "आज्ञाख्यं द्विदलं शुभ्रम्"—इति । **दक्षिणामूर्त्तावपि—**

**तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना**
**विद्यां मुद्रां कपालं डमरु जपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता ॥ ३२ ॥**

नाम्नी प्रसिद्धा । **विद्यां** पुस्तकमुद्राम् । मुद्रां वराभयरूपां, तेनास्या भुजेषु षड्विधायुदर्शनात् षड्भुजेयम् ।

केचित् तु विद्यामुद्रामित्येकविभक्तयन्तं पठित्वा विद्यायै मुद्रां विद्यामुद्रां व्याख्यामुद्रामिति व्याख्ययाऽस्याश्चतुर्भुजत्वं वदन्ति । किन्तु नानापुस्तके पृथग्विभक्त्यन्तपाठो दृश्यत इति सुधीभिर्विवेच्यम् । ध्यानान्तरेण हाकिनीं विशेषयति –

मज्जास्थां शुक्लवर्णां डमरुकरयुतामक्षसूत्रं कपालं
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिनयनविलसद्वक्तषड्वक्त्रयुक्ताम् ।
हारिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लमब्जं सुरूढां
देवीं देवेन्द्ररत्नाकरमधुमुदितां भावयेद्धाकिनीं ताम् ॥ इति ॥

स्पष्टमन्यत् ॥ ३२ ॥

**स्वरविशिष्टाभ्यामिति । पुनः कीदृशम् ? नेत्रपत्रं द्विपत्रमित्यर्थः । एतत्पद्मे सा प्रसिद्धा हाकिनी निवसति । कीदृशी ? शशिसमधवलवर्णा षण्मुखी च । हस्तैः करणैरेतान् बिभ्रती विद्या-(ज्ञान)-मुद्रा-कपाल-डमरु-जपवटीरिति । शुद्धं चित्तं यस्याः सा तथा ॥ ३२ ॥**

आज्ञायां विद्युदाभायां शुभ्रौ हक्षौ विचिन्तयेत् ।

हाकिनीति । तन्त्रान्तरेऽपि –

आज्ञापुर शारदचन्द्रशुभ्रं हाकिन्यथोक्ता शिवगेहमेतत् ।

विद्या पुस्तकम् । मुद्रा ज्ञानमुद्रा अङ्गुष्ठतर्जनीमिलिता । तन्त्रे––

आज्ञास्थां शुक्लवर्णां डमरुकसहितामक्षसूत्रं कपालं
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिनयनविलसदुक्तषट्कोणयुक्ताम् (?) । इति ।

सूक्ष्मञ्च तत्प्रकाशस्वरूपं चेति तत् तथा । मायातन्त्रेऽपि––

आज्ञाख्य द्विदलं शुभ्रं कर्णिकाग्रं मनोलयम् । इति ।

सिद्ध नित्यम् । सिद्धशब्दा नित्यार्थ इति वैयाकरणाः ॥ ३२ ॥

आज्ञाचक्रस्थ-मनःस्थितिस्वरूपम्

**एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धं**
**योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिह्नप्रकाशम् ।**

एतत्पद्मे मनः स्थितिमाह–**एतत्पद्मान्तराल** इति । **सूक्ष्मरूपम**तीन्द्रियमित्यर्थः । ननु मनसोऽतीन्द्रियत्वात् तत्सत्तायां किं प्रमाणमित्याह— **प्रसिद्धमिति** । अनादिपुरुषपरम्पराप्राप्त-प्रत्यक्षकरणत्वेन प्रसिद्धम् तथा—

सङ्कल्पञ्च विकल्पञ्च कुर्वाणा तु मनो भवेत् ।

इत्यादि-शास्त्रप्रमाणसिद्धञ्च । अत्र मानसस्थानं वक्ष्यमाणवेदादिबीजस्योर्ध्वदेशे, वक्ष्यमाणवचनात् । अतः परं शिवलिङ्गस्थितिमाह—**योनौ** तत्कर्णिकायामिति । कर्णिकान्तस्त्रिकोणे **इतरशिवपदम्** इतरनामकशिवरूपं वस्तु निवसतीति पूर्वक्रियान्वयः । **लिङ्गचिह्नप्रकाशं** लिङ्गरूपेण भासमानमित्यर्थः । इदं लिङ्गं शुक्लवर्णम् । तदाह **भूतशुद्धौ**—

तदन्तःश्वेतरं लिङ्गं स्फटिकाभं त्रिलोचनम् ।। इति ।।

लिङ्गं विशेषयति **विद्युन्मालाविलासमिति** । अत्र प्रणवस्थितिमाह— **परमेत्यादि** । कर्णिकायां वेदादिबीजं प्रणवोऽपि वसतीत्यन्वयः । बीजं विशेषयति—**परमकुलपदमिति** । कुलं शक्तिस्तदत्र त्रिकोणाकारपदं स्थानं परमं विद्युदाकारादिनोत्कृष्टं कुलं पदं यस्य तादृशमित्यर्थः । तथाच तद्बीजं त्रिकोणमध्यवर्त्तीति पर्यवस्यति ।

व्यक्तमाह—कर्णिकायां त्रिकोणस्थमात्मानं प्रणवाकृतिम् ।
ज्वलद्दीपनिभञ्चोर्ध्वं नादरूपं मनोहरम् ।
बिन्दुर्मकाररूपञ्च तदूर्ध्वं मानसालयः ।। इति ।।

**एतदिति । एतत्पद्मे सूक्ष्मरूपेण प्रसिद्धं मनो निवसति । तस्य पद्मस्य कर्णिकायां या योनिस्तस्यामितराख्यः शिव आस्ते, तस्य स्थानमित्यर्थः । कीदृशम् ? लिङ्गचिह्नेन**

इतरशिवपदम्—इं कालं तरति इतीतरं शिवस्य परिशिवस्य पदं, इतरञ्च तत् शिवपदञ्चेति तत् । लिङ्गचिह्नेन लिङ्गाकारेण प्रकाशो यस्य तत् । विद्युन्मालेव प्रकाशो यस्य तत् । **योगिनीहृदये**—

इतरश्च पुनस्तथा शरच्चन्द्रनिभं सदा । इति ।

**आनन्दलहर्यामपि**—तवाऽऽज्ञाचक्रस्थं तपनशशि-कोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता ।

ताराषोढान्यासाधिकारतन्त्रे—
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट् शिवाः परिकीर्त्तिताः ।।

**विद्युन्माला-विलासं परम-कुल-पदं ब्रह्मसूत्र-प्रबोधं**
**वेदानामादिबीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत् तत् क्रमेण ॥ ३३ ॥**

नन्वत्र परमकुलपदस्य प्रणवाधारत्वेनाऽपृथक्त्वे—

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् ।
विशुद्धमाज्ञाचक्रञ्च बिन्दुर्भूयः कलापदम् ।
निबोधिका तथार्द्धेन्दुर्नादो नादान्त एव च ।
उन्मनी विष्णुवक्त्रञ्च ध्रुवमण्डलिकः शिवः ।
इत्येतत् षोडशाधारं कथितं योगिदुर्लभम् ॥

इति वचने षोडशाधार-गणनायां कलापदस्य पृथगभिधानं कथं सङ्गच्छत इति चेत् । न । तत्कलापदं नाऽऽज्ञाचक्रस्थं किन्तु वक्ष्यमाणमहानादोर्ध्वे शून्यदेशे स्थितमित्येतन्महानादप्रस्तावे स्फुटीकरिष्यामः ।

**ब्रह्मसूत्रप्रबोधमिति** । ब्रह्मसूत्रं चित्रिणी नाडी तस्याः प्रबोधः प्रकाशो येनेत्यर्थः । अत एव पूर्वमुक्तं "प्रणवविलसिता" इति । तदिति । प्रदर्शित-हाकिनी-मन-इतरलिङ्ग-वेदादिबीजरूपं तत् सर्वं स्थिरतरहृदयः सन् क्रमेण चिन्तयेदित्यर्थः ।

क्रमोऽत्र न ग्रन्थकारोक्तपाठक्रमः किन्तु पाठक्रमाच्छाब्दक्रमस्य बलवत्त्वात् प्रदर्शितशब्दक्रमो गृह्यते । एवञ्च पद्मकर्णिकायां हाकिनी शक्ति-

**प्रकाशो यस्य पुनः कीदृशम् ? विद्युन्माला इव प्रकाशो यस्य तत्तथा परमञ्च तत् कुलञ्चेति परमकुलं मूलाधारपद्मं तदेव पदं स्थानान्तरं यस्य । ब्रह्मसूत्रस्य प्रबोधो**

इति मूलाधारादि-विशुद्धपद्मेषु पञ्चशिवन्यासमभिधाय—

आज्ञाचक्रे च देवेशि हक्षवर्णसमन्वितम् ।
परं शिवं ब्रह्मरूपं हाकिनीसहितं न्यसेत् ॥

इत्युक्तम् । स च सहस्रारनिर्गणपरशिवस्यांशस्वरूपो अपरः शिवो ज्ञेयः । अत एव ब्रह्मशिवत्वाद् ब्रह्मस्वरूपमित्युक्तम् । न तु ब्रह्म इत्युक्तम् । **परमकुलपदम्** एतत् पर्यन्तं परमकुलपदमित्युपसंहारेणोक्तम् । तथाच **श्रीमते** —

तत्रैतद् दक्षिणं षट्कमाज्ञापूर्वं कुलोद्भवम् ॥ इति ॥

**आनन्दलहर्यामपि**—महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥ इति ॥

अत्र कं जलं स्वाधिष्ठाने मणिपूरे हुतवहमिति व्यत्ययेनाऽन्वयः । ब्रह्मसूत्रेति

आज्ञाचक्र-ध्यानफलम्

**ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः**
**सर्वज्ञः सर्वदर्शी सकलहितकरः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता ।**
**अद्वैताचारवादी विलसित परमापूर्वसिद्धि-प्रसिद्धो**
**दीर्घायुः सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने च ॥ ३४ ॥**

स्तदूर्ध्वे त्रिकोणे इतरलिङ्गं, तदूर्ध्वे त्रिकोणे प्रणवस्तदूर्ध्वे मन इत्येवं क्रमेण चिन्तयेदिति ॥ ३३ ॥

एतद्ध्यानस्य फलमाह—**ध्यानात्मेति ।** उक्तरूपेण ध्यानपरायणः **साधकेन्द्रः परपुरे शीघ्रगामी** भवतीति सर्वत्र क्रियान्वयः । **मुनीन्द्रः** मुनिर्ध्यानयोगादिसम्पन्नस्तदिन्द्रस्तच्छ्रेष्ठः । **सर्वज्ञः** पूर्वोक्तरूपेण सर्वदर्शी शास्त्रव्यवहाररीत्यनुरूपविवेकबुद्ध्या पूर्वापरदर्शी । **अद्वैताचारवादीति ।** "पादोऽस्य विश्वा भूतानि" । "तदिदं सर्वं ब्रह्मे"त्यादि श्रुतिवाक्येन—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवास्मि न शोकभाक् ।

इत्यादिवाक्येन च ब्रह्मैवैकं सद् वस्तु तदन्यदसत्, प्रपञ्चसमुदायस्तु ब्रह्मभासया भासते इत्यवधारणमद्वैतम् । तादृशज्ञानेन य आचारो जीवात्मपरमात्मनोरैक्यचिन्तनादिरूपयोगस्तद्वादो तत्कथनशीलः । स जनोऽद्वैताचारवादी भवतीति फलितार्थः । परमापूर्वसिद्धिप्रसिद्ध इति । **परमापूर्वसिद्धि**र्महासिद्धिस्तया **प्रसिद्धः** प्राधान्येन ख्यात इत्यर्थः । **सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने** चेति प्रशंसापरम् । अथवा तादृशसाधकस्य देहान्ते परमात्मनि लयाद् यः सृष्टिस्थितिप्रलयकर्त्ता स एवायं भवतीति तात्पर्यम् ॥ ३४ ॥

यस्मात् । तत् मनोनिवासभूतम् ब्रह्मनाडीवर्त्मस्थितानां सर्वेषामेव तस्मादेव ज्ञानं भवतीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

ध्यानात्मेति । एतद्ध्यानपरो जन एवं भवतीत्याह – ध्यानात्मेति । ध्याननिष्ठ इत्यर्थः । स साधकेन्द्रः परपुरे शीघ्रगामी भवति । तत्तद्दिव्यभावविषये परपुरप्रवेशनं पूर्वमेवोक्तं, तत् तु उदासीनानामेव सम्भवतीति नान्येषाम् । अद्वैताचारं वक्तुं शीलमस्येति स तथैव भवति । स साधकः कीदृशः ? प्रकृष्टासु आदिसिद्धिषु समर्थो भवति, अतो दीर्घायुर्भवत्येव । त्रिभुवननिवासिनामुत्पत्तौ संहृतौ पालने वा स कर्त्ता । अतो ब्रह्म-वि णु शिवात्मको भवतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मसूत्रस्य ब्रह्मनाड्याः प्रबोधो यस्मात् तत् । वेदानामादिबीजं प्रणवः, तदत्र चिन्तयेत् ॥ ३३ ॥

विलसितपरमोऽपूर्वसिद्धप्रसिद्धो यस्य सः ॥ ३४ ॥

आज्ञाचक्रस्थ-प्रणवस्वरूपम्

**तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् निवसति सततं शुद्धबुद्धयन्तरात्मा**
**प्रदीपाभ-ज्योतिः प्रणव-विरचना-रूप-वर्ण-प्रकाशः ।**

तदाज्ञाचक्रे प्रणवयोगं विवक्षुरादौ प्रणवं विशेषयति--**तदन्तरिति** अस्यार्थः--**अस्मिन् चक्रे तदन्तस्तस्य** पूर्वोक्तत्रिकोणस्यान्तर्मध्ये यः **प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः** प्रणवस्य विरचनारूपेणाऽकारोकारयोः सन्धियोगेन यस्त्रयोदशस्वरसदृशवर्णप्रकाशः सततं निवसति स शुद्धबुद्धयन्तरात्मा इत्यन्वयः । तं विशेषयति--**प्रदीपाभज्योतिरि** । ननु तर्हि किं त्रयोदशस्वरसदृशवर्णमात्रं शुद्धबुद्धयन्तरात्मा इत्यत आह--तदूर्ध्वे **चन्द्रार्द्धस्तदुपरि** विलसद्बिन्दुरूपी मकार इति । तेन तादृशवर्णोपरि अर्द्धचन्द्रबिन्दुयोगेन प्रकृतप्रणवस्वरूपः पर्यवस्यति । **तदूर्ध्वे नादोऽसाविति** प्रणवोर्ध्वेऽव्यान्तरनादोऽस्तीति । स तु **बलधवल-सुधाधारसन्तान-हासी** बलदेवस्य धवलं सुधाधारसन्तानञ्चोपहसितुं शीलं यस्येत्यर्थादतिशयशुक्लवर्णो नादः ।

**तदन्तरिति । तदूर्ध्वमस्मिन चक्रे सततमेव प्रणवविरचना प्रणवं विरचयति येनोकारेण तद्रूपाक्षरप्रकाशो निवसति । कीदृशः ? शुद्धबुद्धीनां अन्तरात्मस्वरूपः ।**

अत्रान्तरात्मा अस्तीत्याह—शुद्धबुद्धेत्यादिना । शुद्धबुद्धः शुद्धस्वभावः स चासौ अन्तरात्मा चेति सः । प्रदीपस्येव आभा दीप्तिर्यस्य ज्योतिषः एवम्भूतो ज्योतिः । प्रणवाभ्यां विरचितौ **स्वरूपवर्णौ** यस्य सः [ वर्णशब्दः ? ] । **श्रीक्रमेऽपि** --

भ्रूमध्ये अन्तरात्मानमरूपं सर्वकारणम् ।
ॐकारज्योतीरूपन्तु प्रदीपाभं जनन्मयम् ।। इति ।।

अत एव प्रकाशः **ज्योतिःस्वरूपः** । तदूर्ध्वे पूर्वोक्तान्तरात्मोर्ध्वे अर्द्धचन्द्रः, चन्द्रार्द्धे बिन्दुरूपी मकारः, तदुपरि नाद इति व्यत्ययेनाऽन्वयः । एवं नादप्राग् बोधिनी, लिखिष्यमाणयोगिनीहृदयात् ज्ञेयाः । असौ नादः अतीवशुक्ल इत्याह--वनेत्यादिना । वनं जलं तद्वद् धवलवर्णः यश्च पीयूषाधारश्चन्द्रः तत्समूहहासी तदधिकशुक्ल इति भावः । **योगिनीहृदयेऽपि--**

इन्दौ तदर्द्धे बोधिन्यां नादे नादान्त एव च ।। इति ।।

**इन्दौ बिन्दौ** । तदर्द्धे अर्द्धचन्द्रे । **स्वच्छन्दसंग्रहेऽपि—**

तत्र बिन्दोर्यथा बिन्द्वावरणे स तदूर्ध्वतः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमतिदीप्तं महद्गुणम् ।।

तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्धस्तदुपरि बिलसद्-बिन्दुरूपी मकार-
स्तदूर्ध्वे नादोऽसौ वलधवल-सुधाधारसन्तान-हासी ॥ ३५ ॥

केचित् तु तदाद्ये नादोऽसाविति पठन्ति, तदाद्ये बिन्दुरूपि-मकारस्याद्ये इति व्याख्यायन्ति च। तदसत्। "तदुपरि विलसद्-विन्दुरूपी मकार" इत्यनेन मकाराद्ये नादप्राप्तौ पुनस्तदुपादानं व्यर्थं स्यात्। परन्त्वसौ नादः प्रणवघटकीभूतनादातिरिक्तो भिद्यमानपरबिन्दोरवयवविशेषः प्रणवोर्ध्वे वर्त्तते। यदि तु विशिष्टप्रणवनिरूपणे तदङ्गप्रत्यङ्गमेव वक्तुमुचितं कथं तदतिरिक्तनादोऽप्रस्तुतः प्रस्तूयते इति चेत्? तर्हि तदाद्ये नादोऽसाविति

**यद्वा शुद्धैजनैरवगतोऽन्तरात्मा अस्य। तथा प्रदीपस्याभा इव ज्योतिर्यस्य तस्य। ओकार-स्योपरि चन्द्रार्द्धः, तदुपरि प्रकाशमानबिन्दुरूपो मकारः। एतेन आज्ञाख्यपद्मस्योपरि**

तन्मध्ये शतकोटीनां संख्या योजनपङ्कज[श्चक]म्।
तत्कर्णिकायामासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः॥
पञ्चवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुञ्जनिभाकृतिः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनुक्रमात्॥
परिवार्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतेश्वरस्य च।
वामभागे समासीना शान्त्यतीता मनोन्मनी॥
पञ्चवक्त्रधराः सर्वा दशवाह्विन्दुभूषणाः।
बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोटचर्बुदशतैर्वृतम्॥
अर्द्धचन्द्रस्तदूर्ध्वे तु रो[बो]धिनी तस्य चोपरि।
ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती कान्तिः सुप्रभा विमलापि च॥
अर्द्धचन्द्रस्थिता ह्येताः कलाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः।
रु[ब]न्धिनी रो[ब]धिनी बोधा [रोधा]ज्ञानबो[र]धा तमोपहा॥
निबो[रो]धिका कलाः पञ्च कथिताः सुरसुन्दरि।
ब्रह्मादिपरमेशानां परप्रा[मा]प्तिनिबो[रो]धनात्॥
नि[रो]बोधिकेति सा प्रोक्ता तस्या भेदा वरानने।
बो[रो]धिन्याख्यं यदुक्तं ते नादस्तस्योपरि स्थितः॥
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशः कोटिसूर्यसमप्रभः।
पुरैः परिवृतोऽसंख्यैर्मध्ये पञ्चकलावृतः॥
इन्धिका दीपिका चैव रेचिता मोचिका तथा।
ऊर्ध्वगा मध्यगा तासां पञ्चमी परमा कला॥

आज्ञाचक्रे प्रणवयोग-निरूपणम्

**इह स्थाने लीने सुसुखसदने चेतसि पुरं**
**निरालम्बां बद्ध्वा परमगुरुसेवासुविदिताम् ।**

पाठोऽभिमन्यते । किन्तु तस्यायमर्थः—तदाद्ये बिन्दुरूपिमकाराद्ये प्रदर्शितोऽसौ नादो बलधवल-सुधाधारसन्तान-हासीति पूर्वोक्तनादमनूद्य बलधवलेत्यादिविशेषणं विधीयते । न तु विशिष्टस्य विधानम् । अतो न पुनरुक्तिदोषः ॥ ३५ ॥

प्रणवं निरूप्येदानीं तद्योगं निरूपयति—इह **स्थान** इति । अस्यार्थः—**योगी** जनः **पुरं** बद्ध्वा कुतुकेनाऽन्तःपुरं संरुध्य तत्प्रकारेणाऽन्तःपुररोधकारणीभूतयोनिमुद्रां बद्ध्वेति यावत् । तेन पुःशब्देन योनिमुद्रा लक्ष्यते । तन्मुद्रां बद्ध्वा इह स्थाने आज्ञाचक्रे **तदभ्यासात्** तस्य प्रणवस्य पुनः पुनश्चिन्तनात् तत्र **चेतसि** प्रणवचतुर्दिक्षु लीने सति ततस्तदनन्तरं तन्मध्यान्तः प्रणवाधारत्रिकोणमध्ये अन्तरन्तरिक्षे **पवनसुहृदां** वह्नीनां कणान् वह्निकणवज्ज्योतिःस्फुलिङ्गान् पश्यति, तेषां मानसप्रत्यक्षो भवतीत्यर्थः । अत्र पुरबन्धनं विना मनसः शुद्धस्थैर्यं न सम्भवतीत्यतः पुरं बद्ध्वेत्युक्तम् । पुरबन्धनकारणयोनिमुद्रालक्षणमाह—

ततो गुह्ये वामपादपार्ष्णिन्तु विनिवेशयेत् ।
तस्योपरि महादेवि दक्षपार्ष्णिं निवेशयेत् ॥

**प्रणवप्रकारसिद्धिः, तस्योपरि असौ नादो वक्राकृतिः । कीदृशः ? जलस्य जलकणस्य धवलामृतश्रेणिरिव हासो दीप्तिस्येति स तथा ॥ ३५ ॥**

**इह स्थान इति । अत्यर्थं सुखसदने इह स्थाने चेतिसि लीने सति परमगुरुसेवा-**

चन्द्रकोटिसमप्रख्यं तन्मध्येऽर्बुदयोजनम् ।
पद्ममध्ये समासीनमूर्ध्वगामिनमीश्वरम् ।
चन्द्रायुतप्रतीकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥
इन्धिका[ऐन्दवा]चैरावृतं च शूलपाणिं जटाधरम् ।
तस्योत्सङ्गगतामूर्ध्वगामिनीं परमां कलाम् ॥

ध्यायेदिति शेषः ॥ ३५ ॥

निरालम्बामिति तद्वक्ष्यमाणाम् । **टीकाकारधृततन्त्रे**—

त्यजेत् शैथिल्यमङ्गानां नासाग्रे रोपयेद् दृशौ ।
मुखं विवृणुयात् किञ्चिद् दन्तैर्दन्तान् न संस्पृशेत् ॥

**तदभ्यासाद् योगी पवनसुहृदां पश्यति कणान्**
**ततस्तन्मध्यान्तः प्रविलसितरूपानपि सदा ॥ ३६ ॥**

ऋजुकायशिरोग्रीवः काकचञ्चुपुटेन च ।
आकारेण वह्निर्वायुं जठरं परिपूरयेत् ॥
अङ्गुलीभिर्दृढं बद्ध्वा करणानि समाहितः ।
अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने ॥
नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामन्याभिर्वदनं दृढम् ।
बद्ध्वा मे प्राणमनसामेकत्वं तन्मनुं स्मरन् ॥
धारयेन्मारुतं सम्यग् योगोऽयं योगिवल्लभः ।

इति । एवं मुद्रया वायुरोधे मनसः स्थैर्यमाह श्रुतिः । एवं हंसवशान्मनो विचर्यते । इतस्ततो विषयेषु भ्रमति तत्संयमेन मनःसंयमो जायत इत्यर्थः । अथवा पुरं खेचरीमुद्रां बद्ध्वेत्यर्थः । तयापि मनःस्थैर्यं भवति । तदाह--

चित्तं चरति खे यस्माज् जिह्वा चरति खे यतः ।
तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता ॥ इति ॥

अत्र चित्तस्य खेचरत्वान्मनःसंयोगाभावेन विषयज्ञानरहितत्वादुन्मनी भवति । अत एवोक्तम्--

उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं विना ॥

इति । प्रणवस्य ज्योतिःस्फुलिङ्गवेष्टितत्वं स्पष्टमाहान्यत्र--

तदूर्ध्वे प्रणवाकारमात्मानं दीपसन्निभम् ।
स्फुलिङ्गज्योतिरिङ्गाभैर्वेष्टितं परितः शुभम् ॥

इति । स्थाने कीदृशे ? **सुसुखसदने** निरवच्छिन्नसुखस्य सदनं यत्र तादृशे । पुरं किम्भूताम् ? **निरालम्बां** निर्गतोऽवलम्बो मनसो विषयसम्बन्धो यया तादृशीमित्यर्थः । तथा **परमगुरुसेवासुविदितामिति । परमो** गुरु-परम्परा-प्राप्त-योगाभ्यास-निपुणस्तादृशो गुरुस्तस्य सेवाभिर्जातकृपयोपदेशेन सुविदितामिति फलितार्थः । अत एवोक्तम्--

**सुविदितां निरालम्बां मुद्रां बद्ध्वा सर्वदाभ्यासाद् योगी सन् पवनसुहृदां जीवबुद्धीनां कलां पश्यति । अस्य स्थानस्य चेतोलीनत्वम् । आश्चर्यं महः यदि भवति तदैव**

रसनामन्तरा कुर्यादङ्गे धारयेन्मनः ।
इयं सा परमा मुद्रा निरालम्बेति पञ्चमी ॥ इति ॥

इदं स्थाने एवं मुद्रा बद्ध्वा सदाभ्यासाद् धृतपवनात् पवनसुहृदां वह्नीनां कलाः पश्यति । तदनन्तरं तन्मध्यन्तःप्रविलसितरूपान् ज्वलद्दीपाकारान् पश्यति । पश्चात्

आज्ञाचक्रे परमशिवस्थिति-वर्णनम्

**ज्वलद्-दीपाकारं तदनु च नवीनार्कबहुल-**
**प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितम् ।**

गुरुपदेशात् तद् गम्यं नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥
इति । कणान् किम्भूतान् ? **प्रविलसितरूपान्** प्रकृष्टरूपेण भासमानानिति ॥ ३६ ॥

तादृशयोगिनां वह्निकणावान्तरप्रकारदर्शनमपि भवतीत्याह—**ज्वलद्दीपाकारमिति** । तदनु वह्निकणदर्शनमनु दर्शनानन्तरं ज्योतिः पश्यतीत्यर्थः । ज्योतिर्विशेषयति—ज्वलद्दीपेत्यादि । **गगनधरणीमध्यमिलितमिति** । गगनं "तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशमि"त्यनेन प्रदर्शितशङ्खिनीनाड्यूर्ध्व-शून्यरूप-गगनं धरणी मूलाधारस्थधरामण्डलं तदुभयोर्मध्यमिलितं, मूलाधारादिसहस्रारपर्यन्तव्याप्तं ज्योतिरिति विशिष्टार्थः । **वेति** वाशब्दः समुच्चयार्थः ।

आज्ञाचक्रे सहस्रारवत् परमशिवस्थितिमाह—इह स्थान इति । भगवान् परमशिवः इह **स्थाने साक्षाद भवति** स्वयं वर्त्तत इत्यर्थः । भगवन्तं विशेषयति—**पूर्णविभव** इत्यादि । पूर्णः स्वात्मनि परिपूर्णः **सृष्टिकर्त्तृत्वाद्यशेषयोग्यतारूप-विभवो** यस्येत्यर्थः ।

अथवा—विभवोऽनन्तसृष्टिप्रपञ्चसमुदायः, पूर्णः सर्वव्यापकत्वेन स्थितस्तादृशो विभवो यस्मादित्यर्थः । "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ती"ति श्रुतेः । यद्वा—विभवो विभुत्वं, पूर्णः सर्वव्यापकत्वेन स्थितस्तादृशो विभवो यस्येत्यर्थः । यद्वा—पूर्णत्वं फलानुपहितविषयितानास्पदेच्छाकत्वं, तादृशो विभवो यस्येति निगूढम् । आत्मातिरिक्त-वस्तूनामनित्यत्वादाकाशादीनां विभुत्वं न सर्वकालव्यापकमिति विशेषः ।

**निरालम्बा मुद्रा भवति । तदनुभवो योगिभिरेव ज्ञायते । ततस्तन्मध्येऽम्बरे पदान् स्थूलान् रूपान् पश्यति ॥ ३६ ॥**

**ज्वलद्दीपाकारानिति । पदान् रूपान् किम्भूतान ? ज्वलद्दीपस्येवाकारो येषां ते तथा । तत्रैव गगनधरणीबीजयोर्मध्ये स्थितं ज्योतिरास्ते । गगनधरणीमण्डलयोरन्तः-**

नवीनसूर्यप्रकाशाकारं गगनभूमध्यमिलितं पश्यति । इह स्थाने भगवान् साक्षात्कारविषयो भवति ॥ ३६ ॥

ननु सर्वव्यापित्वादपरिच्छिन्नस्य ईश्वरस्य कथं परिच्छित्तिस्थाने अभिव्यक्ति-

**इह स्थाने साक्षाद् भवति भगवान् पूर्णविभवो-**
**ऽव्ययः साक्षी वह्नेः शशिमिहिरयोर्मण्डल इव ॥ ३७ ॥**

अत्र परमशिवस्थितिं विशेषेण व्यनक्ति **निर्वाणतन्त्रे**—

एतत्पद्मस्योर्ध्वदेशे ज्ञानपद्मं सुदुर्लभम् ।
पत्रद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मण्डलम् ॥
तथा—शम्भुबीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम् ।
तथा—एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोडे परः शिवः ॥
वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी ।

इति । "तस्य क्रोडे" इत्यस्य बिन्दुद्वयरूप-विसर्गमध्ये । तदाह सहस्रार-मुपक्रम्य—

बिन्दुद्वयं तु तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम् ।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः ॥

इति । एवं सहस्रारे दर्शनादत्राप्याकाङ्क्षायां तथेति । अत्रानयोः शिव-शक्त्योर्मायाबन्धनाच्छादनेन मकारात्मरूप-परंबिन्दुरूपेण स्थितिर्बोध्या । तदुक्तमाज्ञाचक्रमुपक्रम्य—

उत्कलादिमतेऽत्रैव चणकाकाररूपिणी ।
सृष्टिं करोति भूतानि अत्र स्थित्वा सनातनी ॥

इति । अत्र चणकाकाररूपः परमशिवः सदा वर्त्तते । उत्कलादिमते तु—अत्र स्थित्वा सृष्टिं करोतीत्यर्थः ।

दृष्टान्तमाह—वह्नेरित्यादि । यथाऽर्केन्द्वग्निमण्डले भगवान् वर्त्तते तथाऽत्रापीत्यर्थः । अर्कादिमण्डले भगवतोऽवस्थानं प्रसिद्धम् । यद्वा—वह्नि-शशि-मिहिर-मण्डले सहस्रकमलस्थार्केन्द्वग्निमण्डले तथा चणकाकारेण भगवान् वर्त्तते तद्वदत्रापीति । सहस्रदलेऽर्केन्द्वग्निमण्डलानि प्रदर्शयिष्यन्ते । अत एव पीठपूजायामर्केन्द्वग्निमण्डलोपरि परमात्मज्ञानात्मनोः पूजा विधीयते । परमात्मा परमशिवो ज्ञानात्मा ज्ञानशक्तिस्तदुभयाभिन्नशिवशक्त्यात्मकश्चणकाकारबिन्दुरिति ध्येयम् ॥ ३७ ॥

**स्थितं तद्बीजमिति यावत । ज्योतिः कीदृशम् ? प्रातःकालीनसूर्यस्येव प्रकाशो यस्य तत् तथा । इह स्थाने अर्थाच्चेतसि लीने श्रीभगवान् साक्षाद भवति । कीदृशः ? पूर्णो विभवो ज्ञानं यस्मात् । न व्ययतीत्यव्ययः । अतः सर्वेषां साक्षी, एतेषां तत्स्थाना-धिवासभूतत्वात् । वह्नि शशि-मिहिरणां मण्डलमिव प्रकासते, अत्यर्थतेजोमयत्वात् ॥ ३७॥**

रित्यत आह—राहुरिति । यथा अम्बरगतो राहुर्न दृश्यते किन्तु शशिसूर्ययोर्मण्डलमेव दृश्यते तथायं चिदात्मा एवम्भूतकर्मविशेषकरणादत्रैव साक्षाद् भवति ॥ ३७ ॥

आज्ञाचक्रे योगेन प्राणत्यागफलम्

इह स्थाने विष्णोरतुल-परमामोद-मधुरे
समारोप्यं प्राणं प्रमुदितमनाः प्राणनिधने ।

आज्ञाचक्रे योगेन प्राणत्यागफलमाह—इह स्थान इति । अस्यार्थः—**योगीन्द्रो** जनः **प्राणनिधने** प्राणवियोगकाले **प्रमुदितमना** आत्मानन्देन हृष्टचित्तः सन् इह आज्ञाचक्रे विष्णोर्भगवतः **स्थाने** उपदर्शित-बिन्दुरूपे **प्राणं समारोप्य** अथवा तद्बिन्दौ प्राणं समारोप्य प्राणनिधने सति परं पुरुषं प्रविशतीत्यन्वितार्थः । पुरुषं विशेषयति—नित्यमविनाशिनम् । देवं सृष्टि-स्थितिप्रलयैः क्रीडन्तम् । **अजं** जन्मरहितम् । **त्रिजगतामाद्यम्** । अनेन सर्वेषां पूर्ववर्त्तित्वात् सर्वकारणत्वं सूचितम् । **पुराणं** पुराणपुरुष इति कृत्वा यो निगद्यते स एवायमिति भावः । **वेदान्तविदितमिति** । वेदान्तो ब्रह्मनिरूपक-श्रुतिवाक्यादिस्तज्ज्ञानज्ञाप्यमित्यर्थः ।

**तदयं विष्णोः स्थाने प्राणारोपणप्रकारः** । प्राणवियोगकालं ज्ञात्वा ब्रह्मणि लीनो भवामीत्यानन्दितमना योगासनमासीनः सन् कुम्भकेन वायुं संरुध्य हृदिस्थं जीवात्मानं मूलाधारमानीय गुदमाकुञ्च्य यथोक्तविधानेन कुण्डलिनीमुत्थाप्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तडिदाकारमानन्दं कुण्डलिनीमयं सूत्ररूपं नादं ध्यात्वा प्राणरूपश्वासं परमात्मकहंसं तन्नादे विलाप्य जीवेन सह चक्रभेदक्रमेणाऽऽज्ञाचक्रमानीय तत्र स्थितायां कुण्डलिन्यां स्थूलसूक्ष्म-क्रमात् पृथिव्यादिप्रपञ्चसमुदायं विलाप्य तां पुनर्जीवात्मना सह तत्र स्थितशिवशक्तिमय-बिन्दुनैकीभावमापाद्य तिष्ठेत; ततो ब्रह्मरन्ध्रभेदेन देहं त्यक्त्वा ब्रह्मणि लीनो भवेदिति ।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः** । आज्ञाचक्रं द्विदलं शुक्लवर्णं कर्बूरवर्ण-हक्ष-द्वययुक्तपत्रम् । कर्णिकायां चक्राधिष्ठात्री हाकिनी शक्तिः शुक्लवर्णा

**इह स्थान इति । विष्णोरतुलपरमामोदमधुरे इह स्थाने योगी प्राणवियोगसमायोग-समये प्राणान् मनश्च समारोप्य प्रकृष्टमुदितमनाः सन् परं पुरुषमेव प्रविशति । निर्वाणमुक्तिं प्राप्नोतीति शेषः । कीदृशं परम् ? सर्वेषामन्तर्भूतम् । नित्यम् । दीव्य-**

प्राणनिधने मरणकाले इह स्थाने प्राणान् वायूनूर्ध्वगामिन्या नाड्या समारोप्य वेदान्तविदितं "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"ति श्रुतिविदितं परं नित्यं देवमित्यादिविशेषितं पुरुषं प्रविशति । तथा **गीतायामपि**—प्रयाणकाले मनसाचालेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

**परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां**
**पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम् ॥ ३८ ॥**

आज्ञाचक्रोर्ध्वे महानाद-दर्शनफलम्

**लयस्थानं वायोस्तदुपरि च महानादरूपं शिवार्द्धं**
**सिराकारं शान्तं वरदमभयं शुद्धबुद्धि-प्रकाशम् ।**

रक्तषड्वक्त्रा त्रिनेत्रा षड्भुजा वराभयाक्षमाला-कपाल-डमरु-पुस्तक-धरा शुक्लपद्मोपरि स्थिता । तदूर्ध्वे त्रिकोणे इतरलिङ्गः शुक्लवर्णो विद्युदाकारः । तदूर्ध्वत्रिकोणे प्रणवाकृतिरन्तरात्मा प्रदीपाभज्योतिः । तस्य चतुर्दिक्ष्वन्तरिक्षे ज्योतिःस्फुलिङ्गबिम्बैर्वेष्टितो ज्वलद्दीपसदृशेन स्वतेजसा मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तप्रकाशकः । तदूर्ध्वे सूक्ष्मरूपं मनः । तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डले हंसक्रोडे परमशिवः सशक्तिक इति ।। इति षष्ठप्रकरणम् ।। ३८ ।।

इदानीमाज्ञाचक्रोर्ध्वे सहस्रदलकमलाधःस्थानवर्त्ति-कारणावान्तरशरीरं निरूपयितुमिच्छन्नाह--**लयस्थानं वायोरिति** । अस्यार्थः--यदा यस्मिन् काले योगी जनो **गुरुचरणयुगाम्भोजसेवासुशीलो** गुरुचरणयुगाम्भोजस्य सेवया सुशोभनं दृढतरैकाग्रमनोऽभिनिवेशेन सर्वाङ्गसुन्दरं शीलं योगानुष्ठानरूपसद्वृत्तं यस्य तादृशः सन् **तदुपरि** आज्ञाचक्रोर्ध्वे **महानादरूपं** महानादस्य स्वरूपं **पश्येत्**, तदा तस्य योगिनः करकमल-तले सदा सर्वस्मिन् काले वाचां सिद्धिः वाक्यसिद्धिर्भूयादेवेत्यन्वितार्थः । नादं विशेषयति--**लयस्थानं वायोरिति** । अत्र महानादे वायोर्लयः, यस्मादुत्पत्तिस्तत्र लयनियमात् ।

तीति देवम् । न जायते इत्यजम् । त्रिजगतामाद्यम् । पुराणं सृष्टिस्थितिप्रलयकारणम् । वेदान्तविहितं वेदान्तमतमेतदिति ।। ३८ ।।

लयस्थानमिति । एतत् स्थानं वायोर्विरामभूतम् । तदुपरि महानादरूपं योगी

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।। इति ।। ३८ ।।

लयस्थानं वायोरिति । तदुपरि पूर्वोक्तनादोपरि । चकारात् नादस्यापि लयस्थानम् । यत्र वायुर्नादश्च अथैनं जगदधरीकृत्य ब्रह्मरन्ध्रस्यादिस्थाने प्रलीयते तद् वायोर्नादस्यापि लयस्थानं नादान्तमिति यावत् । अत्र अर्द्धनारीश्वरोऽस्तीत्याह--महानन्दमित्यादिना । महान् आनन्दो यत्र तं महानन्दस्वरूपम् । शिवार्द्धं शिवाया अर्द्धं शिवस्याकारम् अर्द्धनारीश्वरमित्यर्थः ।

**यदा योगी पश्येद् गुरु-चरणयुगाम्भोज-सेवासुसील-**
**स्तदा वाचां सिद्धिः करकमलतले तस्य भूयात् सदैव ॥ ३६ ॥**

यद्यपि भूतशुद्धयादौ स्पर्शतत्त्वे वायोर्लयस्तस्य च व्योम्नि लयो दृश्यते तथापि कदाचिन् नादेऽपि वायोर्लयो भवतीति । अत्र--

"पृथिवीकाराद्रसवती रसादजायत ककारात् सर्वाणि जलानि तीर्थानि रेफाद् वह्नितत्त्वं नादाद् वायुः सर्वप्राणमयः, बिन्दोर्गगनं सर्वशून्यं शब्दमयं, तेभ्यः पञ्चविंशतिगुणमयतत्त्वं सर्वमिदं विश्वं ब्रह्मकाण्डं कालिकामयमि"ति--

श्रुतिवाक्येन कालीमन्त्रवर्णस्य सूक्ष्मे संहरणकाले नादे वायोर्लयो भवतीति ध्येयम् ।

**शिवाद्र्धमिति** । शिवस्याऽर्द्धनारीश्वरत्वात् तदर्द्धं शक्तिस्तद्रूपं नादमित्यर्थः । **सिराकारमिति** । दन्यादि-सिरो लाङ्गलं तदाकारमित्यर्थः ।

तदूर्ध्वे तु महानादो लाङ्गलाकृततिरुज्ज्वलः ।

इति **कार्त्तिकेयेश्वरसंवादवाक्यात्** । यद्यपि "कृषिको लाङ्गलं हलं गोदारणञ्च सीरश्चे"त्यमरकोषे लाङ्गलवाचक-सीरशब्दस्य चतुर्थस्वरयोगित्व, तथाप्यत्र वचनान्तरैकवाक्यतानुरोधेन तृतीयस्वरयुक्त-सिरःपदेनापि लाङ्गलं प्रतीयते इति । अथवा--शिवाकारमिति । तेन शिवशक्तिमयोऽयं नादः । तदुक्तं **प्रयोगसारे--**

नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी ।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता ॥ इति ।

अत एव "तस्या एव शक्तेर्नादबिन्दू सृष्ट्युपयोगावस्थरूपा"विति राघवभट्टनाप्युक्तम् ।

अन्यत्र--सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्र-ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ॥

इति । तथा श्रीमदाचार्यवाक्यम्--'नाद एव घनीभूतः क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्" इति । अत्र सकलवचनपर्यालोचनया शक्तिरेव नादबिन्दुरूपेणा-

जनो यदा पश्येत्, तदा तस्य वाक्सिद्धिरपि करपद्मतले सदैव भूयात् । कीदृशम् ?

तथा च श्रीक्रमे--चेतसा संप्रपश्यन्ति नादान्ते वृषभध्वजम् ।
तमर्द्धदेहं वरदं कारणत्रयमातरम् ।
पुटद्वयविनिष्क्रान्तो वायुर्यत्र प्रलीयते ॥

ऽविर्भूता सुवर्णकूण्डलमिव । नादबिन्दुः पुनरेकाकारैवेति निष्कर्षः । अभयवरदमभयवरदातारमित्यर्थः ।

अथ समाधिरूपयोगानुशीलनसाधकानां—

समाधिकालात् प्रागेवं विचिन्त्याऽतिप्रयत्नतः ।
स्थूलसूक्ष्मक्रमात् सर्वं चिदात्मनि विलापयेत् ।।

इत्यार्यवचनेन समाधेः पूर्वं स्थूलसूक्ष्मरूप-सृष्टिप्रपञ्चसमुदाय-चिन्तन-विधानात् तज्ज्ञानस्यावश्यकत्वादत्र वदन्ति । तत्र तावत् पृथिव्यादि-पञ्च-स्थूलरूपाणि मूलादिविशुद्धान्तचक्रे उक्तानि । तदाश्रितत्वात् मूलाधारे भूमण्डले पाद-घ्राणेन्द्रिय-गन्धतत्त्वेति त्रिः । जलमण्डले पाणि-रसनेन्द्रिय-रसतत्त्वेति त्रिः । वह्निमण्डले पायु-चक्षुरिन्द्रिय-रूपतत्त्वेति त्रिः । वायु-मण्डले उपस्थ-त्वगिन्द्रिय-स्पर्शतत्त्वेति त्रिः । नभोमण्डले वाक्-श्रोत्रेन्द्रिय-शब्दतत्त्वेति त्रिरिति समुदायेन पञ्चदशतत्त्वानि वर्त्तन्ते । पृथिव्यादिना मिलित्वा विंशतितत्त्वानि स्थूलानि बोद्धव्यानि । इदानीं सूक्ष्मरूपाणि विधीयन्ते । तत्राज्ञाचक्रे सूक्ष्मरूपं मनः स्वयं प्रदर्शितम् । अपराण्याह कङ्कालमालिनीतन्त्रे आज्ञाचक्रमुपक्रम्य—

मनश्चात्र सदा भाति हाकिनीशक्तिरञ्जितम् ।
बुद्धिप्रकृत्यहङ्कारालङ्कृतं तैजसं परम् ।।

इति । अत्र बुद्धिप्रकृत्यहङ्कारात्मक-सूक्ष्मरूपत्रयाणां स्थितिः प्रतीयते । तत्राहङ्कारस्य न पाठक्रमात् स्थितिः । मूलाधारादिषु सर्वत्र पृथिव्यादि-जनकस्य तत्तद्विलयाधारस्य च जन्यविलाप्ययोरधःस्थितिदर्शनात् पाठक्रमा-च्छाब्दक्रमस्य बलत्त्वाच्च अत्रापि तथा स्थितिः कल्प्यते । तेन "अहङ्कारे हरेद् व्योम सशब्दं तन्महत्यपी"ति वचनाद् व्योम्नो विलयार्थं तद्विलया-धिकरणस्याऽहङ्कारस्य प्रथमोपस्थितत्वादादावहङ्कारस्तदूर्ध्वे बुद्धि-प्रकृत्योः स्थितिः । एतेषां जन्यजनकभावमाह **शारदायाम्** —

मूलभूतात् ततोऽव्यक्ताद् विकृतात् परवस्तुनः ।
आसीत् किल महत्तत्त्वं गुणान्तःकरणात्मकम् ।।

शिवो हकारस्तदाकारणम । शिवदेव्योरर्द्धमङ्गस्वरूपं यस्य, हरगौर्यात्मकत्वात् ।

स्वच्छन्दसंग्रहेऽपि—हलाकारस्तु नादान्तो[न्ते] भित्त्वा सर्वमिदं जगत् ।
अधःशक्त्या विनिर्भेद्य ऊर्ध्वशक्त्यवसानकः ।।
नाड्यां ब्रह्मविले लीनस्त्वव्यक्तो ध्वनिलक्षणः ।
अतो ब्रह्मविलं ज्ञेयं रुद्रकोट्यर्बुदैर्युतम् ।।

अभूत् तस्माहङ्कारस्त्रीविधः सृष्टिभेदतः ॥

इति । 'विकृतादि'ति । इदं परवस्तुनः प्रतिबिम्बत्वेन विकृतिरूपं, महत्तत्त्वादीनां प्रकृतित्वात् प्रकृतिनामकञ्च । अत एवोक्तम्--

प्रकृतिः परमाः शक्तिर्विकृतिः प्रतिबिम्बता ॥ इति ॥

तथा "परंब्रह्मात्मप्रकृतिः प्रतिबिम्बस्वरूपिणी"ति प्रागुपदर्शितम् । शारदावचने 'महत्तत्त्वमि'ति । यदेव महत्तत्त्वं सैव बुद्धिः । तदाह **ईशानशिवेन**--

बोद्धव्यलक्षणा सैव प्रकृतिः शक्तिजृम्भिता ।
बुद्धितत्त्वं भवेद् व्यक्तं सात्त्विकं गुणमाश्रिता ॥
सैव बुद्धिर्महन्नाम तत्त्वं सांख्यैः प्रगीयते ।

इति । महत्तत्त्वन्तु गुणान्तःकरणात्मकम् । गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपाः । अन्तःकरणमाह **शारदायाम्** "अन्तःकरणमात्मनः । मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तञ्च परिकीर्त्तितम् ।" इति एतत्समुदायत्मकं महत्त्वम् । ननु मनसो महत्तत्त्वान्तर्गतत्वे "तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् प्रविलसति मनः सूक्ष्मरूपमि"त्यनेन पृथगभिधानं कथं सङ्गच्छत इति चेत् । न । तन्मनो न महत्तत्त्वान्तर्गतं किन्तु तदहङ्कारजन्यमतिरिक्तम् । तदाह—

"यच्चापरं मनस्तत्त्वं ससङ्कल्पविकल्पकम् ।
तैजसादेव तज्जातम्......................॥"

इति **राघवभट्टः** । एवञ्चाज्ञाचक्रस्थमनःपर्यन्तानां क्रमेण स्थितेर्विहितत्वात् तदूर्ध्वेऽहङ्कारादीनां स्थितिर्बोध्या । ततश्चाज्ञाचक्रे हाकिनीतरलिङ्ग-प्रणव-मनोऽहङ्कार-बुद्धि-प्रकृतीनामव्यवहितोर्ध्वोर्ध्वक्रमेण स्थितिनिरूपणात् स्थानविशेषानभिहितस्य पूर्वदर्शितचन्द्रमण्डलस्य तेषामूर्ध्वे स्थितिरिति । ननु तेषामधः कथं न स्थीयते इति चेत् । न । "इन्दुर्ललाटदेशे च तदूर्ध्वे बोधिनी स्वयमि"ति सम्मोहनतन्त्रवचनेन वक्ष्यमाणाज्ञाचक्रोर्ध्ववर्त्तिन्योः समनियतयोरिन्दु-बोधिन्योरधोभागे स्थितिबोधनात् तयोरव्यवधानाय सर्वोर्ध्वे एव तस्य स्थितिरिति । अथाज्ञाचक्रोर्ध्वे कारणरूपमाह **सम्मोहनतन्त्रे** –

इन्दुर्ललाटदेशे च तदूर्ध्वे बोधिनी स्वयम् ।
तदूर्ध्वे भाति नादोऽसावर्द्धचन्द्राकृतिः परः ॥

**शान्तं सौम्यमूर्त्तिम् । वरान् ददाति अभयमपि । शुद्धबुद्धीनां प्रकाशो**

तत्र ब्रह्मशिवो ज्ञेयः शशाङ्कशतसन्निभः ।
दशबाहुस्त्रिनेत्रश्च पञ्चवक्त्रेन्दुशेखरः ॥

तदूर्ध्वे च महानादो लाङ्गलाकृतिरुज्ज्वलः ।
तदूर्ध्वे च कला प्रोक्ता आञ्जीति योगिवल्लभा ।
उन्मनी तु तदूर्ध्वे च यद् गत्वा न निवर्त्तते ॥

इति । 'तदूर्ध्वे बाधिनी'त्यत्र तदूर्ध्वे ललाटोर्ध्वे, आज्ञाचक्रोर्ध्वे इति यावत् । बोधिन्यधःस्थले बिन्दुस्थितिमाह **भूतशुद्धितन्त्रे**--

बिन्दुर्मात्रार्द्धतो देवि तदूर्ध्वे नादसंज्ञितम् ।
लयस्थानं तथा वायोर्महानादं तदूर्ध्वतः ॥ इति ॥

'मात्रार्द्धा' शक्तिः, बालसूर्यप्रतिकाशमासीद् बिन्दुमदक्षरम् ।
तदूर्ध्वे चार्द्धमात्रा तु गान्धाररागमनाश्रिता ॥

इति **बृहत्त्रिविक्रमसंहिता**वचनेनाऽर्द्धमात्रायाः शक्तिवाचकत्वप्रतीतेः । अत्र द्वयोर्वचनयोरेकवाक्यतया याऽर्द्धमात्रा सैव बोधिनीति बोध्यम् । बिन्दु-बोधिनी-नादेति त्रयं बिन्दुमयपरशक्तेः रूपविशेषः । तदाह **शारदायाम्**—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नानाद् बिन्दुसमुद्भवः ॥
परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः ।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ॥
बिन्दुर्नादात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ॥

इति । 'परशक्तिमयः' परः शिवस्तेन शिवशक्तिमयो बिन्दुः । अयं ललाटोर्ध्वे स्थितिः । 'बिन्दुर्नादात्मकः' शिवात्मकः । 'बीजं शक्ति'र्बोधिनीरूपमित्यर्थः । नादस्तयोः समवायः सम्बन्धः क्षोभ्यक्षोभकरूपस्तेनाऽयं क्रियाशक्तिरूपः । एतत्त्रयोर्ध्वे महानादः पूर्वोपदर्शितः । 'तदूर्ध्वे च कला प्रोक्ता' इति । कला शक्तिः । आञ्जीति तिर्यग्-रेखारूपमात्राकारेत्यर्थः । इयं शक्तिः **सृष्ट्या-दावाविर्भूता** । तदुक्तं **पञ्चरात्रे**—

यस्मात् । योगी कीदृशः ? **गुरुचरणसेवासुशील** इति । **गुरुचरणस्यैतदुपदेश**

ब्रह्माणी त्वं परा शक्तिः ब्रह्मणोत्सङ्गगामिना ।
द्वारं सा मोक्षमार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता ॥ इति ॥

एवमालोक्य सर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
समस्ततत्त्वसंघातां सृष्टयधिष्ठातृरूपिणीम् ।
व्यक्तां करोति नित्यां तां प्रकृतिं परमः पुमान् ।। इति ।।

अन्यत्र—शिवशक्तिसमायोगादव्यक्तात् परमेश्वरात् ।
आद्या भगवती देवी सैव त्रिपुरसुन्दरी ।।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद बिन्दुसमुद्भवः ।

इति । 'उन्मनी तु तदूर्ध्वे चे'ति । तल्लक्षणमाह—

यत्र गत्वा तु मनसो मनस्त्वं नैव विद्यते ।
उन्मनी सा समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।

इति । ततश्च मनोवृत्तिमद्विषयावलम्बनचेष्टाकालीनविषयावलम्बनसामान्याभावसम्पादकत्वमुन्मनीत्वमिति । सा च द्विविधा सहस्राराधारा निर्वाणकलारूपा, एतत्स्थानस्थिता वर्णावलीरूपा च । तथा च **कङ्कालमालिनीतन्त्रे**—

सहस्रारकर्णिकायां चन्द्रमण्डलमध्यगा ।
सर्वसङ्कल्परहिता कला सप्तदशी भवेत् ।
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाशनिकृन्तनी ।। इति ।।

तथा—उन्मनीञ्च मालावर्णं स्मरणान् मोक्षदायिनी ।।

इति 'मालावर्णं' वर्णावलीरूपमित्यर्थः । उन्मन्यधः समनीमाह **भूतशुद्धौ**—

ततो हि व्यापिका शक्तिराञ्जीति यां विदुर्जनाः ।
समनीमूर्ध्वतस्तस्या उन्मनीं तु तदूर्ध्वतः ।।

इति । इदमपि परशक्तेरवान्तररूपम् । ततश्चाज्ञाचक्रोर्ध्वे द्वितीयबिन्दुः शिवस्वरूपः । तदूर्ध्वे अर्द्धमात्राकारा बोधिनीशक्तिस्तदूर्ध्वे शिवशक्तिसमवायरूपाऽर्द्धचन्द्राकृतिर्नादस्तदूर्ध्वे लाङ्गलाकृतिर्महानादस्तदूर्ध्वे आञ्जीरूपा व्यापिका शक्तिस्तदूर्ध्वे समनी तदूर्ध्वे उन्मनीति क्रमेण सप्त कारणरूपाणि वर्त्तन्ते । अलमतिविस्तरेण प्रकृतमनुसरामः ।। ३९ ।।

**इत्यर्थः ।। ३९ ।।**

हलाकारो लाङ्गलसदृशः । 'देवीस्थानं सहस्रारं प्रविशेदकुलं प्रिये ।' इति **श्रीक्रमात्** ।। ३९ ।।

सहस्रारपद्मस्वरूपम्

**तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशं**
**विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम् ।**

सहस्रदलपद्मं निरूपयन्नाह—**तदूर्ध्वं** इति दशभिः । **तदूर्ध्वं** प्रागुपदर्शित-सवषामूर्ध्वे । पूर्वोपदर्शित-शङ्खिनीनाड्याः **शिखरे** मस्तके । शून्यदेशे नाड्य-नावृतस्थाने । तेन सुषुम्णाया अप्यूर्ध्वं इति सूचितम् । **विसर्गस्याधः** दशशत-दलं सहस्रदलं पद्मं **निवसतीत्यन्वयः** । विसर्गन्तु ब्रह्मरन्ध्रस्योर्ध्वभागे—

तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गञ्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।

इत्यादि-वक्ष्यमाणवचनाद् । पद्मं विशेषयति—**पूर्णचन्द्रेत्यादि** । **ल-काराद्यवर्णैः प्रविलसितवपुरिति** । अत्र ल-कारग्रहणं न विलोमेन वर्णचिन्तनार्थं, किन्तु ( ल-कारग्रहणं ) क्ष-कारपरित्यागार्थम् । तत्त्यागबीजं हि वर्णानां सहस्रदले स्थितिरावर्त्तनेनैव घटते । एवञ्च क्ष-कारसहितैकपञ्चाशद्-वर्णानां विंशत्यावर्त्तनेन विंशत्यधिक-सहस्रसंख्या भवन्ति । ऊनविंशत्या-वर्त्तनेन त्वेकत्रिंशन्न्यूनसहस्रसंख्या भवन्ति । अतः क्षकारपरित्यागेन तत् समाधीयते । तेन अ-कारादि-ल-कारान्त-पञ्चाशद्वर्णा अनुलोमेन विंशत्या-वर्त्तनेन सहस्रदले चिन्तनीया इति ध्येयम् । अनुलोमेन वर्णचिन्तनं व्यक्त-माह **कङ्कालमालिनीतन्त्रे**—

**तदूर्ध्व इति । तस्य महानादस्योर्ध्वे शङ्खिन्याश्च शिखरसमदेशे शून्यदेशे निरालम्बे विसर्गस्याधः प्रकाशरूपं सहस्रदलपद्मं निवसति । अत्यर्थपूर्णचन्द्र इव शुभ्रम् । अधो-**

अकुलाख्यसहस्रारपद्ममाह – तदूर्ध्वे इत्यादिना । शङ्खिन्या नाड्याः शिखरे अग्रे शून्यदेशे चित्रिण्या मेरुदण्डस्य च शून्यदेशे । तेन सहस्रारं न मेरुदण्डस्य मध्ये न वा चित्रिण्या ग्रथितम् । **मायातन्त्रेऽपि**—

मूलादिषट्सरोजातं चित्रिणाग्रथितं प्रिये ।
लिङ्गाधोर्ध्वनाभिवक्षःकण्ठभ्रूमध्यदेशजम् ॥ इति ॥

अत एव **स्वच्छन्दसंग्रहे**—

द्वादशावर्णं ललाटोर्ध्वं रूपेणार्द्धावसानकम् ।
द्व्यङ्गुलोर्ध्वशिरोदेशं परं व्योम प्रकीर्त्तितम् ॥ इति ॥

**श्रीक्रमे**—आसव्यकर्णाद् देवेशि शङ्खिनी च शिरोपरि ।

हलाद्यनन्तरम् —शङ्खिनीनालं संप्राप्य चास्थिशून्यं बिभर्त्ति यः ।
अमृतं यत् त्रिकूटस्थं परमानन्दलक्षणम् ॥
सहस्रारं महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम् ।
द्रुतहेमाम्बुजं जातधारपातप्रवर्षणम् ? ॥
विसर्गाधः पद्ममिति सर्गः शक्तिर्निशाकरः ॥

**अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकला-कान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं**
**लकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसित-वपुः केवलानन्द-रूपम् ॥ ४० ॥**

सहस्रारं महापद्मं शुक्लवर्णमधोमुखम् ।
अ-कारादि-क्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णैर्विराजितम् ॥

इति । अत्र 'क्ष-कारान्तै'रित्यत्राऽन्तशब्दस्याऽवसानार्थकत्वात् क्ष-कारोऽन्तेऽवसाने यस्येति बहुव्रीहिणा क्ष-कारं विहाय ल-कारान्त-पञ्चाशद्वर्णयोगः । अथवा—ल-काराद्यैरिति लकारान्त-पञ्चाशद्-वर्णानामकथादित्रिरेखावद् वामावर्त्तेन यथायोग्यावर्त्तनेन विन्यासः । **कङ्कालमालिनी**वचनन्तु दक्षिणावर्त्तेन वर्णविन्यासविधायकमिति वचनद्वयाविरोधः । अत्र पञ्चाशद्-वर्णानां रूपविशेषानभिधानात् तद्वर्णमय्या मातृकायाः शुक्लवर्णत्वदर्शनात् तेऽप्यत्र शुक्लत्वेनैव चिन्तनीया इति ध्येयम् । ललाटाद्यैर्वर्णैरिति पाठे तु ललाटशब्देन मातृकान्यासोक्त-ललाटवर्णोऽकारस्तदाद्यैर्वर्णैरित्यर्थः । एतत्पक्षे लकारं विहाय अकारादिक्षकारन्त-पञ्चाशद्वर्णयोगो बोध्यः; सर्वत्र पञ्चाशद्वर्णग्रहणे अन्त्यलकारत्यागदर्शनात् ।

अत्र केचित् **प्रविलसिततनुरिति** पठन्ति । तत्र "वा पुंसि पद्ममि"ति दर्शनात् पुंसि विशिष्टस्य पद्ममित्यस्य विशेषणता तनुरित्यस्यापि पुंस्त्वमिति व्याख्यायन्ति च । तन्न । एतच्श्लोकस्थ-निवसति-क्रियायाः कर्त्तृत्वेन पद्ममिति बिन्द्वन्तनिर्देशात् क्लीबलिङ्गप्रयोग एव प्रतीयते, न तु पुंलिङ्गप्रयोगस्तथात्वे विसर्गान्तो भवितुमर्हति; अतस्तद्विशेषणस्य तनुशब्दस्य क्लीबत्वमवश्यं वाच्यम् । तथात्वे बिन्द्वन्तता न भवति, निर्बिन्दुत्वे छन्दःपातस्तस्माद् वपुरित्येव पाठः । स्पष्टमन्यत् ॥ ४० ॥

**वक्त्रम् । कान्तम् । तरुणरविकला इव कान्तं किञ्जल्कपुञ्जं यस्य । ललाटाद्यै**र्ललाटादिविन्यस्तैरकारादिपञ्चाशद्वर्णैर्विंशतिप्राकारेण परिलसिततनुः केवलानन्दस्वरूपमिति ॥ ४० ॥

इति नारदोक्तेन विसर्गस्याधः सहस्रारपद्मधारिण्या ऊर्ध्वस्थितायाः शक्तेरधः पद्मम् ।
निर्वाणपद्धत्यामपि—कुलरूपं भवेच्छक्तिः विसर्गमण्डलं प्रिये ।
सहस्रारं महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम् ॥ इति ॥

**सारसमुच्चयेऽपि** "सहस्रारपद्मं विसर्गादधस्तात्" इति पूर्णपूर्णेन्दुशुभ्रं पूर्णं पीयूषपूर्णं तच्च पूर्णेन्दुशुभ्रञ्चेति तत् । बालसूर्यरश्मिसमः केसरसमूहो यस्य तत् । पद्मन्तु शुक्लवर्णम् ।

यथा **मायातन्त्रे**—महाशून्ये सहस्रारं निशाकरसहोदरम् ।
अधोवक्त्रं कर्णिकायाश्चन्द्रोर्ध्वे शक्तिरूपिणी ॥ इति ॥

ललाटाद्यैरकाराद्यैः समस्तमातृकाक्षरैर्युक्तम् ॥ ४० ॥

सहस्रदलकर्णिकास्थ-चन्द्रमण्डल-स्वरूपम्

**समास्ते तस्यान्तः शशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः**
**स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी ।**

सहस्रदलकमलकर्णिकायां चन्द्रमण्डलस्थितिमाह—**समास्त** इति । **तस्यान्तस्तत्र** पद्मे अन्तर्मध्ये शुद्धो निर्मलोदयविशिष्टः । चन्द्रं विशेषयति—स्फुरदित्यादि । **परमरसचय-स्निग्धसन्तानहासीति** । **स्निग्धः** आर्द्रसदृशभावस्तस्य सन्तानो विस्तारो यत्रेत्यर्थः । ततश्च परमामृतरसचयेनोत्तापहीनतया स्निग्ध-सन्तानयुक्तो हासवदानन्दमयकिरणविशिष्ट इत्यर्थः । अथ चन्द्रमण्डलस्याध ऊर्ध्वे अन्तरात्मादीनां स्थितिमाह **कङ्कालमालिनीतन्त्रे** सहस्रारमुपक्रम्य—

तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ।
सूर्यस्य मण्डलं चैव चन्द्रमण्डलमेव च ॥
ततो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ।
तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गञ्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ॥
तदूर्ध्वे शङ्खिनी देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।

इति । **यस्यान्तश्चन्द्रमण्डलमध्ये सततं** निरन्तरं **विद्युदाकाररूपं त्रिकोणं स्फुरतीति । तदन्तःशून्यमिति ।** अन्तर्मध्ये शून्यं यस्य तदन्तःशून्यं परंबिन्दुशरीरं, तस्मिन् त्रिकोणे अन्तःशून्यं तदन्तःशून्यं त्रिकोणमध्यवर्त्ति परंबिन्दु-

**समास्त इति । तस्य पद्मस्याऽन्तर्मध्ये शशरहितोऽत्यर्थदीप्तिमान् सम्पूर्णचन्द्रः समास्ते । कीदृशः ? स्फुरन्ति ज्योत्स्नाजालानि यस्य स तथा । परमरसचयेन शिवसम्बन्धाय परमामृतसमूहेन अत्यर्थस्निग्धहासो दीप्तिर्यस्य । तस्य चन्द्रस्य मध्ये त्रिकोणं**

तन्मध्ये पूर्णचन्द्रः । स्निग्धसन्तानं हसतीति स्निग्धसन्तानहासी । तस्यान्तश्चन्द्रमण्डलस्य मध्ये त्रिकोणम् । तत् तु अकथादित्रिरेखात्मकम् । तत्त्रिकोणे हलक्षवर्णत्रयम् । तदन्तस्त्रिकोणमध्ये शून्यं परलिङ्गं परलिङ्गस्य तेजोवर्णत्वात् शून्यं शून्याकारमिति यावत् । तथाच **गौतमीये** —

सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते ।
अकथादित्रिरेखासु हलक्षत्रयभूषिते ॥
तन्मध्ये परबिन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ॥ इति ॥

**योगिनीहृदये**—सूक्ष्मरूपं समस्तार्णवृतं परमलिङ्गकम् ।
बिन्दुरूपं परमानन्दकन्दं नित्यसदोदितम् ॥ इति ॥

त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं
तदन्तःशून्यं तत् सकलसुरगणैः सेवितं चातिगुप्तम् ॥ ४१ ॥

सहस्रदलकर्णिकास्थ-परमशिवस्थिति-स्वरूपम्

सुगुप्तं तद् यत्नादतिशय-परमामोद-सन्तान-राशेः
परं कन्दं सूक्ष्मं सकल-शशिकला-शुद्धरूपप्रकाशम् ।

रूपं शून्यं स्फुरतीति क्रियान्वयः । यद्वा तदन्तस्त्रिकोणमध्ये शून्ये परंबिन्दुरूपं स्फुरति । अत एवोक्तं **तोडलतन्त्रे** षष्ठोल्लासे—

निराकारं परं ज्योतिर्बिन्दुञ्चाव्ययसंज्ञकम् ।
बिन्दुशब्देन शून्यं स्यात् तथा च गुणसूचकम् ॥

इति । अत्र "आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्या" इति वचनाद् योगस्य गोपनेनाऽनुष्ठानविधानात् तदन्तःशून्यमतिगुप्तं यथा स्यात् तथा **सकलसुरगणैः सेवितमा**राधितमित्यर्थः ॥ ४१ ॥

**सुगुप्तमिति** । अस्यायमर्थः--वक्ष्यमाणकेशाग्रकोटिभागैकरूपत्वादतिगुप्तं **तत्** शून्यं यत्नात् चिरनिरन्तरध्यानाद्यनुष्ठानात् **सकलशशिकलाशुद्धरूपप्रकाशं** कला निर्वाणकला तया सह वर्त्तमाना या शशिनश्चन्द्रस्य षोडशी कला तया निर्मलरूपप्रकाशो यस्य तदित्यर्थः । तथा चातिसूक्ष्ममपि त्रिकोणान्तर्वर्त्त्यमाकलानिर्वाणकलासहित-परंबिन्दुरूपान्तःशून्यं ध्यानेन प्रकाशितं भवतीति भावः । **परमामोदसन्तानराशेर्मोक्षस्य परं कन्दं** प्रधानमूलमित्यर्थः । सुगुप्तमित्यत्र सुगोप्यमिति पाठे यत्नादित्यस्य उभयत्राऽन्वय इति ध्येयम् ।

सर्वदैव स्फुरति । विद्युदाकार इव रूपं यस्य त्रिकोणान्तर्मध्ये तत् शून्याकारं विलसति । सकलसुरगणैः सेवितम् । शून्यत्वादतिगुह्यम् ॥ ४१ ॥

सुगुप्तमिति । सुगोप्यं तत् शून्याकारशिवलिङ्गं यत्नाद् गोप्यं गोपनीय कस्मैचित् यावत्तावन्न कथनीयम् । कीदृशम् ? अतिशयपरमामोदसन्तानजनकामृतराशेः प्रकृष्ट-

व्याख्यातञ्च **अमृतानन्दस्वामिना** यथा परलिङ्गस्य पर तेजोरूपत्वादवर्णत्वं सूक्ष्मरूपम्, अतीन्द्रियगोचरम्, अत एव बिन्दुरूपं समस्तार्णवृतम् । नित्यत्वञ्च मातृकाया उत्पत्तिविनाशरहितत्वात् । पदात् पदं प्राप्य उदितं प्रकाशितम् । तदेवाह--परमामोदसन्तानराशेः परं कन्दं सूक्ष्ममिति । शशिसमस्तकलाशुद्धरूपम् ॥ ४१ ॥

"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति श्रुतिबोधितो यः परशिवः स द्विधा भूत्वा परमशिवाख्यः सगुणः शिवः प्रकाशात्मा अत्र परबिन्दुचक्रे निवसति इत्याह--इह

**इह स्थाने देवः परमशिवसमाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः**
**खरूपी सर्वात्मा रसविरसमितोऽज्ञानमोहान्धहंसः ॥ ४२ ॥**

केचित् तु त्रिकोणान्तःशून्यं शून्यस्थानम्। तत् तु कीदृशम् ? सकलशशिकलाशुद्धरूपप्रकाशम्। शशिनश्चन्द्रस्य सकलकलाः समस्तकलाः षोडशकलास्तस्याः शुद्धं शुक्लं यद् रूपं तदेव प्रकाशो यस्य तादृशपूर्णचन्द्रप्रकाशमित्यर्थं इति व्याख्यायन्ति। तच्चिन्त्यम्। तत्त्रिकोणस्य पूर्णचन्द्रमण्डलमध्यवर्त्तित्वकथनेनैव त्रिकोणमध्यस्थानस्य पूर्णचन्द्रतुल्यप्रकाशप्राप्तौ पुनस्तत् कथनं व्यर्थं स्यात्। किञ्च सकलसुरगणैः सेवितमित्यनेन शून्यस्थानस्य सेवनं न युज्यते किन्तु त्रिकोणान्तर्बिन्दोरेव सेव्यत्वमिति। यदि तु तच्छून्यस्थानस्य परंबिन्दोरधिष्ठानात् सेव्यत्वमित्युच्यते, तदा तत् शून्यस्थानमेव नो भवतीति सुधीभिर्भाव्यम्।

सहस्रदलकर्णिकायां परमशिवस्थितिमाह--इह **स्थान** इति। इह **स्थाने** कर्णिकायामित्यर्थः। **परमशिवसमाख्यानसिद्धः** परमशिवनाम्ना ख्यातो **देवः**, वर्त्तत इति शेषः। देवं विशेषयति--खरूपीति। ब्रह्मरूपी ब्रह्ममयमिति यावत्। **सर्वात्मा** सर्वेषां जीवानामात्मा जीवात्मस्वरूपः, जीवात्म-परमात्मनोर्वस्तुतो भेदाभावात् य आत्मा स एव जीवः। अत एवोक्तम**ध्यात्मरामायणे**--

जीवात्मा परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः।
आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानं यदा भवेत्।
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाऽविद्या तदैव तु॥

इति। श्रुतिरपि--"तत्त्वमसी"ति वाक्येन तत्-त्वं-पदयोरेकार्थत्वं दर्शयति। **रसविरसमित** इति। **रसः** परमानन्दरसः, विरसस्तद्वैलक्षण्येन शिवशक्ति-

मूलं, तस्मादेव परमामृतं क्षरति। सूक्ष्ममलक्ष्यम्। शशिनः सकलकलैवांशरूपं प्रकाशो यस्य। इह स्थान एव परमशिवत्वेन सिद्धः सर्वैर्विदितः। प्रसिद्धः योगिनां हृदये स्थाने इत्यादिना। परशिवसमाख्यानसिद्धप्रसिद्धं यस्य सः। तदुक्तं **सङ्केतपद्धत्याम्**--

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्त्तितः।
अनयोः सामरस्यं यत् परस्मिन् महसि स्फुटम्॥ इति॥

तत्र अमृतानन्दस्वामिनः--"अ इति ब्रह्म" इति श्रुत्या अकारवाच्यः परशिवस्तस्यांशित्वेन परमशिवोऽप्यकारवाच्यः प्रकाशरूपब्रह्मांशित्वात्। विमर्शाख्यः विमर्शिनी [सा] शक्तिरित्यन्तेनाहुः। सर्वात्मा "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्" इति

**सुधाधारा-सारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां**
**यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान् निर्मलमतेः।**

योगजन्य-सामरस्यानन्दरूपः, तदुभयरसमितः प्राप्त इत्यर्थः। अथवा--**रसः** प्रथमोपस्थितत्वेन विषयरसस्तस्मिन् **विरसा** हेयताबुद्धिर्येन रसेन स परमानन्दरसस्तमित इत्यर्थः। **अज्ञानमोहान्धहंसः** अज्ञानमोहान्धकारनाशकत्वाद् हंसः सूर्यरूप इत्यर्थः॥ ४२॥

**सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरामिति**। **निरवधि** निरन्तरमतितरामतिशयं यथा स्यात् तथा **सुधाधारारूपसारं विमुञ्चन्नि**त्यर्थः। अथवा--सुधाया आधारश्चन्द्रस्तस्मादास्त्रियते निःस्त्रियते, तत् सुधाधारासारं शुक्लवर्णामृतकिरणं विमुञ्चन् प्रकाशयन्नित्यर्थः। एतद्विशेषणेन विशेष्यस्य चन्द्रवत् शुक्लवर्णत्वं सूचितम्। यद्वा - आसार्यते निःसार्यते उच्चार्यते इति यावत्, आसारं वाक्यं, सुधाधारया सह आसारं सुधाधारासारं सुधामयवाक्यमित्यर्थः। ततश्च **निरवधि** सर्वस्मिन् काले **अतितरां** मोहनाशायाऽतिप्रबलतरां सुधामयवाक्यं विमुञ्चन्नुच्चरन् सन् यतेरुपास्यदेवतायां नियतमनसः स्वात्मज्ञानं स्वं जीवात्मा तेन सह आत्मा परमात्मा ज्ञायतेऽनेनेति। अत्राऽपृथक्साहित्येन जीवात्माभेदेन परमात्मज्ञानकारणं तारकब्रह्ममन्त्रमुपदिशतीति समुदायार्थः। अथवा--सुधा कृपामृतं तद्धारया युक्तं सारं ब्रह्ममन्त्रात्मक-सारवाक्यमुच्चरन् स्वात्मज्ञानं दिशतीत्यर्थः। एतद्विशेषणेन तारकमन्त्रोपदेशकत्वज्ञापनात्तु विशेष्यगुरुत्वं सूचितम्। एवञ्चेतद्विशेषणं, पूर्वश्लोकोक्त-परमशिवस्यैव गुरुत्वात्। अत एव **ललितारहस्ये** गुरुतत्त्वनिरूपणे--

**प्रकाशनपरः। खरूपी शून्याकारः। सर्वेषामात्मा। रसविरसमितः परमरसेनाच्छादितः। अज्ञानेन यो मोहान्धकारस्तत्र हंसः सूर्यसदृशः॥ ४२॥**

**सुधाधारासारमिति। स भगवान् शिवो निर्मलमतेर्योगिनो जनस्यात्मविषयस्य**

श्रुतेः। रसो द्रव्यविशेषः पर इति प्रसिद्धस्तस्य विसरः समूहस्तद्वत् सितः शुक्लः। 'सन्दोहविसरव्रजाः'' इत्यमरः। अज्ञानमोहान्धस्य हंसः सूर्यः॥ ४२॥

सुधाधारासारमतितरां विमुञ्चन् यतेः स्वात्मज्ञानं स्वस्य शिवाभेदज्ञानं दिशति। भगवान् ऐश्वर्यादियुक्तः स परमशिवः परमहंस इत्याह--समास्ते इत्यादिना। सकलसुखसमूहस्य लहरी तरङ्गः तस्य परीवाहः। "जलोच्छ्वासाः परीवाहः"

**समास्ते सर्वंशः सकल-सुख-सन्तान-लहरी-**
**परीवाहो हंसः परम इति नाम्ना परिचितः ॥ ४३ ॥**

ख्यातोऽयं पुरुषश्रेष्ठः सर्वदात्मरतिप्रियः ।

इत्यादिना गुरुं वर्णयित्वा--

तेजोरूपा प्रिया तस्य ब्रह्मवर्त्मसुदुर्लभा ।
परमं ब्रह्म यत्पादपङ्कजद्युतिवैभवम् ॥

इत्युक्त्या शोभाधिक्येन पदपङ्कजयोः परब्रह्मरूप-परमशिवस्य हृत्पद्मादिति व्याख्यातम् (?)। तेजोरूप-गुरुप्रियायाः पादद्वयारोहणं गुरुहृदय एव न त्वन्यपुरुषस्येति। अतो यः परमशिवः स एव गुरुरिति तात्पर्यम्। निर्वाणतन्त्रे--

शिरः पद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः ।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये ॥
तदंशं चिन्तयेद् देवि बाह्ये गुरुचतुष्टयम् ।

इति। अयं परमशिवः कर्णिकान्तस्त्रिकोणस्य बहिरधः कथ्यमानहंसः इत्यस्योपरि वर्त्तते। पूर्वोक्तकङ्का**लमालिनीतन्त्रे** –

तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ॥

इत्यादिनाक्रमेण महाशङ्खिनीशक्तिपर्यन्तस्थितिमभिधाय--

तस्याऽधस्ताच्च देवेशि चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।
त्रिकोणं तत्र सञ्चिन्त्य क्षयहीनात्मिका कला ॥
तन्मध्ये कुटिला निर्वाणाख्यसप्तदशी कला ॥

इति वचनेन चन्द्रमण्डलान्तस्त्रिकोणेऽमाकलादीनामेव स्थितेरुक्तत्वात्। गुरोस्तु तदधोऽन्तरात्मन उपरि स्थितिरुवाच।

ननु कङ्कालमालिनीवचनेऽन्तरात्मन उपरि गुरोः स्थितिरुक्ता, तत् कथं हंसस्योर्ध्वे गुरोः स्थितिरुच्यते इति चेत्। न। हंसान्तरात्मनोरेकार्थत्वात्। तथा हि **कङ्कालमालिनीतन्त्रे** गुरुध्यानं यथा—सहस्रदल-मध्यस्थमन्तरात्मानमुत्तमम्।

**परमात्मनि ज्ञानं दिशति। कीदृशम्? सुधाधारासारम् अमृतधाराया आसारमिव।**

इत्यमरः। परम इति नाम्ना समुचितः परमहंस इत्यर्थः। स च मायावच्छिन्नः। **तथाच तन्त्रान्तरे** –

तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम् ।
तस्मिन् निजगुरुं नित्यम् ........ ... .. ।। इत्यादि ।।

**तथान्यत्र**—हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम् ।
अमुकानन्दनाथान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ।। इति ।।

**तथाऽन्नदाकल्पे**—शिरः पद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते
पतत्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निजगुरुम् । इति ।।

एतेषां वचनानां पर्यालोचनया हंसान्तरात्मनोरभेदः प्रतीयते । एवं '**परमशिवरूपं निजगुरुमि**'त्यनेन परमशिव एव गुरुरिति भाव्यम् । यत् तु सहस्रदलमुपक्रम्य--

तन्मध्ये तु त्रिकोणं स्याद् विद्युदाकाररूपकम् ।
बिन्दुद्वयञ्च तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम् ।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः ।।

इति वचनं परमशिवस्य त्रिकोणमध्ये स्थितिबोधकम्, तत्, मतभेदेन सहस्रदल - कमलाभिन्नतत्कर्णिकाधोवर्त्त्यूर्ध्वमुख-द्वादशदल - कर्णिकान्तस्त्रिकोणे गुरुस्थितिबोधकम् । एतत् **पादुकापञ्चकस्तोत्रे** स्पष्टीकृतम् । न तूर्ध्वसहस्रदलकर्णिकात्रिकोणे गुरुस्थितिबोधकम्; मध्यत्रिकोणस्याऽधस्तन-त्रिकोणान्तरे तद्रूपेण स्थितेः । अन्यथा **कङ्कालमालिनीतन्त्रवचन**विरोधात् ।

**समास्ते सर्वेश** इति । अत्र कर्णिकायां सर्वेषामीश्वरः समास्ते इत्यर्थः । नन्वत्र परमशिवस्थितिकथनेनैव ईश्वरस्थितिरुक्ता, तत् कथं पुनः सर्वेशस्थितिरुच्यते इत्यतः सर्वेशं विशेषयति—हंस इति । अयं सर्वेशो हंसो हंस इत्यानुपूर्विक-मन्त्राकारः । तदुक्तं **प्रपञ्चसारे**--

सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।।

**यद्वा--अमृतधारासारं निरवधि अतितरामत्यर्थं विमुञ्चन्निति भगवतो विशेषणम् ।**

सरोरुहमधोमुखं प्रविलसत् सहस्रच्छदं
क्रमादरुणकेसरप्रकरभास्वरनिर्मलम् ।
तदन्तरपि चिन्तयेदमृतरोचिसो मण्डले ।
पुराणपुरुष पर परिगतं महामायया ।। इति ।।

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ।
बिन्दुर्दक्षिणभागश्च वामभागो विसर्गकः ॥
तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुं-स्त्रीविशेषितौ ।
स हङ्कारः पुमान् प्रोक्तः स इति प्रकृतिः स्मृता ॥
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृता ।
पुं-प्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत् ॥ इति ॥'

सुव्यक्तमाह **महाकालीतन्त्रे** प्रथमपटले--

सहस्रारान्तरे शून्ये दिव्यतोरणशोभिते ।
चन्द्रमण्डलमध्ये तु हंसवर्णद्वयोपरि ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुद्धक्षौमविराजितम् ॥

इत्यादि । 'अत्र हंसवर्णद्वयोपरी'ति सुव्यक्तम् । अथवा **हंसः परम** इति **नाम्ना परिचितः** हंसः इति नाम्ना परम इति नाम्ना च परिचितो विख्यात इत्यर्थः । अत एव ग्रन्थकारेणोनपञ्चाशच्छ्लोके 'केचिद्धंसाख्यमेतदि'त्यनेन हंसनामकत्वं स्वमुक्तम् । यद्वा--हंसोऽन्ते यस्य स हंसोऽन्तः, हंसोऽन्तश्चासौ परमश्चेति कर्मधारयेण शाकपार्थिवादित्वान् मध्यपदलोपे हंसःपरम इति सिद्धम् । तेन परमहंस इति नाम्ना परिचित इत्यर्थः । अतएवोक्तमागम-**कल्पद्रुमे**—

असौ परमहंसाख्यो युक्तस्थावरजङ्गमः ॥

इति । **सकलसुखसन्तानलहरीपरीवाह** इति । सर्वप्रकारसुखं सकलसुखं तस्य सन्तानो विस्तारः, स एव लहरी श्रेणी परि सर्वतोभावेनोह्यते उत्तरोत्तरकालस्थायित्वेन प्रकाश्यते यस्मिन्नित्यर्थः । ततश्च श्रेण्याकारेण सर्वव्यापक-सर्वप्रकार-सुखविशिष्ट इति यावत् । अयं हंसः परमशिवस्याबोवर्त्तीत्युक्तं प्राक् ॥ ४३ ॥

एवंभूतः सर्वेशः शिवः सर्वेषां सुखसमूहलहरीबहिर्भूतः सन् समास्ते । कीदृशः ? नाम्ना परमहंस इति परिचितः ॥ ४३ ॥

मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते ।
मायासम्बन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा ॥

इति वेदान्तोक्तेः ॥ ४३ ॥

सहस्रारकर्णिकायाः सर्वदेवस्थानत्व-वर्णनम्

**शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा**
**लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे।**
**पदं देव्या देवीचरणयुगलाम्भोजरसिका**
**मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम् ॥ ४४ ॥**

एतत्कर्णिकायां सर्वदेवतामय-हंसादीनामधिष्ठानात् शैवशाक्तादि-सकलोपासकानामुपास्यदेवतास्थानमित्याह--**शिवस्थानमिति** । **शैवाः** शिवोपासका एतत्पद्मं **शिवस्थानं लपन्ति** वदन्तीत्यर्थः। **परमपुरुष** परम-पुरुषस्य विष्णोः स्थानम्, इदमर्थतद्धितप्रत्ययेन सिद्धम्। **केचिदिति**। ये हरिहरोपासकास्ते शैवा वैष्णवाश्च ते केचित्। अपरे केवलशिवविष्णू-पासकेतरा **हरिपदं लपन्ति**। अतः सर्वे शैवा वैष्णवाः केवलशिवस्थानं केवलविष्णुस्थानं न वदन्तीत्यभिप्रायेणेत्युक्तम्। **अन्ये** युगलभजनशीलाः। यद्वा—**अन्ये** हंसमन्त्रोपासका **मुनीन्द्राः प्रकृतिपुरुषस्थानं** हंसस्य प्रकृति-पुरुषोभयरूपत्वात् तदधिष्ठितस्थानं लपन्तीत्यर्थः। एतत्प्रदर्शनमात्रं तत्स्थाने सर्वदेवतामय-परमबिन्दोरधिष्ठानात्, यो तद्देवतोपासकः स तद्देवतास्थानं वदतीति बोध्यम् ॥ ४४ ॥

शिवस्थानमिति। एतत् परमशिवस्थान शैवा जनाः शिवस्थानमिति लपन्ति। वैष्णवाः परमपुरुषं परा प्रकृष्टा मा लक्ष्मीर्यस्य एवम्भूतपुरुषं वदन्ति। अपरे केचित् प्रायो हरिहरपदमिति लपन्ति। अन्ये देवीचरणयुगलानन्दरसिका देव्याः पदं लपन्ति। वस्तुतस्तु नानाप्रकारभावनाया एको निरञ्जन एवं निर्वाच्यः। अतएव "ऋजुकुटिल-नानापथजुषां नृणामेको गम्य" इति पुष्पदन्तोक्तं साधु संगच्छते ॥ ४४ ॥

शिव इत्यादि स्पष्टम्। परमपुरुषमिति भारते—

अव्यक्तं मन इत्याह शरीरं परमुच्यते।
अव्यक्तके पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते ॥ इति ॥ ४४ ॥

सहस्रार-ज्ञान-फलम्

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।

सहस्रारज्ञानफलमाह--**इदं स्थानमिति**। साङ्गोपाङ्गरूपेणैतत्स्थानज्ञानं भवतीति भावः। **नियतनिजचित्त** इति। **नियतं** तत्र निजचित्तं येनेत्यर्थः। **न भूयात् संसारे** मुक्तो भवतीति भावः। यतः क्वचिदपि न **बद्धस्त्रिभुवने** इति हेतुगर्भविशेषणम्। बद्धः पुण्यपापरूप-मायापाशबद्धः तदुक्तं **भागवते**--

कर्मणि क्रियमाणे तु गुणैरात्मनि मन्यते।
तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यञ्च तत् स्मृतम्॥

इति। **भगवद्गीतायामपि**--

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा॥

इति। ततश्च पुण्यपाप-भोगार्थं शरीरधारणाद् बन्धः। स च स्वर्गे पुण्यभोगार्थं पाताले पापभोगार्थं मर्त्ये उभयभोगार्थं भवतीति। तत्त्वज्ञानिनान्तु बन्ध-हेतुभूत-पुण्यपापानुदयात् सञ्चित-पुण्यपापक्षयाच्च क्वचिदपि कस्मिन् कालेऽपि त्रिभुवने स्वर्गमर्त्य-पाताले न बद्धो न शरीरी भवति। सोऽयं प्रारब्धकर्मभोगपर्यन्तं जीवन्मुक्तः सन् तिष्ठति देहान्ते मुक्तो भवतीति भावः। यस्य पुण्यपापानुदयमाह **कुलार्णवे**--

अश्वमेधशतेनापि ब्रह्महत्याशतेन च।
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्म हृदि स्थितम्॥

इति। तथा **भगवद्गीतायाम्**--

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

इति। 'तस्य' प्रकान्त-तत्त्वज्ञानिनः 'कृतेन' कर्मणा पुण्यं नास्ति, न चा'कृतेन' नित्यकर्मणा कश्चन प्रत्यवायोऽस्तीति **सुबोधिनी**व्याख्यानम्। सञ्चित-

**इदं स्थानमिति। इह एवं शास्त्रे एतत् स्थानं ज्ञात्वा नियतं संयतं निजचित्तं येन सः परमात्मचिन्तापरः नरवरः संसारे न भूयात् क्वचिदपि त्रिभुवने बद्धो न भवति। संयतमनसस्तस्य कृतिनः समस्ता शक्तिः स्यात्। तदेवाह--सर्वदैव कर्तु**

खगतिः खेचरः स्यात्। यद्वा खे ब्रह्मणि गतिः स्यात्। "खं ब्रह्म" इत्याद्युर-

समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः
सदा कर्त्तुं हर्त्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥ ४५ ॥

अमाकला-स्वरूपम्

अत्रास्ते शिशुसूर्य-सोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी
शुद्धा नीरज-सूक्ष्म-तन्तु-शतधाभागैकरूपा परा ।

पुण्यपाप-क्षयमाह श्रुतिः--"तस्मिन् मनसि लीने गते सङ्कल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः शक्त्यात्मा शान्त" इति । भगवद्गीतायामपि—"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।।" इति । तस्य समग्रा सर्वकार्यसाधिका शक्तिः स्यात् । शक्तिकार्य दर्शयति--**सदा कर्त्तुमिति** । अभीष्टकार्यं कर्त्तुं तथा हर्त्तुमनिष्टं कर्त्तुं संहर्त्तुं च शक्तिः, खगतिराकाशपथगमनं, **सुविमला** मधुरगद्यपद्यमयी वाणी स्यादिति सर्वत्राऽन्वयः ॥ ४५ ॥

अथाऽत्र पूर्वं 'तदन्तःशून्यं तदि'त्यनेन 'सकलशशिकला-शुद्धरूपप्रकाशमि'त्यनेन च सहस्रारकर्णिकान्तस्त्रिकोणे अमाकला-निर्वाणकला-परंबिन्दू-नामधिष्ठानं छलेनाभिहितम् । इदानीं तेषां स्वरूपेण इतरभेदकविशेषणेन च स्पष्टयितुमिच्छन्नादावमाकलास्वरूपमाह–अत्रास्त इति । **शिशुसूर्यसोदरे**-त्यनेन कलाया रक्तवर्णत्व ज्ञापितम् । **चन्द्रस्य सा** षोडशीत्यनेन इयममा-

हर्त्तुं स क्षमो भवति । खगतिराकाशगतिरपि भवति । अपि वाणी सर्वाह्लादिनी सुविमलशक्तिरूपा भवतीति ।। ४५ ।।

अत्रास्त इति । अत्रैव पद्मे चन्द्रस्य सा प्रसिद्धा अमानाम्नी षोडशी कला आस्ते । कीदृशी ? प्रातःकालीनसूर्यस्येव कला दीप्तिर्यस्याः सा तथा । शुद्धा निर्विकारत्वात् ।

निषत् ।। ४५ ।।

ऊर्ध्वशक्तिरूपां कलामाह--तत्रास्ते इत्यादिना । प्रातःसूर्यतुल्या चन्द्रस्य षोडश-कला अमा नाम्नीति यावत् ।

अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला ।
संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ।।

विद्युत्कोटि-समान - कोमल - तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी
नित्यानन्द - परम्पराऽतिविगलत् - पीयूषधारा - धरा ॥ ४६ ॥

कलेति ज्ञापितम् । **नीरज**[सूक्ष्म]तन्तुर्मृणालसूत्रं तस्य शतभागो दीर्घकालेनेति बोध्यम् । **शुद्धा** कलङ्करहिता । **परा** चिच्छक्तिरूपा, चिच्छक्तेरेवेदं रूपम् । अत एवाक्तं **प्रभासखण्डे**--

संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ॥

इति । अमाविशेषणं--नित्यानन्द**परम्परेति** । ब्रह्मपरम्परोत्पन्नेत्यर्थः । **अतिविगलत्पीयूषधाराधरा** अतिशयामृतस्राविणीत्यर्थः । यद्वा--**नित्यानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरे**त्येकविशेषणम् । अस्यार्थः--परं बिन्दुरूपं शिवः, परा प्रकृतिः शक्तिः, आनन्देन समरसानन्देन परम्पराभ्यां शिवशक्तिभ्यामतिविगलन्ती या पीयूषधरा परामृतधारा नित्यं निरन्तरं तादृशधारामिव धारां धारयतीत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ४६ ॥

**मृणालतन्तोः सूक्ष्मशतभागस्येव एकरूपं यस्याः । परा प्रकृष्टा । अथवा पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी-समष्टिरूपा । पुनः कीदृशी ? विद्युद्दामसमानकोमलं तनुर्यस्याः । नित्योदिता, क्षयोदयरहितत्वात् । अधोमुखी । पूर्णानन्दपरम्परयाऽतिप्रकाशमाना या पीयूषधारा तदाश्रया, परम्पराक्रमेण शिव-सम्बन्धिपीयूष धाराधरेत्यर्थः ॥ ४६ ॥**

इति वचनात् । सूक्ष्मत्वात् शतधाविभक्तमृणालतन्तुभागैकरूपा क्षयोदरहितत्वान्नित्या । अधोमुखी सृष्टयन्मुखी । पूर्णानन्दसमूहो यस्याम् । या अभिगलत्पीयूषधारा तस्या धरा ।

स्वच्छन्दसंग्रहे--ब्रह्मणी त्वं परा शक्तिः ब्रह्मणोत्सङ्गगामिनी ।
द्वारं सा मोक्षमार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता ॥
तां भित्त्वा तु वरारोहे ऊर्ध्वशक्तिं परां शिवाम् ।
शक्तितत्त्वात्मिकां देवीं प्रसुप्तभुजगाकृतिम् ॥
शक्तितत्त्वं समाख्यातं भुवनैराश्रितं महत् ।
शक्ति तत्त्वात्मिकामूर्ध्वशक्तेरुपरि संस्थिताम् ॥ इति ॥

योगिनीहृदयेऽपि--शक्तौ पुनर्व्यापिकायां समनोन्मनीगोचरे ॥ इति ॥ ४६ ॥

निर्वाणकला-स्वरूपम्

**निर्वाणाख्यकला परा परतरा साऽऽस्ते तदन्तर्गता**
**केशाग्रस्य सहस्रधा-विभजितस्यैकांशरूपा सती।**
**भूतानामधिदैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया**
**चन्द्रार्द्धाङ्ग-समान-भङ्गुरवती सर्वार्कतुल्यप्रभा ॥ ४७ ॥**

निर्वाणकलास्वरूपमाह--**निर्वाणाख्यकलेति** । **सा परा** परतरा पराऽमा कला अस्या अपि **परतरा** श्रेष्ठा । परादिति पाठे सर्वश्रेष्ठेत्यर्थः । सा **तदन्तर्गता** अमाकलायाः क्रोडे स्थिता ; "तन्मध्ये कुटिला निर्वाणाख्यसप्तदशी कले"ति पूर्वोक्तवचनात् । केशाग्रस्येत्यादि । केशाग्रस्य सहस्रभागैकभागरूप-सूक्ष्मा सती आस्ते इत्यन्वयः । **भूतानां** सर्वप्राणिनाम**धिदैवतं** हार्दचैतन्यस्वरूपेत्यर्थः । **नित्यप्रबोधोदया** तत्त्वज्ञानसम्पादयित्री । **चन्द्रार्द्धाङ्गसमानभङ्गुरवती** चन्द्रार्द्धाङ्गरूपामाकलावत् कुटिलाकारेत्यर्थः । **सर्वार्कतुल्यप्रभा** एकदा द्वादशसूर्योदये यादृक् प्रकाशस्तादृशप्रकाशमाना रक्तवर्णा च ॥ ४७ ॥

**निर्वाणाख्येति । सा निर्वाणनाम्नी कला अमाकलान्तर्गता सती आस्ते । कीदृशी ? परात् परतराप्रकृष्टादपि प्रकृष्टतरा । सहस्रप्रकारेण विभजितस्य केशाग्रस्यैकांशरूपा । सती शोभना । पुनः कीदृशी ? भूतानामधिदेवतास्वरूपा भगवतीस्वरूपा च । नित्यः प्रबोधोदयो यस्याः सा तथा । चन्द्रलेखेन भङ्गुरं वक्राकारं वपुर्यस्याः सा तथा, द्वादशादित्यप्रभा इत्यर्थः ॥ ४७ ॥**

व्यापिनीतत्त्वं शक्तितत्त्वस्वरूपमाह--निर्वाणाख्य इत्यादिना । सूक्ष्मत्वात् सहस्रधा विभजितस्य केशभागस्यैकभागतुल्या । अर्द्धचन्द्रवत् कुटिला । सर्वार्कतुल्यप्रभा द्वादशादित्यप्रभा । परात् षोडश्याः कलायाः परतः । तदन्तर्गता चन्द्रमण्डलान्तर्गता न तु षोडश्याः कलाया अन्तर्गता । यथा **सारसमुच्चये** षोडशीं कलामभिप्रेत्य—

एतस्याः परतः स्थिता भगवती भूताधिदेवाधिपा ।
निर्वाणाख्यकलार्द्धचन्द्रकुटिला सा षोडशान्तर्गता ।
वालाग्रस्य सहस्रधा विभजितस्यैकेन भागेन या
सूक्ष्मत्वात् सदृशी त्रिलोकजननी या द्वादशार्कप्रभा ॥ इति ॥

**स्वच्छन्दसंग्रहे**—षोडशान्तमिति ख्यातं व्योमस्थानेन्दुमण्डलम् ॥ इति ॥

**तत्रैव**—आधारं भुवनानाञ्च प्रवक्ष्यामि समासतः ।
सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च तथा चैवामृता मृता ॥
चतुर्दिक्षु स्थितास्तासां मध्यस्था व्यापिनी स्मृता ।
पञ्चवक्त्रा त्रिनेत्रा च सुतेजस्का च पञ्चमी ॥इति॥ ४७ ॥

## परंबिन्दु-स्वरूपम्

**एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वनिर्वाणशक्तिः**
**कोट्यादित्यप्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा ।**

परंबिन्दुस्वरूपमाह--एतस्या इति । एतस्या निर्वाणकलाया **मध्यदेशे** कोडे **अपूर्वा** सृष्टेरादावाविर्भूतत्वात् किञ्चिदपि नास्ति पूर्वं यस्यास्तादृशी **परमा** परंब्रह्मशक्तिरूपा **निर्वाणशक्तिर्विलसती**त्यर्थः । निर्वाणशक्तिं विशेषयति--**कोट्यादित्यप्रकाशे**ति । **त्रिभुवनजननी** स्वर्ग-मर्त्त्य-पातालादि-प्रपञ्चसमुदायस्योत्पत्तिस्थानरूपेत्यर्थः । यतः केशाग्रस्य **कोटिभागैकभाग-रूपा** अतोऽतिसूक्ष्मा । **निरवधिविगलत्प्रेमधाराधरे**ति । **प्रेम** आनन्दार्द्रभाव-प्रफुल्लता । सामरस्यानन्दार्द्रभावप्रफुल्लताजनिता या परामृतधारा **निरवधि** निरन्तरं विगलन्ती तादृशधारां धारयतीत्यर्थः । **सर्वेषां** जीव-भूतेति । एतस्या अंश एव जीवः । तदुक्तं यथा—

ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः ।
तस्याश्च्युतं परंबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि ।
तदैव सहसा देवि संज्ञायुक्तो भवत्यपि ॥

इति । 'तस्याः' शिवशक्तयात्मकपरंबिन्द्वन्तर्गतशक्तयाः । 'संज्ञायुक्तो' जीवनामा भवतीत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् । इयं निर्वाणक्तिर्निर्वाणकलाधःस्थाने नादरूपनिबोधिकोपरि वर्त्तते ।

**एतस्या इति । एतस्याः कलाया मध्यदेशे परमापूर्वनिर्वाणशक्तिर्विलसति । कीदृशी ? कोट्यादित्य इव प्रकाशो यस्याः । त्रिभुवनजननी, सर्वेषामाधारभूतत्वात् । केशाग्रस्यापि कोटिभागैकभागरूपा, अतिसूक्ष्मत्वात्; अतो गुह्या । निरवधि विलसत्प्रेम-**

**समनापदमाह**—एतस्या इत्यादिना । परं उत्तरकालं मातीति परमा ध्वंसरहिता नित्येत्यर्थः । सूक्ष्मत्वात् केशाग्रस्य कोटिभागैकभागरूपा अतः अतिगुह्या । निरवधि विलसन्ती या अमृतधारा तस्या धरा । मुनिमनसि लसिततत्त्वबोधं शिवाभेदज्ञानं वहन्ती ।

अहन्तेदन्तयोरैक्यमिति विद्या निगद्यते ॥

इति पराप्श्चाशिका वचनाद् ब्रह्मणोऽतिनैकटचेन तथोक्तम् । तथा—

समनान्तर्वरारोहे पाशजालमनन्तकम् ।

**केशाग्रस्याऽतिसूक्ष्मा निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरा सा**
**सर्वेषां जीवभूता मुनिमनसि मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती ॥ ४८ ॥**

तद् यथा—निर्वाणाभ्य(ख्या)न्तरगता वह्निरूपा निबोधिका ।
नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोटचादित्यसमप्रभा ।
निर्वाणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी ॥
अस्यां शक्तौ शिवो ज्ञेयो निर्विकारो निरञ्जनः ।
अत्रैव कुण्डली शक्तिर्विहरेत् परमात्मना ॥

इति । 'निबोधिका'ऽव्यक्तनादात्मिका वह्निरूपा । तथा हि नादस्य त्रिविधावस्था । "तमोगुणाधिक्येन केवलध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनादः । रज-आधिक्येन किञ्चिद्वर्णबद्धन्यासात्मकः । सत्त्वाधिक्येन बिन्दुरूपः" इति राघवभट्टः । ततश्च नाद-बिन्दु-निबोधिका अर्केन्दु-वह्निरूपाः, "संज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणः ।" इति शारदावचनात् । तस्मादत्र बह्निरूप-निबोधिकोपरि स्थितिकथनात् सूर्यचन्द्रवह्निमण्डलोपरि निर्वाणशक्तेः स्थितिरिति सुधीभिर्भाव्यम् । व्यक्तमाह **कुलार्णवोक्त-परं**ब्रह्मध्याने—
बिन्दुरूपं परं ब्रह्म सहस्रदल-संस्थितम् ।
इत्युपक्रम्य—कर्णिकान्तस्त्रिकोणान्तर्मण्डलत्रयमण्डितम् ॥
इति । 'मण्डलत्रयेण' सूर्यचन्द्रवह्निमण्डलेन मण्डितमित्यर्थः । इयं निर्वाणशक्तिः परबिन्दुरूपेति स्फुटीकरिष्यामः ॥ ४८ ॥

**धाराधरा सा शक्तिः सर्वेषां जीवभूता सती मुदा हर्षेण मुनिमनसि तत्त्वज्ञानं वहन्तीति ॥ ४८ ॥**

इति वचनात् अत्रापि पाशजालम् । एतस्या निर्वाणकलाया मध्यदेशे इति । समीप्ये सप्तमी । तथा च मध्यदेशसमीपे किञ्चिदुपरीत्यर्थः तथाच **स्वच्छन्दसंग्रहे** —
चिदानन्दस्वरूपा तु परा शक्तिस्तदूर्ध्वतः ।
समना नाम सा शक्तिः सर्वकारणकारणम् ॥
सर्वाण्डा[न्ता]नि बिभर्त्तीयं शिवेन समधिष्ठिता ।
अत्र रूढः स भगवान् शिवः परमकारणम् ।
शिवः सर्वस्य कर्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते ॥ इति ॥ ४८ ॥

निर्वाणशक्तिमध्यस्थ-परब्रह्म-स्थानम्

**तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगिगम्यं**
**नित्यानन्दाभिधानं सकलसुखमयं शुद्धबोधस्वरूपम् ।**

निर्वाणशक्तिमध्ये परब्रह्मस्थानमाह---**तस्या मध्यान्तराल** इति । **तस्याः** परंबिन्दुरूप-निर्वाणशक्तचा मध्यान्तराले मध्यस्थशून्ये **अमलं** मायामल-रहितं **शिवपदं** ब्रह्मस्थानं **लपन्ति**, तत्त्वज्ञा इति शेषः । **योगिगम्यं** सूक्ष्माति-सूक्ष्मतमत्वात् वाङ्मनसोरगोचरत्वाच्च योगिनां ज्ञानमात्रगम्यमिति भावः । केचिद् वैदान्तिका ब्रह्माभिधानं ब्रह्मेति नाम्ना लपन्ति । अथवा हंसनामकमिति यथाश्रुतार्थः । अन्ये सुकृतिनः **किमपि** अनिर्वचनीयमात्म-प्रबोधम् आत्मसाक्षात्कारस्थानं लपन्तीत्यर्थः । **मोक्षमिति ।** मुच्यते माया-प्रपञ्चाद् बहिर्भूयते यत्र तन्मोक्षरूपमित्यर्थः ।

अत्रेदमवधीयताम्---सहस्रदलकर्णिकान्तस्त्रिकोणे मायाबन्धन-च्छादित-प्रकृति-पुरुषात्मक-परंबिन्दुः । तदुक्तम्---

सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।
माययाच्छादितात्मानं चणकाकाररूपिणी ॥
हस्त-पादादि-रहिता चन्द्र-सूर्याग्नि-रूपिणी ।
मायाबन्धनमुत्सृज्य द्विधा भित्वा यदोन्मुखी ॥
शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना ॥

**अस्या इति । अस्याः शक्तेर्मध्यदेशान्तराले निर्मलं शिवपदमास्ते । नित्यानन्दं शाश्वतम्, अत्यन्तासक्तत्वात् । योगि-प्राप्यम्, अत्यन्तज्ञानसाध्यत्वात् सकलानां सुख-**

उन्मनीपदमाह--तस्या मध्यान्तराले इत्यादिना । तस्याः समनाया मध्यान्त-राले । अत्र समीप्ये सप्तमी । शिवतनुप्राप्तिस्थानम् उन्मनीति यावत् । **स्वच्छन्द-संग्रहे**-- शिवतनुं समाख्यातं तदूर्ध्वं शक्तितनुतः ॥ इति ॥

तथा तत्रैव--शिवशक्तिद्वयञ्चैव शिवतनुं प्रकीर्त्तितम् ।

सूक्ष्मार्थशक्तचवच्छिन्नं शिवतनुमित्यर्थः । तथाच तत्रैव--

यावत् सा समना शक्तिस्तदूर्ध्वे उन्मनी स्मृता ।
नात्र कालकलाभावः[नं] न तत्वं न च देवताः ॥

**केचिद् ब्रह्माभिधानं पदमिति सुधियो वैष्णवं तल्लपन्ति**
**केचिद्धंसाख्यमेतत् किमपि सुकृतिनो मोक्षमात्मप्रबोधम् ॥ ४९ ॥**

इति । 'सत्यलोके' सहस्रारे इत्यर्थः । तथा—

निर्गुणो बिन्दुरूपश्च सिद्धिकारणमेव हि ।
केचिद् वदन्ति स ब्रह्मा कैश्चिद् विष्णुः प्रकथ्यते ॥
कैश्चिद् रुद्रो महापूर्ण एको देवो निरञ्जनः ।
आद्याशक्तियुतो देवश्चणकाकाररूपकः ॥

इति । अस्य बिन्दोः केशाग्र-कोटिभागैकभागरूप-सूक्ष्मतेजोंऽशो निर्वाण-शक्तिर्मध्यशून्यभागो ब्रह्मपदमिति ग्रन्थकारमतम् । तथाऽन्यत्र—

तन्मध्ये परबिन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ।
शून्यरूपं शिवः साक्षाद् बिन्दुः परमकुण्डली ॥
तथा—वृत्तं कुण्डलिनीशक्तिर्गुणत्रयसमन्वितम् ।
शून्यभागं महेशानि शिवशक्तयात्मकं प्रिये ॥ इति ।

अयं बिन्दुः सर्वकारणरूप ईश्वर इति केचित् । पौराणिकास्तु महा-विष्णुरूपोऽयमिति वदन्ती । अन्ये तु ब्रह्मपुरुषोऽयम् । तदाह—

नाहो न रात्रिर्न वियन्न पृथ्वी नासीत् तमो ज्योतिरभून्नवान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्धयाऽनुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥इति॥
निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥

**मयम् अथवा सकलं कलया सह वर्त्तमानं तत् सुखमयञ्चेति तत् तथा । शुद्धबुद्धीनां प्रबोधो ज्ञानं यस्मात् । एतत् पदं केचित् परंब्रह्माभिधानमिति वदन्ति । अन्ये सुधियो**

सुनिर्वाणं परं शुद्धं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते ।
शिवशक्तिरिति ख्याता निर्विकल्पा निरञ्जना ॥ इति ॥

"तत्त्वातीतं वरारोहे" —इत्यादि अग्रे लिखिष्यते । मनः सहितत्वात् समना । "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इति श्रुत्या मनोऽतीतत्वादुन्मनीत्य-मृतानन्दस्वामिनः ।

शक्तिमध्यगतोः नादः समनान्तं प्रसर्पति ॥

इति शारदावचनात् तन्मध्येऽयं सगुणब्रह्मरूपः। वस्तुतस्त्वेकमेव मतभेदान्नानाविधनाम्ना गायन्तीत्यलं विस्तरेण।

**तदयं महावाक्यार्थनिर्णयः।** सुषुम्णानाड्यूर्ध्वे सहस्रदलपद्मं शुक्लवर्णमधोमुखं रक्तकिञ्जल्कशोभितमकारादि-लकारान्त-पञ्चाशद्वर्णैः शुक्लाभैर्विंशत्यावर्त्तनेन सहस्रसंख्याकैर्युक्तं सहस्रदलम्; एतत्कर्णिकायां हंसः। ततः परमशिवरूप-गुरुः। ततः सूर्यमण्डलं चन्द्रमण्डलम्। ततो महावायुः। ततो ब्रह्मरन्ध्रम्। ततो महाशङ्खिनी। चन्दमण्डले विद्युदाकारत्रिकोणम्। तन्मध्ये मृणालसूत्र-शतभागैकभागरूप-सूक्ष्मा चन्द्रस्य षोडशी कलाऽधोमुखी रक्तवर्णा। तत्क्रोडे केशाग्रसहस्रभागैकभागरूप-सूक्ष्मा निर्वाणकला रक्तवर्णाऽधोमुखी। तदधस्तादव्यक्तनादात्मक-निबोधिकाख्य-वह्निः। तदुपरि निर्वाणकलाक्रोडे परंबिन्दुः शिवशक्तयात्मकः। अस्य केशाग्रकोटिभागैकभागरूपसूक्ष्मतेजो हंसरूपा निर्वाणशक्तिः। अस्यां हंसो जीवः। बिन्दोर्मध्ये शून्यं ब्रह्मपदमिति।

**आगमकल्पद्रुमपञ्चशाखादिमते** सहस्रदलपद्मकर्णिकामध्ये चन्द्रमण्डले अकथादित्रिकोणम्। तन्मध्ये त्रिकोणसमीपे त्रिबिन्दुः। तस्याधो बिन्दुर्हकारः पुरुषात्मकः। ऊर्ध्वबिन्दुद्वयरूप-विसर्गः सकारः प्रकृतिरूपः। एतदुभयात्मको हंसस्त्रिबिन्दुरूपेण प्रकाशते। तन्मध्ये अमाकला। तत्क्रोडे निर्वाणशक्तिः। तस्या मध्ये शून्यं परं ब्रह्म इति।

**वैष्णवं पदं लपन्ति। केचित् सुधियो मोक्षं मोक्षस्वरूपं हंसाख्यमिति वदन्ति। एतेन ब्रह्मविष्णुशिवशक्तिस्वरूपं तत् पदमित्यायातम्, हंसाख्यत्वात्। तथाच ज्ञानार्णवे—**

> **हकारे बिन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति।**
> **सकारे सर्गबिन्दुभ्यां हरिश्चाहं महेश्वरि।**
> **अविनाभावसम्बन्धाल्लोके हरिहराविति॥**

इति **स्वच्छन्दसंग्रहात्** नात्र कालकलांशस्य भानम्। परमकुलपदमिति परमुम्मन्याः परं अकुलपदम् अकुलाख्यपरशिवात्मकपदं विश्वस्य विश्रामस्थानत्वात्। पदमिति अमलं सत्त्वादित्रिगुणमु(यु)क्तम्। शाश्वतं नित्यम्। योगेन प्राप्तं नित्यानन्दमभिधानं यस्य तत्। "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति श्रुतेः। शुद्धबोधस्य शुद्धबोधस्य प्रकाशो यस्मात्। तथाच टीकाकारधृततन्त्रे "उन्मन्यन्ते परशिवः" इति। **स्वच्छन्दसंग्रहे** उन्मनीमभिधाय—तत्त्वातीतं वरारोहे वाङ्मनो नैव गोचरम्। "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" इत्यादि श्रुतेः। तत्त्वं "तत्त्वमसि" इति श्रुतेः।

> स्वाभाविके परे धाम्नि विवरं तत्त्वसंज्ञकम्॥

तद् यथा--अथ शुभसहस्रारे पूर्णेन्दुमध्यविस्फुरत् ।
त्रिकोणं तडिदाभासमकथादिहलक्षयुक् ।।
तदन्तरे परं शून्यं विसर्गाधो व्यवस्थितम् ।
बालादित्यप्रभा तत्र कला षोडश्यधोमुखी ।।
स्रवन्ती सौधधारां वै चन्द्रार्द्धाङ्गविभङ्गुरा ।
तदन्तरे परा शक्तिः कोटयादित्यप्रभामयी ।।
बिसतन्तुसहस्रांशभागरूपा चिदात्मिका ।
तदन्तः सच्चिदानन्दो वेदादीतो निरञ्जनः ।।
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता ।
पुं-प्रकृत्यात्मको हंसः स्वप्रकाशेन भासते ।। इति ।।

एतन्मतमाश्रित्य परंबिन्दोरूर्ध्वे हंसघटकविसर्गोपरि गुरुस्थितिरिति वदन्ति । तन्न समीचीनम् । **निर्वाणतन्त्रे** परंबिन्दुरूप-शक्तिसमीपे तस्याः पूजाध्यानपरायणस्य निजगुरोः स्थितिकथनात् । पूजार्थोपवेशनं त्वधःस्थले सम्मुख एव युज्यते, न तूर्ध्वस्थले पश्चाद्देशे । तद्यथा **निर्वाणे**--

सत्यलोके बीजकोषे चिन्तामणिगृहे शुभे ।
ध्यायेन् निरञ्जनां देवीं रत्नसिंहासनोपरि ।
तस्याऽन्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरायणम् ।।

इत्यादि । किञ्च पूर्वप्रदर्शिते **महाकालीतन्त्रवचने** हंसवर्णद्वयोपरि गुरु-स्थितिः सुव्यक्ता । अत्र मूलादिसहस्रदलपर्यन्तोक्तप्रकार-विपरीतप्रकार-बोधकानि तथा तदतिरिक्तबोधकानि च यानि वचनानि दृश्यन्ते, तानि मतभेदेन प्रकारान्तरविधायकानीति बोध्यम् ।। इति सप्तमप्रकरणम् ।।४९।।

**स्वरं विना उच्चरितुमशक्यत्वात् शक्तिरपि तत्र स्फुटा । कीदृशम् ? आत्मनः परमात्मनः प्रबोधो यस्मात् तत् तथेति ।। ४६ ।।**

इति **शिवतन्त्रात्** । श्रीमते--

अकुलेश्वरदेवस्य सम्बन्धः प्रथमः स्थितः ।
रूपातीतः परो बिन्दुः शक्त्या वेष्टितभास्वरः ।
अतो नादो विरोधी च अर्द्धचन्द्रसमुत्क्रमात् ।।
एतत् तु पञ्चमप्रोक्तं ज्ञानरत्नं महोदयम् ।
तत्र तद्दक्षिणं षट्कमाज्ञापूर्वं कुलोद्भवम् ।। इति ।। ४९ ।।

कुण्डलिन्युत्थापनप्रकारः

**हूङ्कारेणैव देवीं यम-नियम-समभ्यास-शीलः सुशीलो**
**ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम् ।**

अथेदानीं सहस्रदलपर्यन्तं चक्रं निरूप्य तत्र कुण्डलिनीयोगं कथयिष्यन्नादौ कुण्डलिन्युत्थापनप्रकारमाह—**हूङ्कारेणेति** । अस्यायमर्थः--**स** योगित्वेन प्रसिद्धो जनः **गुरुवक्त्रात् क्रमं** ज्ञात्वा येन क्रमेण प्रकारेण हृदाद्याकुञ्चनादि पवनदहनयोराक्रमणं कुण्डलिन्युत्थापनादिकं भवति, तत्प्रकारक्रमं श्रीनाथस्य गुरोर्वक्त्राज् ज्ञात्वा **पवनदहनयोराक्रमेण** हूमिति कूर्चबीजोच्चारणेन च कुण्डलिनीमुत्थाप्य तल्लिङ्गरूपं भित्त्वा स्वयम्भुलिङ्गच्छिद्रं प्रस्फोटयित्वा तां देवीं कुण्डलिनीं **ब्रह्मद्वारस्य मध्ये** चित्रिणीनाडीमुखमध्ये **विरचयति** प्रापयतीत्यर्थः । हूङ्कारेणेति ।

ततो हंसमुपस्मृत्य शनैराकुञ्चयेद् गुदम् ।

**इत्याद्यागमकल्पद्रुमवचने** हंसमन्त्रस्योच्चारणे कुण्डलिनीचालनविधानात् । "हूं हंस इति मन्त्रः कुण्डलिनीचालने विनियुक्त" इति ललितारहस्यकारः । किन्तु हंसस्मरणपूर्वकतदाकुञ्चनविधानाद् हंस इति मनुमनुस्मृत्य जीवात्मानं हृदयस्थं दीपकलिकाकारं मूलाधारमानीय तेन सार्द्धं कुण्डलिनीं चालयेदित्यभिप्रायः । अत एवा**गमकल्पद्रुमे**—

आरोप्यारोप्य शक्तिं कमलजनिलयादात्मना साधकेन्द्रः ।

इति । परवचने 'आत्मना' जीवात्मना सार्द्धं चालनमुक्तम् । **कालीकुलामृतेऽपि**--

हृदयाद्धंसमनुना नीत्वा जीवं मुखाम्बुजे ।
हूङ्कारेण समुत्थाप्य कुण्डलीं परदेवताम् ॥

हूङ्कारेणेति । इदानीं भूतशुद्धिः कथ्यते । तां देवीं कुण्डलिनीं यमनियमसमभ्यासशीलः स जनः श्रीनाथवक्त्राद् गुरुमुखात् महामोक्षपथप्रकाशं क्रमञ्च ज्ञात्वा हूङ्कारेण तत् स्वयम्भूलिङ्गं भित्वा ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति । जनः कीदृशः ? शोभनं शीलं

यमनियमसमभ्यासशीलः [ नियतनिजचित्त ] इति । **गौतमीये**—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचञ्चेति यमा दश ॥

**ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति स तां शुद्ध-बुद्धि-स्वभावो**
**भित्त्वा तल्लिङ्गरूपं पवन-दहनयोराक्रमेणैव गुप्तम् ॥ ५० ॥**

इति । **कङ्कालमालिनीतन्त्रे**—

आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे ।
कुण्डलिन्या सह प्राणं गन्धमादाय साधकः ।
सोऽहन्तु मनुना देवीं स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ॥

इति । ततश्च हंसेन प्रणवेन वा हृदयाज्जीवं मूलाधारमानीय केवलकूर्च-बीजेन कुण्डलिनीमुत्थापयेदिति सुधीभिर्भाव्यम् ।

स जनः कीदृशः ? **यमनियमसमभ्यासशीलः** । यम-नियम इति योग-प्रतिबन्धककामक्रोधादिनाशक - तदनुकूलशरीरान्तर्वायुरेचन - मनःस्थैर्यादि-साधकाङ्गयोगप्रदर्शकम् । तैरेव प्रकृतयोगनिष्पत्तेः, न तु केवल-यमनियम-मात्रेण । अत एव ग्रन्थकृता चतुःपञ्चाशच्छ्लोके 'योगि यमाद्यैर्युत' इत्यत्र 'यमाद्यै'रिति बहुवचनान्तत्वेन प्रयुक्तम् । अयन्तु यमाद्यभ्यासः कामाद्या-कुलितचित्तानामेव । यदि तु जन्मान्तरीयादृष्टवशात् स्वभावतो वा क्रोध-कामादिरहितस्तदा तद्योगाभ्यासं विनापि प्रकृतयोगे शक्तो भवतीति बोध्यम् ।

**सुशील** इति । यतो यमाद्यभ्यासशीलः, अत एव सुशील इति । **श्रीनाथवक्त्रादिति** । गुरूपदेशं विना क्रमज्ञानं न भवतीति भावः । अत एवोक्तम्—

गुरूपदेशतो ज्ञेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः ॥ इति ॥

**यस्य स तथा । शुद्धबुद्धेर्हेतुः प्रभावो यस्य स तथा । नन्वत्र सुप्तां तां कीदृक्प्रकारेणा-क्रम्य नयति । इत्याह पवनदहन योरिति । तयोराक्रमणेन; अर्थात् पवनयोगेन दहनस्य उर्ध्वगतिस्ततः प्रबुद्धा सर्पाकृतिः सा ऊर्ध्वगतिर्भवत्येव । तथाच—**

जपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीर्मतिश्च तपो हुतम् ।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ॥ इति ॥

क्रमं विशेषयति—**महामोक्षवर्त्मप्रकाशमिति**। मोक्षवर्त्म चित्रिणी-नाडीमध्यच्छिद्ररूपवर्त्म तस्य प्रकाशः प्रस्फोटनं येन क्रमेणेत्यर्थः। **शुद्ध-बुद्धिस्वभाव** इति। शुद्धबुद्धौ ब्रह्मणि स्वभावो यस्य अथवा शुद्धबुद्ध्या स्वस्मिन् आत्मनि भावो यस्येत्यर्थः। गुप्तं यथा स्यात् तथेति क्रिया-विशेषणम्। अथवा तल्लिङ्गरूपं गुप्तं मुद्रितमुखत्वेनाऽव्यक्तम्, अप्रकाशित-मुखमिति यावत्। अथात्र कुण्डलिन्युत्थापनप्रकारं विशेषेणाह **आगमकल्प-द्रुम-पञ्चमशाखायाम्**—

पद्मासने निवेश्याऽङ्के ततः पाणिद्वयं न्यसेत्।
ततो हंसमुपस्मृत्य शनैः शङ्कोचयेद् गुरुम्॥
वायुमुत्तोलयेत् तेन वर्त्मना स पुनः पुनः।
उत्तोल्य भेदयेच्चक्रं तस्याऽनुष्ठानमुच्यते॥
मूलाधारसरोजे तु त्रिकोणमतिसुन्दरम्।
कामो भवति तन्मध्ये बालार्ककोटिसन्निभम्।
तदूर्ध्वे कुण्डलीशक्ति स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्।
तथा—कामाग्निना कूर्चयोगात् परंहंसाभिलाषिणीम्॥ इति॥

तथा भूतशुद्धौ—

हृदिस्थां कुञ्चिकां कृत्वा गत्वा तदुपरे शिवे।
कण्ठाद्यं समनुप्राप्य द्वारं कुञ्चिकया हठात्॥

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसो निधिम्।
तस्याग्निरेखामानीय अध ऊर्ध्वव्यवस्थिताम्॥

इत्यूर्ध्वाम्नायवचनात्।

प्रज्वलद्भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा।
सर्वेषां जननी प्रोक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा॥

तथाच एतद्द्वयाभ्यासशीलः श्रीनाथवक्त्राद् गुरुवक्त्राद् मोक्षवर्त्मप्रकाशं क्रमं ज्ञात्वा हुङ्कारेण मूलाधारस्थितवह्निपवनयोराक्रमेण तप्तां कुण्डलिनीं कृत्वा ब्रह्मद्वारस्य

उद्घाटच परमेशानि पवनेन प्रदीपयेत् ।
हुताशनप्रतप्तां तु तापेन भृशमूर्ध्वताम् ॥
प्रसुप्तां नागिनीं लिङ्गे योनिवक्त्रे प्रबोधयेत् ।
ततः प्रचालयेद् वायुं यावन्नाडचन्तरेषु च ॥
गुरुदिष्टेन मार्गेण सकृद् वा कुम्भकेन वै ।
आक्रम्यैवं ततो जीवं सुगुप्तेन पथा भृशम् ॥
ऊर्ध्वोच्छासैरूर्ध्वमुखान् कारयेत् पङ्कजान् शिवे ।
प्रोबोधयन् शनैर्भानुं मेरुश्रृङ्गं नयेत् सुधीः ॥ इति ॥

तदयं सकलवचन-पर्यालोचनासिद्धः क्रमोऽवधीयताम् । योगी जनः विहितासने उपविश्य स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा खेचरीमुद्रया स्थिरचित्तः सन् देहान्तर्वायुमापूर्य कुम्भकं कृत्वा हृदयमाकुञ्चयेत् । तेन ऊर्ध्वोच्छ्वासोत्सरणनिवृत्तिः । ततो देहान्तरस्थ-वायोरुदरकण्ठादिव्यापकतया नाडीच्छिद्रप्रस्फोटनेनाऽधोगमनमनुभूय गुदमाकुञ्चयाऽपानं संरुध्य वायुमुत्तोल्य मूलाधारकमलकर्णिकान्तस्त्रिकोणस्थकामं वाममावर्त्तयेत् । तेनोद्दीप्तेन तत्र स्थितेन कामाग्निनोत्तप्तां कुण्डलिनीं हूङ्कारेण चेतयित्वा परमशिवसामरस्याभिलाषिणीं तां स्वम्भूलिङ्गमुखं स्फोटयित्वा तच्छिद्रेण चित्रिणीनाडीमुखमध्यं प्रापयेदिति समुदितार्थः ॥ ५० ॥

**प्रबुध्य वह्नियोगेन मनसामन्धता हता ।**
**सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूध्वं सुषुम्णया ॥**
**उद्घाटयेत् कवाटन्तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।**
**कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥**

**इति गोरक्षसंहितोक्तत्वाच्च ॥ ५० ॥**

मध्ये तां रचयति । **रुद्रयामले—**

हुङ्कारेण समुत्थाप्य शक्ति स्वाधारसंस्थिताम् ॥ इति ॥ ५० ॥

कुण्डलिनीयोगप्रकारः

**भित्त्वा लिङ्गत्रयं तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे**
**सा देवी शुद्धसत्त्वा तडिदिव विलसत्तन्तुरूपस्वरूपा ।**

इदानीं कुण्डलिनीयोगप्रकारमाह--**भित्त्वेति** । संरुद्धवर्त्मनि वर्त्मकरणं भेदः । अस्यार्थः--सा देवी कुण्डलिनी **तल्लिङ्गत्रयं** स्वयम्भू-बाणेतराख्य-लिङ्गत्रयं **भित्त्वा** तैर्लिङ्गैः संरुद्धवर्त्मनि वर्त्म कृत्वा ब्रह्माख्यायाः शिरायाः चित्रिणीनाडीसम्बन्धि तद्ग्रथितमिति यावत् । ग्रथितं **तत् सकलसरसिजं** प्राप्य तत्र **देदीप्यते**, ततः **सूक्ष्मतालक्षणेन** सूक्ष्मभावस्वरूपेण सूक्ष्मभावेनेति यावत् । तेन भावेन **विलसत्तन्तुरूपस्वरूपा** सती **परमरस-शिवे** परमरसः परमानन्दस्तन्मये शिवे सहस्रदलकर्णिकास्थ परंबिन्दुरूपशिव-समीपे अर्थाद् गत्वा**मोक्षाख्यानन्दरूपम्** अर्थात् साधकस्य नित्यानन्दरूप-मुक्ति सहसा घटयतीत्यर्थः । लिङ्गत्रयमिति । तत् पूर्वोक्तं [लिङ्गत्रयं] षट्चक्रं पञ्चशिवञ्चेति चतुर्दशग्रन्थीन् भित्त्वेति बोध्यम् । तदुक्तं **शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम्**--

गच्छन्तीं ब्रह्मरन्ध्रेण भित्त्वा ग्रन्थींश्चतुर्दश ॥

इति । तत्र लिङ्गशिवयोर्भेदप्रकारमाह **स्वतन्त्रतन्त्रे**--

षट्चक्रस्थान् शिवान् भित्त्वा देवी गच्छति निष्कलम् ।
चक्राधिष्ठानतो रूपं धृत्वा तत्तन्मनोहरम् ॥
मोहयित्वा　महेशानमानन्दाप्लुतविग्रहम् ।
रमित्वा तत्र तत्रैव यावत् प्राप्नोति शाश्वतम् ।
मोहितः परया यस्मात् तस्माद् भिन्न उदाहृतः ॥

तथा **मायातन्त्रे**--

भित्त्वा लिङ्गत्रयं देवी शक्तिमार्गेण गच्छति ।
तत्तद्रूपेण चक्रेषु निष्कलं प्राप्य निर्वृता ॥

इति । 'तत्तद्रूपेणे'ति वैखरी-मध्यमा-पश्यन्ती-भावेन । तदुक्तम्--

प्रथमे वैखरीभावो मध्यमा हृदये स्थिता ।
भ्रूमध्ये पश्यन्तीभावः पराभावस्तु बिन्दुनि ॥

भित्त्वेति । इदानीं तस्या गतिप्रकारमाह । सा देवी तल्लिङ्गत्रयं स्वयम्भू-बाणेत-राख्यलिङ्गान् भित्त्वा ब्रह्माख्यनाड्याः सकलसरसिजान् प्राप्य परमरसशिवे देदीप्यते

ततः सा प्रबोधिता तल्लिङ्गत्रयं स्वयम्भूबाणेतरलिङ्गत्रयं भित्त्वा भेदं

**ब्रह्माख्यायाः शिरायाः सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तन्**
**मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मतालक्षणेन ॥५१॥**

अस्यार्थः—परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चतस्रः शब्दोत्पादिकाः शक्तयः कुण्डलिन्यभेदरूपाः। ततः सहस्रारे कुण्डलिनीगमनकाले प्रथमे स्वयम्भूलिङ्गसमीपे वैखरीभावेन तं मोहयित्वा एवं हृदये बाणलिङ्गं मध्यमाभावेन भ्रूमध्ये इतरलिङ्गं पश्यन्तीभावेन मोहयित्वा परंबिन्दुनिकटे पराभावमाप्नोतीत्यर्थः। **चक्रभेदप्रकारमाह**—

चित्रिणीविवरे रक्तमेदपङ्कसमुद्भवान्।
सव्यदक्षपार्श्वयोश्च नालस्थान् वाहयेच्च तान्॥
पद्मान् नाडीमध्यवर्त्मरोधितान् परमेश्वरि।
नालं वामं विशेत् पद्मं तेन भेदः प्रजायते॥
यथा शिल्पवतीं रश्मिवाहीं लालयति प्रभुः।
भेदयित्वा तथा चक्रं षड् जीवेन नयेच्च ताम्॥ इति॥

तथा—षट्चक्रसन्धिमार्गेण सुषुम्णावर्त्मना तथा।
हंसेन मनुना देवीं सहस्रारं समानयेत्॥

इति। परमरस-शिवं विशेषयति—**सूक्ष्मधाम्नः प्रदीप इति**। सूक्ष्मधाम निर्वाणशक्त्यात्मक-परंबिन्दोस्तेजो हंसस्तन्मध्ये दीप्यमाने इत्यर्थः। देवीं विशेषयति—**शुद्धसत्त्वेति**। सत्त्वाऽतिसत्त्व-परमसत्त्व-शुद्धसत्त्व-विशुद्धसत्त्वेति पञ्चविधं शरीरावच्छिन्नचैतन्यमुत्तरोत्तरप्रकृष्टं तत्रेयं शुद्धसत्त्वा तुरीयेति यावत्। केन प्रकारेण मोक्षाख्यानन्दं घटयतीत्याकाङ्क्षायामुच्यते। तत्र परंबिन्दौ तां कुण्डलिनीं विलाप्य केषांचित् साधकानां शिवात्मनोरभेदेन तद्बिन्दुचिन्तनेन केषांचित् तथा शक्त्यात्मकचिन्तनेन केषांचित् परमपुरुषमयचिन्तनेन तथा केषांचित् केवलशिवशक्तिसामरस्यचिन्तनेन सा देवी मोक्षं घटयतीति। तदुक्तं **मायातन्त्रे**—

ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः।
शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिं परे विदुः॥

**भृशं दीप्तं कुर्वती सहसा सूक्ष्मतालक्षणेन मोक्षानन्दरसं घटयति च अर्थात् शिव-**

**कृत्वा तच्छिद्रेण ब्रह्माखयाया इति ल्यब्लोपे पञ्चमी ब्रह्मनाडीमारुह्य सकलसदनं**

शक्त्यात्मकं तथा ज्ञानं जगुरागमवादिनः ।
पुराणपुरुषस्यान्ये ज्ञानमाहुर्विशारदाः ॥
शिवशक्त्योः सामरस्यात्मकं प्रकृतिनोऽपरे ॥ इति ॥

'ऐक्यं जीवात्मनो'रिति समाधिविषयम् । 'योग'मिति । युज्यते परमात्मना एकीभूयते अनेनाऽसौ योगः, तं योगमित्यर्थः । समाधिमुक्त्वा ध्याने योगभेदमाह—'शिवात्मनो'रित्यादि । **'सामरस्यात्मकमि'ति** ।

स्त्रीपुंयोगे तु यत् सौख्यं सामरस्यं प्रकीर्त्तितम् ।

इति । तच्चिन्तनप्रकारमाह **बृहच्छ्रीक्रमे**—

कलां कलङ्करहितां चिदानन्दमुपेयुषीम् ।
बिम्बरूपनिदानञ्च शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥
पराविराजिवामोरुमदालसवपुःस्त्रियम् ।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥ इति ॥

'कलां' कुण्डलिनीम् । 'चिदानन्दं बिन्दुरूपशिवम् । 'उपेयुषीं' प्राप्तवतीमित्यर्थः । 'बिम्बरूपनिदानं' परशिवम् । **तथान्यत्र**—

शून्यरूपं परशिवं प्रापयित्वा तु कुण्डलीम् ।
ततः सामरसीभूतां पाययित्वा परामृतम ।
पुनस्तेन पथा देवीं प्रापयेत् कुलगह्वरम् ॥ इति ॥

यथा—साङ्गत्यं तु तयोः कृत्वा सामरस्यं विभाव्य च ।
तदुद्भूतरसेनैव तर्पयेद देहदेवताम् ॥ इति ॥

प्रकारान्तरमाह **गन्धर्वमालिकायाम्**

सहस्रारं शिवपुरं रम्यं दुःखविवर्जितम् ।
सर्वतोऽलङ्कृतैर्दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः ॥
सदाशिवपुरं रम्यं कल्पवृक्षसुशोभितम् ।
पञ्चभूतात्मकं ब्रह्म [ वृक्षं ] गुणत्रयसमन्वितम् ॥
चतुःशाखचतुर्वेदनित्यपुष्पफलान्वितम् ।
पीतं कृष्णं तथा श्वेतं रक्तपुष्पञ्च पार्वति ॥
हरितञ्च विचित्रञ्च नानापुष्पं मनोहरम् ।
एवं कल्पद्रुपं ध्यात्वा तदधो रत्नवेदिकाम् ॥

**लिङ्गस्य । सा कीदृशी ? शुद्धसत्ता चतुर्विंशतितत्त्वसम्बन्धा । पुनः कीदृशी ? विद्युदिव प्रकाशतन्तुरूपमिव स्वरूपं यस्याः सा तथा । शिवे किम्भूते ? सूक्ष्मधाम्नि सूक्ष्मं धाम प्राप्य परमरस-युक्तशिवे परमशिवे प्रदीपाभे देदीप्यते ॥ ५१ ॥**

तत्रोपरि सुपर्यङ्कं नानारत्नोपशोभितम् ।
मन्दारपुष्परचितं नानागन्धानुमोदितम् ॥
तत्रोपरि महादेवः सदा तिष्ठति सुन्दरि ।
ध्यायेत् सदाशिवं देवं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥
बहुरत्नसमाकीर्णं दीर्घबाहुं मनोहरम् ।
सुखप्रसन्ननयनं स्मेरास्यं सततं प्रिये ॥
श्रवणे कुण्डलोपेतं रत्नहारेण शोभितम् ।
शोण [गले] पद्मसहस्रेण मालया शोभितं वपुः ॥
अष्टबाहुं त्रिनयनं शिवं पद्मदलेक्षणम् ।
पादयोर्नूपुरं रम्यं शब्दब्रह्ममयं वपुः ॥
एवं स्थूलवपुस्तस्य भावयेत् कमलेक्षणे ।
पद्ममध्ये स्थितं देवं निरीहं शब्द[व]रूपवत् ।
शब्द[व]रूप-महादेव-कृत्यं नास्ति कदाचन ॥ इति ॥

तथा—ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम् ।
हंसेन मनुना देवीं सहस्रारं समानयेत् ॥
सदाशिवो महादेवो यत्रास्ते परमेश्वरि ।
देवीं रूपवतीं कामसमुल्लासविहारिणीम् ॥
मुखारबिन्दगन्धेन मोदितं परमं शिवम् ।
प्रबोध्य परमेशानि तत्रैवोपविशेत् प्रिये ॥
शिवस्य मुखपद्मं हि चुचुम्बे कुण्डली शिवे ।
सदाशिवेन देवेशि क्षणमात्रं रमेत् प्रिये ॥
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात् परमेश्वरि ।
तदुद्भवामृतं देवि लाक्षारससमायुतम् ॥
तेनाऽमृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम् ।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्याऽमृतधारया ॥
आनयेत् तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः ।
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ॥
एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति ।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥

इति । एवं प्रकारान्तरस्तन्त्रान्तरे अनुसन्धेयः ॥ ५१ ॥

**यस्य । प्रदीप्ते प्रकृष्टदीप्तिं कुर्वति ॥ ५१ ॥**

**नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज् जीवेन सार्द्धं सुधी-**
**र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि ।**

कुण्डलिनी-ध्यानयोगमुक्त्वा समाधियोगमाह—**नीत्वेति** । अस्या-यमर्थः—**समाधौ यतः योगीन्द्रः सुधीस्तां** पूर्वोक्तोत्थापनक्रमेण ब्रह्मद्वारं प्राप्तवतीं भगवतीं कुण्डलिनीं **जीवेन सार्द्धं लयवशाद्** लयक्रमेण **शुद्ध-पद्मसदने** सहस्रारमध्ये **परे** परंबिन्दुरूपे **शैवे** शिवपदे **स्वामिनि** स्वामि-निकटे नीत्वा **इष्टफलप्रदामिष्टदेवता**रूपां तां स्वामिरूप-परंबिन्दुना सहैकीभावं प्रापय्य परां परंबिन्दुस्वरूपां ध्यायेत् । **चैतन्यरूपामिति** । तदनन्तरं परंबिन्दुमपि तन्मध्यशून्यमध्ये चिदात्मनि विलाप्य शुद्धचैतन्य-रूपां ध्यायेदिति समुदायार्थः । ततः सोऽहम्भावेन जीवात्म[परमात्म]-नोरैक्यं ज्ञात्वा तत्र चित्तं विलाप्य सर्वव्यापकसम्पूर्ण-ज्ञानात्मना स्थिरचित्तः सन् तिष्ठेदिति शेषः । तदुक्तं श्रीमदा**चार्यस्वामिना**—

मकारं कारणं प्राज्ञश्चिदात्मनि विलापयेत् ।
चिदात्माऽहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसदद्वयः ॥
परमानन्दसन्दोहो वासुदेवोऽहमोमिति ।
ज्ञात्वा विवेचकं चित्तं तत्साक्षिणि विलापयेत् ॥
चिदात्मनि विलीनं चेत् तच्चित्तं नैव चालयेत् ।
पूर्णबोधात्मना तिष्ठेत् पूर्णाचलसमुद्रवत् ॥ इति ॥

इति । 'मकारमि'ति प्रणवपक्षे । अत्र 'कारणं' परंबिन्दुः । 'वासुदेवोऽहमि'ति "वैष्णवं तल्लपन्ती"त्यनेनैकवाक्यतया वैष्णवपक्षे । तेन यो यद्देवतोपासकः, स सोऽहमिति ज्ञात्वा । ॐ इति प्रणवोपासनायाम् । अन्यत्र तत्तन्मन्त्रमय-कुण्डलिनीस्वरूपं ज्ञात्वेति बोध्यम् । **तन्त्रान्तरे** –

किरणस्थं तदग्निस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम् ।
महाशून्य[मूल्य]मयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥

इति । **जीवेन सार्द्धं नीत्वेति** । पूर्वप्रदर्शितवचनाद् हंस इति जीवात्मानं हृदयस्थं दीपकलिकाकारं हंस इति मन्त्रेण मूलाधारमानीय तेन सार्द्धं कुण्डलिनीं नयेत् । **लयवशादिति** । लयक्रममाह—

**नीत्वेति । तस्यास्तु साधकाय ओमित्याह—नीत्वेति । सुधीः जनस्तां कुलकुण्ड-लिनीं जीवेन जीवात्मना सार्द्धं लयवशात् लीनां कृत्वा शैवे शिवसम्बन्धीयमोक्षे धामनि**

ततः सा शुद्धस्वभावा सूक्ष्मतालक्षणेन तडिदिव लसत्तन्तुरूपा तन्मोक्षानन्दं

ध्यायेदिष्टफलप्रदां भगवतीं चैतन्यरूपां परां
योगीन्द्रो गुरुपादपद्म-युगलालम्बी समाधौ यतः ॥ ५२ ॥

त्रिकोणाख्ये तु देवेशि लङ्कारं चिन्तयेत् ततः ।
ब्रह्माणं तत्र सञ्चिन्त्य कामदेवञ्च चिन्तयेत् ॥
जीवं तत्रैव निश्चिन्त्य प्रणवोच्चारणेन च ।
पदे च गमनं पत्यौ विसर्गनाशिकामिनि ॥
घ्राणं संचिन्त्य देवेशि महेशि प्राणवल्लभे ।
डाकिनीं परमाराध्यां शक्तिञ्च भावयेत् ततः ॥
एतानि गिरिजे मातः पृथ्वीं नीत्वा गणेश्वरि ॥

तथा—ततश्च पृथिवीं धन्यां गन्धे[न्धं] नीत्वा महेश्वरि ।
आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे ॥
कुण्डलिन्या सह प्राणं गन्धमादाय साधकः ।
सोऽहं तु मनुना देवि स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ॥
तथा—तत्कर्णिकायां वरुणं तत्रापि भावयेद् हरिम् ।
युवानं राकिणीं शक्ति चिन्तयित्वा वरानने ॥
रसनेन्द्रियकूपस्थं जलञ्च कामलालसे ।
एतानि गन्धञ्च शिवे रसं नीत्वा वरानने ।
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रसञ्च मणिपूरके ॥

तथा—तत्कर्णिकायां सुश्रोणि वह्निं संचिन्त्य साधकः ।
तत्र रुद्रः स्वयं कर्त्ता संहारे सकलस्य च ॥
लाकिनीशक्तिसंयुक्तं भावयेत् तं मनोहरम् ।
तत्र चक्षुरिन्द्रियञ्च ध्यात्वा तेजोमयं शिवे ॥
एतद्रसानि सुभगे रूपे नीत्वा महाभगे ।
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रूपञ्चाऽनाहते नयेत् ॥
तथा—तत्कर्णिकायां वायुञ्च जीवस्थाननिवासिनम् ।
तत्र योनिमण्डलञ्च बाणलिङ्गविराजितम् ॥

नीत्वा ध्यायेदिति । "अपानः कर्षति प्राणं प्रणोऽपानश्च कर्षति" इत्येतत्क्रमेण यदा प्राणो जीवात्माकर्षयति तदैव जीवात्मना सार्द्धं तस्या आनयनम् । कीदृशे ? शुक्लपद्मे

घटयति । नयवशात् नीतिवशात् । समाधौ यतो योगीशः तां कुलकुण्डलिनीं जीवात्मना सार्द्धं मोक्षधाम्नि परमशिवे सच्चिदानन्दरूपे भगवतीं चैतन्यरूपां ध्यायेत् ।

काकिनीशक्तिसंयुक्तं तत्र वायुं त्वगिन्द्रियम् ॥
एतानि रूपं संयुज्य स्पर्शे त्वमलकारिणि ।
जीवं कुण्डलिनीं स्पर्शं विशुद्धे स्थापयेत् ततः ॥

तथा--तत्कर्णिकायामाकाशं शिवञ्च शाकिनीयुतम् ।
वाचः श्रोत्रञ्च आकाशे संस्थाप्य नगनन्दिनि ॥
एतानि स्पर्शं शब्दे वै नीत्वा शङ्करि मत्प्रिये ।
जीवं कुण्डलिनीं शब्दञ्चाज्ञाचक्रे निधापयेत् ॥

इत्यन्तं कङ्कालमालिन्याम् । 'त्रिकोणाख्ये' प्रकान्तमूलाधारत्रिकोणे । तन्मध्ये लङ्कारचिन्तनमिति । एवं प्रणवोच्चारणेन जीवानयनमिति मतान्तरम् । विसर्गनाशिकामिनीति । विसर्ग उपसर्गः, कामोद्वेग इति यावत्, तं नाशयितुं शीलं यस्याः सा कुण्डलिनी । पत्यौ पदे सहस्रदल-कमलस्थ-बिन्दुमयशिवे गमनं साधकेन कार्यमिति शेषः । एतानि लङ्कार-ब्रह्म-कामदेव-डाकिनीशक्ति-घ्राणेन्द्रियाणि पृथ्वीं नीत्वा पृथिव्यां विलाप्य पृथिवीं गन्धतत्त्वे विलाप्य जीवात्मानं कुण्डलिनीं गन्धतत्त्वं प्रणवेनाकृष्य सोऽहंमन्त्रेण स्वाधिष्ठाने समानयेदिति शेषः । एवं सर्वत्र बोध्यम् । जीवं कुण्डलिनीं शब्दतत्त्वमाज्ञाचक्रे नीत्वा शब्दतत्त्वं तत्रस्थाहङ्कारे अहङ्कारं महत्तत्त्वे महत्तत्त्वं हिरण्यगर्भाख्यसूक्ष्मप्रकृतौ प्रकृतिं परबिन्दौ विलापयेत् । तदुक्तं **मन्त्रतन्त्रप्रकाशे**--

अहङ्कारे हरेद् व्योम सशब्दं तन्महत्यपि ।
महच्च सर्वशक्तीनामव्यक्ते कारणे परे ॥
सच्चिदानन्दरूपं यद् वैष्णवं कारणं परम् ।
पृथिव्यादिक्रमात् सर्वं तत्र लीनं विचिन्तयेत् ॥

इति । सर्वशक्तीनामव्यक्ते हिरण्यगर्भाख्य-सूक्ष्मप्रकृतौ महद्धरेत् । प्रकृतिञ्च परे परबिन्दुरूपकारणे हरेदित्यर्थः । अत्र—

सहस्रारपद्मे सदनं स्थानं यस्य । परे उत्कृष्टे । अथवा परे स्थानस्वामिनि सर्वेषाम-धिकारिणी, संहारकारणत्वात् । तां कीदृशीम् ? इष्टफलं प्रददातीति इष्टफलप्रदाम् ।

तन्त्रान्तरे— ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वेन निश्चला ।
एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा ।
सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं तथा ॥

समाधिकालात् प्रागेवं विचिन्त्याऽतिप्रयत्नतः ।
स्थूलसूक्ष्मक्रमात् सर्वं चिदात्मनि विलापयेत् ॥

इत्याचार्यविधानात् स्थूलानां सूक्ष्मे लयः । पृथिव्यादिकमनाहतपर्यन्तं, तेषामुक्तक्रमेण लये पृथिव्याश्रितत्वेन पादघ्राणेन्द्रिययोः पृथिवीप्रपञ्च-समुदायस्य च पृथिवीस्थाने विलापनम् । एवं जलस्थाने पाणि-रसनेन्द्रिय-जलप्रपञ्चानाम् । वह्निस्थाने पायु-चक्षुरिन्द्रिय-वह्निप्रपञ्चानाम् । वायु-स्थाने उपस्थ-त्वगिन्द्रिय-वायु-प्रपञ्चानाम् । आकाशस्थाने वाक्श्रोत्रेन्द्रिया-काशप्रपञ्चानां लयः । आज्ञाचक्रे सूक्ष्ममहदहङ्कारादिकं तेषामुक्तक्रमेण कारणे लयः । ततः क्षकाराद्यकारान्तवर्णान् विलोमेन विलाप्य 'स्थूलसूक्ष्म-क्रमात् सर्वमि'त्यत्र सर्वमित्युपादानाद् ब्रह्ममात्रावस्थितये आज्ञाचक्राध्वं-स्थित-पूर्वोपदर्शित-बिन्दुबोधिन्यादि-सकलकारणशरीरमपि विलोमेनाऽऽदि-कारणे परंबिन्दौ विलापयेदिति । तत्प्रकारमाह—

सङ्कल्प्यैवं ततो न्यासस्थानाद् वर्णांश्च संहरेत् ।
प्रतिलोमे ले क्ष-लयो लकारस्य हकारके ॥
ह-लयश्च सकारे च सलयश्च षकारके ।
क्रमेणैव-म-पर्यन्तं लयमुत्पाद्य यत्नतः ॥ इति ॥

तथा—तदर्णौं संहरेद बिन्दौ कलायां तं नियोजययेत् ।
तां नादेनान्तरं नादं नादान्ते संहरेत् पुनः ॥
तमुन्मन्यां समायोज्य विष्णुवक्त्रे नयेच्च ताम् ।
तं पुनर्गुरुवक्त्रे तु योजयेत् साधकोत्तमः ॥
ततश्च योजयेद् वर्णान्निलयेत् परमे शिवे ॥ इति ॥

'विष्णुवक्त्रे' पुंबिन्दौ ।

सूर्यबिन्दुर्मुखं प्रोक्तमधस्तादिन्दुपावकौ । इत्यादि—
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृता ।

इत्यादि-वचनयोरेकवाक्यतया तस्यैव वक्त्रत्वात् ।

नीत्वा तां पुंसि बिन्द्वात्मनि तमथ परात्मन्यथो कालतत्त्वे
तद्वै शक्तौ चिदात्मन्यपि च नयतु तां केवले धाम्नि शान्ते ।

**भगवतीं श्रीकाममाहात्म्यवतीम् । चैतन्यरूपां चेतनास्वरूपम् परां प्रकृष्टाम् । गुरो**

अन्यत्रापि—मज्जीवब्रह्मणोरैक्यं सोऽहमस्मी[हं स्यादि]ति वेदनम् ।

इति केशवाचार्यवचनैकवाक्यत्वाच्च । अत्र स्वस्वकारणे संहरणदर्शनात् नादान्तस्य व्यापकशक्तौ, तामुन्मन्यां, तां समन्यां, तां विष्णुवक्त्रे इति बोध्यम् । एवं प्रकारेण वर्णानां संहरणे षट्चक्राणां, संहारः, पद्मदलानां वर्णमयत्वात् । तदुक्तं **विश्वसारे**--

आदिवर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्त्तितम् ॥

इति । अथ वर्णपद्मोभयसंहरणप्रकारमाह **सम्मोहनतन्त्रे**--

वादि-सान्तान् दलस्थार्णान् संहरेत् कमलासने ।
तं षट्पत्रमये पद्मे बादिलान्ताक्षरान्विते ॥
स्वाधिष्ठाने समायोज्य बोधयेदाज्ञया गुरोः ॥ इत्यादि--
द्विपत्रे हक्षलसिते योजयित्वा ततः सुधीः ।
तदर्णौ संहरेद् बिन्दौ तं कलायां नियोजयेत् ॥

इत्यन्तवचनम् । ततश्च मूलकमले चतुर्वर्णं संहृत्य तत्पद्मं स्वाधिष्ठाने संहरेत् । एवंक्रमेणाऽऽज्ञाचक्रस्थ-हक्षपर्यन्तं संहृत्य तत्पद्मं बिन्दौ, बिन्दुं बोधिन्याम् एवं पूर्ववत् सर्वं परंबिन्दौ विलापयेदिति । एवञ्चाऽऽज्ञाचक्र-संहरणे तत्कर्णिकास्थ-हाकिनीतरलिङ्ग-प्रणवादीनां निराधारस्थित्य-सम्भवात् प्रकृतिपर्यन्त-संहरणानन्तरं तानपि परंबिन्दौ संहरेत् । शुद्धपद्म-सदने किम्भूते ? **मोक्षे धामनि** मुक्तिसम्पादकस्थाने इत्यर्थः । योगीन्द्रं विशेषयति--**गुरुपादपद्मयुगलालम्बीति** । गुरूपदेशेनैव सर्वसिद्धिरित्य-तस्तत्पदाश्रितः सन्निति भावः । **समाधौ यत** इति । समाधिलक्षणमाह **कुलार्णवे**--

यदत्र नात्र निर्भासः स्तिमितोदधिवत् स्मृतम् ।
स्वरूपशून्यं यद् ध्यानं तत् समाधिर्विधीयते ॥
तथान्यत्र--समत्वभावना नित्यं जीवात्म-परमात्मनोः ।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥ इति ॥

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इति **पातञ्जलसूत्रम्** । तस्मिन् यतः तदभ्यास-युक्त इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

**पादपद्मयुगलालम्बी योगीशः एवंक्रमेण भावयेदिति सम्बन्धः । समाधौ ध्यानधारणादौ यतः ॥ ५२ ॥**

तन्निर्गुणमिदम् । इत्यादि ॥ ५२ ॥

कुण्डलिन्या मूलाधारे प्रत्यावर्त्तनप्रकारः

**लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली**
**नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी ।**

उक्तप्रकार-सकलयोगचिन्तनान्तरं यत् कर्त्तव्यं तदाह—**लाक्षाभमिति** । अस्यार्थः—कुण्डलिनी सुन्दरी **परशिवात् परमामृतं पीत्वा** नित्यानन्दमहोदयान्निःसृत्य कुलपथात् चित्रिणीनाडीमध्यस्थ-ब्रह्मपथं प्राप्य मूले मूलाधारे पुनः प्रविशेदित्यन्वयः । **पीत्वेति** पूर्वोक्त-तत्तद्ध्यानानन्तरं शिवशक्तयोः सामरस्यं विभाव्य सामरस्यानन्देन परशिवादुत्पन्नपरमामृतेन कुण्डलिनीं तर्पयेत् । तत् तर्पणामृतं पीत्वेत्यर्थः ।

**लाक्षाभमिति । इदानीमस्या आगमनं स्वस्थाने इति तदाह । सा कुण्डलिनी पूर्णा-**

ततो लाक्षाभं रक्तवर्णं परमामृतं कुण्डलिनी पीत्वा पूर्णानन्दमहोदयात् परशिवात् शिवसकाशात् प्राक्प्रतिपादितोन्मयादिसृष्टिमार्गेण कुलपथात् कुलपथमारुह्य ब्रह्मारुह्य मूलाधारे स्वस्थाने प्रविशेत् । ततो योगी तद्दिव्यामृतधारया योगपरम्पराप्राप्तया ब्रह्माण्डस्थितं शरीरस्थं दवतं डाकिन्यादिकं प्रीणयेत् । श्रीनाथवक्त्रादिति यदुक्तं तत् **गोरक्षसंहितादौ** स्पष्टीकृतम् । यथा—

प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता हुता ।
सूचीव गुणमादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ॥
ज्वलन्ती भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा ।
उद्घाटयेत् कवाटञ्च यथा कुञ्चिकया दृढम् ॥
कुण्डलिन्या तथा योगी ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत् ॥

कृत्वा संपुटितौ करौ दृढतरं बद्ध्वा तु पद्मासनं
गाढं वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यानञ्च तच्चेतसि ।
वारं वारमपानमूर्ध्वमनिशं प्रोत्सारयन् पूरयन्
प्राणं मुञ्चति मोक्षमेति शनकैः शक्तिप्रभावाद् यतः ॥

कुञ्चिकया कुलुपकारीत्याख्यया । **निर्वाणपद्धत्यामपि**—

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन् मनः ।
गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ॥
भ्रमद्योनिगतं ध्यायेत् कामं बन्धूकसन्निभम् ।
ज्वलत्कालानलप्रख्यं तडित्कोटिसमप्रभम् ॥
तदूर्ध्वे तु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमा कला ।
तया सहितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥

**तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं**
**योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम् ॥ ५३ ॥**

साङ्गत्यं तु तयोः कृत्वा पाययित्वा परमामृतम् ।

इति पूर्वोक्तवचने 'पाययित्वे'त्यनेन पानकार्यप्रेरणबोधनात् ।

अमृतं विशेषयति-**लाक्षाभमिति**। अलक्तरसवद्रक्ताभमित्यर्थः । **नित्यानन्दमहोदयादिति** । नित्यानन्दस्य महोदये महाप्रकाशो यत्र तस्मादित्यर्थः । मूले--**विशेदिति** । येन प्रकारेणोत्तानन पुनस्तेन प्रकारेण मूलाधारे आनयनम् । तेन यदा लिङ्गादिभेदक्रमेणोर्ध्वं गच्छति तदा तद्रूपेणैव पुनराधारमायाति । यदुक्तं **श्रीमदाचार्यस्वामिना**—

**नन्दस्य महान् उदयो यस्मात् परमशिवात् सदाशिवात् परमामृतं पीत्वा तेनैव कुलपथेन**

गच्छन्ती ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु ।
अमृतं यद्विसर्गस्थं परमानन्दलक्षणम् ॥
द्रुतरक्तं तेजसाढ्यं धारापातप्रवर्षणम् ।
पीत्वा कुलामृतरसं पुनरेव कुलं विशेत् ॥

सा च प्राणः समाख्यातस्तन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि ।
एवमभ्यस्यमानस्य अहर्निशनिबन्धनात् ।
चतुर्विधा तु या सृष्टिरस्यां योनौ प्रजायते ॥

पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशिवान्तिकम् ।
योनिमुद्रा परा सा तु बन्धस्तस्याः प्रकीर्त्तितः ॥

चतुर्विधेति **नैयायिकमते** पुरुषात् **सांख्यमते** प्रकृतिपुरुषाभ्यां **पातञ्जलमते** प्रकृतितः **मीमांसामते** अदृष्टात् सृष्टिः । तत्र योगो द्विविधः । यथा **शारदायाम्**—

पिण्डं भवेत् कुण्डलिनी शिवात्मा पदञ्च हंसः सकलान्तरात्मा ।
रूपं भवेद् बिन्दुरमन्दकान्तिरतीतरूपं शिवसामरस्यम् ॥
पिण्डादियोगं शिवसामरस्यात् सबीजयोगं प्रवदन्ति सन्तः ।
शिवे लयं नित्यगुणाभियुक्तं निर्बीजयोगं फलमव्यपेक्षम् ॥ इति ॥

तथान्यत्र--दिक्कालादिविवर्जिते परशिवे चैतन्यमात्रात्मके ।
इत्यादि । **स्वच्छन्दसंग्रहेऽपि** —

पिण्ड कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्त्तितः ।
रूपं बिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतस्तु चिन्मयः ॥

**तन्त्रान्तरेऽपि**--पिण्डे युक्ताः पदे युक्ता रूपे युक्ता षडाननः ।
रूपातीते तु ये युक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥

मतभेदे अनेकानि पद्मान्याह **स्वच्छन्दसंग्रहेऽपि** —

अधश्चोर्ध्वं सुषुम्णायाः सहस्रदलसंयुतम् ।
रक्तं श्वेतञ्च साहस्रदलस्थं शक्तिसंयुतम् ॥

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टबलयं ।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी ॥

इति । अत्र श्लोके--रसाम्नायमहसे'ति । आम्नायते कथ्यते विधीयत इति यावत्, तेनाम्नायो विधानम् । महः प्रकाशः । पुन'रित्यनेन पूर्वरूपरस-विधानप्रकाशेन स्वां भूमिं मूलाधारमवाप्य इत्यर्थात् तथा प्रतीयते । लय-क्रमेण गमने तु पुनः सृष्टिक्रमेणाऽऽगमनम् ।

तदुक्तं यथा--ततः सा कुण्डली शक्तिर्मुद्राकारा सुरेश्वरी ।
पुनस्तेन प्रकारेण गच्छत्याधारपङ्कजे ॥

**मूले मूलाधारपद्मे । सा कीदृशी ? सुन्दरी । अमृतं कीदृशम् ? लाक्षाभं रजःसम्बन्धात्,**

ऊर्ध्वाधो मुखमूलन्तु कर्णिकाकेशरान्वितम् ।
शक्तिरूपं महादेवि कुलाकुलमयं शुभम् ॥
पङ्कजद्वयमीशानि स्थित शाश्वतमव्ययम् ।
तयोर्मध्ये सुषुम्णान्तस्त्रिशदाधारपङ्कजम् ॥
शक्तिरूपं शिवाकारं सर्वाध्यासं निजालयम् ।

नीत्वेति शेषः । तथा कियत् कियदूर्ध्वे पङ्कजानि । तदाह तत्रैव--

आधारपङ्कजस्योर्ध्वे सार्द्धद्वयङ्गुलकोपरि ।
तैजसं साष्टपत्रञ्च पीतकर्णिकया युतम् ॥
हृल्लेखा कर्णिकामध्ये स्थिता लिङ्गादिदेवता ।
एतस्माद् द्वयङ्गुलस्योर्ध्वे स्वाधिष्ठानं षडस्रकम् ॥
आप्यञ्च राकिणीशक्ति-पूर्वाभिः शक्तिभिर्युतम् ।
ततश्च भावयेद् देवि नाभिमष्टाङ्गुलोपरि ॥
तत् पद्मं मणिपूरञ्च दशपत्रं सुशोभितम् ।
लाकिनीपध्यगं तच्च तामर्थादाभिरावृतम् ॥
चतुर्दशाङ्गुलादूर्ध्वे मणिपूराख्यपङ्कज त् ।
पङ्कजं काकिनीमध्यं वायव्यं द्वादशारकम् ॥
तत्रस्थकालरात्र्यादिशक्तिभिश्च समावृतम् ।
तत्रस्थसूर्यबिम्बे च नादो यानादिपीठकम् ॥
एकादशाङ्गुलादूर्ध्वं विशुद्धं षोडशच्छदम् ।
मध्यगा शाकिनी बाह्यपत्रेषु परमेश्वरि ॥
अमृताद्यक्षरान्तास्था चन्द्रबिम्बं तदूर्ध्वगा ।
कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरङ्गुली ॥

इति । तथा **भूतशुद्धिप्रकरणे**—

परात्मनः पृथिव्यादि तद्वत् तत्त्वानि च क्रमात् ।
जीवं कुण्डलिनीं चापि स्वस्थानं प्रापयेत् क्रमात् ॥ इति ॥

विशेषस्तु—प्रकाशमाना प्रथम-प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमाना ॥इति॥ तदनन्तरं **तद्दिव्यामृतधारया** पूर्वदर्शित-शिवशक्तिसामरस्योत्पन्न-परमामृतस्य ब्रह्मरन्ध्राद् मूलाधारपर्यन्त-गलितधारया । अत एवोक्तं तृतीयश्लोके—"ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशम्" इति । **स्थिरमतिः** स योगी । दैवतमिष्टदैवतं षट्चक्रस्थडाकिन्यादिदैवतं च संतर्पयेदित्यर्थः ।

**ईदृशी भावनैव कर्त्तव्या, महाग्रन्थोक्तत्वात् । अतो योगी ध्यानपरम्पराक्रमेण ज्ञातया**

आज्ञाचक्रं द्विपत्राब्जं हक्षद्विदलसंयुतम् ।
हंसवती क्षमा पार्श्वद्वये मध्ये तु हाकिनी ॥

तन्त्रान्तरे ब्रह्मणः स्वाधिष्ठानमुक्तं यथा—

स्वाधिष्ठानं षड्दलोपेतमुद्यद्विद्युत्प्रेक्षं वादिलान्तैश्च वर्णैः ।
युक्तं सावित्रीसहितं विरिञ्चि ध्यायेदस्मिन् राकिणीं देवताञ्च ॥

**योगिनीहृदये**—एताश्चतस्रः शक्तयस्तु का पू जा उ इति क्रमात् ।
पीठाः कन्दे पदे रूपे रूपातीते क्रमाद् विदुः ॥

एतास्तत्र पूर्वोक्ता अम्बिकादयश्चतस्रः कामरूपादिपीठत्वेन परिणताः तथा च मूलाधारे कामरूपं, हृदि पूर्णगिरिः भ्रूमध्ये जालन्धरः, सहस्रारे उड्डीयानः । न च 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि श्रुत्या ब्रह्मण एकत्वमभिहितम् । शक्तिस्तावत् केति चेत् ? तद्ब्रह्मशिवशक्तिसामरस्यपरत्वमेव । यथा **कुलार्णवे**—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।
मम तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥

**स्वच्छन्दसंग्रहेऽपि**—अनयोः सामरस्यं यत् परस्मिन् महसि ध्रुवम् ।

**कुर्मपुराणे** ईश्वरगीतायां शिववाक्यम्—

एकया मम सायुज्यमनादिनिधनं स्फुटम् ।
पुंसोऽभूदन्यया भूतिमन्यया तत्तिरोहितम् ॥

एकया मायात्मिकया शक्त्या विशिष्टस्य मम अनादिनिधनं सायुज्यं सहयोगं अर्द्धनारीश्वरात्मकमभूत् । अन्यया आद्यया ज्ञानात्मिकयेति यावद् विशिष्टपुंसो भूतिमुत्पत्तिं जानीहि । अन्यथा चिच्छक्त्या तत्तिरोहितं, तयैव क्षणे तिरोहितम्, ब्रह्माविनाभूतम् । अत एव **तैत्तिरीयवाक्यम्**—

यत् तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तमपरं परम् ॥

**कलिकापुराणेऽपि**—चितिशक्तिं निराकारां परंब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥

तेनाऽमृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम् ।
षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्याऽमृतधारया ।।

इति पूर्वोक्तवचनात् । अमृतधारायां विशेषयति—**योगपरम्पराविदितयेति** । योगस्य गुरूपदेशपरम्पराप्राप्तत्वाद् योगपरम्परेत्युक्तिरिति भावः । तेन गुरूपदेशपरम्पराविदितयेति फलितार्थः । अमृतं विशेषयति-**ब्रह्माण्डभाण्डस्थित**मिति । ब्रह्माण्डस्य भाण्डमाधारपात्रं कुण्डलिनी, तस्याः सर्वेषां योनिरूपत्वात् तत्र स्थितं कुण्डलिनीपात्रस्थितमित्यर्थः ।। ५३ ।।

**तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन् ब्रह्माण्डभाण्डस्थितं सर्वदैवतं सन्तर्पयेत्** ।। ५३ ।।

जन्मखण्डे राधिकां प्रति कृष्णवाक्यम्—

यदा तेजःस्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा ।
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी ।।

तन्त्रेऽपि——न शिवेन विना शक्तिः न शक्त्या रहितः शिवः ।
अतस्तयोरभेदश्च चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।।

वेदान्तेऽपि "चिच्छक्तिर्ब्रह्माश्रिता ।" तथा——

मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते ।
मायासम्बन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा ।।

इत्युक्तम् । तदेव सामरस्यं परंब्रह्म सगुणशिव-शक्त्यादिनानारूपेण परिणमते । यथा

**विश्वसारे**—कालेन प्रेरयेन् मायां सृष्टेरुत्पत्तिहेतवे ।
या मूलप्रकृतिः प्रोक्ता सा माया परिकीर्त्तिता ।।
योऽयं सदाशिवः प्रोक्तः स एव पुरुषः परः ।
एकं ब्रह्म द्विधा भूत्वा सृष्टिरेषा विधीयते ।।
अर्द्धेन वनिता भूत्वा अर्द्धेन पुरुषस्तथा ।
तावुभौ च समौ कृत्वा सृष्टिव्यक्तिं नयेत् सुधीः ।।

मायावच्छिन्नेश्वरस्य षडङ्गन्याह **कूर्मपुराणादौ**——

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।। ५३ ।।

नारायणो वैदिकश्च भट्टाचार्यः समीरितः ।
तस्यात्मजो वामदेवभट्टाचार्यस्तथैव च ।
तस्यात्मजो विश्वनाथस्तेनेयं रचिता मुदा ।।

षट्चक्रयोगक्रमज्ञानफलम्

ज्ञात्वैतत् क्रममुत्तमं यतमना योगी यमाद्यैर्युतः
श्रीदीक्षागुरु - पादपद्म - युगलामोदप्रवाहोदयात् ।
संसारे न हि जन्यते न हि कदा संक्षीयते संक्षये
नित्यानन्दपरम्पराप्रमुदितः शान्तः सतामग्रणी ॥ ५४ ॥

षट्चक्रश्लोकाध्ययनफलम्

योऽधीते निशि सन्ध्ययोरथ दिवा योगी स्वभावे स्थितो
मोक्षज्ञाननिदानमेतदमलं शुद्धञ्च गुप्तं परम् ।
श्रीमत् श्रीगुरुपादपद्मयुगलालम्बी यतान्तर्मना-
स्तस्यावश्यमभीष्टदैवतपदे चेतो नरीनृत्यते ॥ ५५ ॥

उक्तयोगक्रमज्ञानफलमाह--ज्ञात्वैदिति । **श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयादिति** । आमोद आनन्दस्तस्य प्रवाहोऽविच्छिन्नोत्तरसम्बन्धस्तेन नित्यानन्द इति यावत्, तस्योदयो यस्मात् तादृशपादद्मयुगलाज् ज्ञात्वेत्यर्थः । दीक्षागुरुरिति । प्रथमोपस्थितत्वेन गौरवातिशयेन च तद्ग्रहणम् । तदभावे अन्यगुरोरपि ज्ञातव्यम् ।

अत एवोक्तम्—मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।

इति **नित्यानन्दपरम्पराप्रमुदित** इति । नित्यानन्दधारारूप-हर्षयुक्त इत्यर्थः । सतां योगिरूपप्रशस्तजनानामग्रगण्य इत्यर्थः ॥ ५४ ।

षट्चक्रश्लोकाध्ययनफलमाह—योऽधीत इति । **स्वभावे स्थित** आत्मभावे नियुक्त इत्यर्थः । **यतान्तर्मना** इति । यतं योगाभ्यासेन स्थिरीकृतमन्तरात्मनि मनो येन तादृश इत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ५५ ॥

इति श्रीपूर्णानन्दयतिविरचित श्रीतत्वचिन्तामण्यन्तर्गत-षट्चक्रविवरण-श्लोकार्थपरिष्कारिणी-व्याख्या समाप्ता ।

**ज्ञात्वैतदिति । एतदुत्तमं क्रमं ज्ञात्वा संयतमनाः सन् योगी जनो यमाद्यभ्यासेषु श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयात् संसारे न हि जन्यते । न हि कदा संक्षये संक्षीयते । प्रलयेऽपि तस्य क्षयो नास्तीत्यर्थः । स कीदृशीः ? पूर्णानन्दपरम्परया प्रमुदितं स्वान्तर्यस्य स तथा । सतामग्रणीरपि भवति ॥ ५४ ॥**

**योऽधीते इति । अथैतत् सुगुप्तक्रमं यः स्वीयभावस्थितः सन् निशि सन्ध्ययोर्दिवा अधीते तस्याऽवश्यमेव अभीष्टदैवतपदे चित्तं मुहुर्नृत्यति । यतं निश्चलम् अन्तर्मनो यस्य स तथेति ॥ ५५ ॥**

**इति श्रीमच्छङ्करकृतषट्चक्रभेदटिप्पणी समाप्ता ।**

इति श्रीविश्वनाथकृत**विवृताख्यटीका** समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

श्रीपूर्णानन्दयतिविरचितम्

# षट्चक्रनिरूपणम्

सविमर्श'प्रह्लाद'हिन्दीव्याख्यासहितम्

आत्मा त्वभिज्ञातनिजस्वभावः
पूर्णत्वमाप्तो गतमोहशोकः ।
देहस्थितत्वं गगनाद्यशेषं
स्वव्यापकैकत्वमुपेत्य चास्ते ।।

योऽयं शिवोऽस्ति सर्वात्मा सर्वाकृतिस्वभावकः ।
तस्मिन् मयि कुतो भेदः कथं कस्माद्भवेदपि ।।

॥ श्रीः ॥

# षट्चक्रनिरूपणम्

## सविमर्श'प्रह्लाद'हिन्दीव्याख्यासहितम्

### योगनिरूपण करनेकी प्रतिज्ञा

अथ तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्‌गतः।
उच्यते परमानन्द-निर्वाह-प्रथमाङ्कुरः ॥ * ॥

इसके अनन्तर मैं ( पूर्णानन्द यति ) तन्त्रके अनुसार षट्चक्रादिक्रमघटित परमानन्द ब्रह्मकी ज्ञानप्राप्तिके लिए प्रथमकारणीभूत कर्मके स्वरूपको कहता हूँ।

**विमर्श**—ग्रन्थकार श्री पूर्णानन्द यतिने प्रथम श्लोकमें ही योगनिरूपणकी प्रतिज्ञा करते हुए सर्वप्रथम मङ्गलस्वरूप आनन्तर्यार्थक **'अथ'** शब्दका प्रयोग किया है। यदि अथ शब्द आनन्तर्यार्थक है तो प्रश्न उठता है कि किसके अनन्तर ? कहते हैं—**'षट्चक्रनिरूपणम्'** श्री पूर्णानन्द यति विरचित 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थका षष्ठ अध्याय है। इससे पूर्ववर्ती पाँच अध्यायोंमें जैसे—( १ ) प्रथम अध्यायमें तत्त्वबोध, ( २ ) द्वितीय अध्यायमें दीक्षाकी विधियाँ, ( ३ ) तृतीय अध्यायमें दीक्षाके लिए स्थानका निर्णय, कूर्मचक्र, वास्तुयाग, विघ्ननाशक मण्डल तथा मण्डलमें पूजे जानेवाले देवताओंके मन्त्र, ( ४ ) चतुर्थ अध्यायमें सम्बन्धित मण्डपोंके निर्माणका विधान तथा ( ५ ) पञ्चम अध्यायमें दीक्षासे सम्बन्धित देवताओंके स्थान एवं पूजाविधिसे सम्बन्धित कुम्भोंके आकार तथा धातुका निर्णय है। इन पाँचों अध्यायोंसे यह विदित होता है कि विधिपूर्वक गुरुसे दीक्षा ग्रहणके अनन्तर ही उनके निर्देशानुसार कुण्डलिनी ज्ञान प्राप्त करे, अतः ग्रन्थकारने आनन्तर्यार्थक अथ शब्दका प्रयोग किया है। **षट्चक्रादिक्रमोद्‌गतः**—शरीरके अन्दर छः चक्र हैं; जैसे—( १ ) मूलाधार, ( २ ) स्वाधिष्ठान, ( ३ ) मणिपूर, ( ४ ) अनाहत, ( ५ ) विशुद्ध तथा ( ६ ) आज्ञा चक्र। 'आदि' पदसे सहस्रदल-कमल अर्थात् सहस्रारका ग्रहण होता है। **'क्रम'** शब्दसे यहाँपर क्रमशः चक्रादिके भेदन करनेका निर्देशन है। **परमानन्दनिर्वाहप्रथमाङ्कुरः**—परमानन्द ब्रह्म है। **'निर्वाह'** शब्दका अर्थ है—ज्ञानप्राप्ति होना अर्थात् उसका साक्षात्कार होना। उस

### इडादि नाड़ीत्रयका स्वरूप

**मेरोर्बाह्य-प्रदेशे शशि-मिहिर-शिरे सव्य-दक्षे निषण्णे**
**मध्ये नाडी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ।**
**धूस्तूर-स्मेर-पुष्प-ग्रथिततम-वपुः कन्दमध्याच्छिरस्था**
**वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलन्ती ।। १ ।।**

---

ब्रह्मके साक्षात्कारके लिए आदि-कारण क्या है ? कहते हैं--षट्चक्रादिके क्रमसे घटित कर्म है । इसी कर्मके स्वरूपका निरूपण ग्रन्थकारने आगे किया है ।। * ।।

मेरुदण्डके बाह्यप्रदेशमें वाम तथा दक्षिण भागमें क्रमशः इडा तथा पिङ्गला नामक दो नाडियाँ स्थित हैं । मेरुदण्डके मध्यरन्ध्र में सुषुम्णा नामक नाड़ी स्थित है, जो कि सत्त्व, रज तथा तम–त्रिगुणमयी है और चन्द्र, सूर्य तथा अग्निके समान प्रकाशमान् है । खिले हुए धतूरेके पुष्पके समान शरीरवाली यह सुषुम्णा नाड़ी नाडियोंके उत्पत्तिस्थान कन्दके मध्यसे निकलकर मस्तकमें स्थित सहस्रदल पर्यन्त गयी है । इसके मध्यभागमें देदीप्यमान् वज्रा नामक एक अन्य नाड़ी लिङ्गमूलसे-निकलकर मस्तक पर्यन्त गयी है ।

**विमर्श**--नाड़ी तथा षट्चक्रके ज्ञानके बिना ब्रह्मप्राप्ति नहीं हो सकती है, अतः ग्रन्थकार सर्वप्रथम उपयुक्त नाडियोंका निरूपण कर रहे हैं—मानव शरीरमें बहत्तर हजार नाड़ियाँ विद्यमान हैं । उनमें तीन प्रसिद्ध नाडियाँ हैं; जैसे--( १ ) इडा, ( २ ) पिङ्गला तथा ( ३ ) सुषुम्णा । इनमें भी सुषुम्णा नाड़ी प्रधान है । इडा नाड़ीका अधिष्ठातृदेवता चन्द्र है तथा पिङ्गलाका सूर्य है, अतः इडाको चन्द्र नाड़ी तथा पिङ्गलाको सूर्यनाडी भी कहते हैं । इडा नाड़ी मेरुदण्डके वामभागमें तथा पिङ्गला नाड़ी दक्षिण भागमें स्थित हैं । ये दोनों नाड़ियाँ नाडियोंके उत्पत्तिस्थान नाड़ीकन्दसे निकलकर नासारन्ध्र पर्यन्त चली गयी हैं । मेरुदण्डके मध्य छिद्रभागमें सुषुम्णा नाड़ी स्थित है । यह नाड़ी सत्त्व, रज तथा तम–इन तीनों गुणोंसे युक्त है । चन्द्र, सूर्य तथा अग्निके समान इसका रूप है । यह नाड़ी कन्दके मध्यभागसे निकली है । नाड़ियोंके उत्पत्तिस्थानको कन्द कहते हैं । गुदा-से दो अङ्गुल ऊपर तथा लिङ्गमूलसे दो अङ्गुल नीचे चार अङ्गुल विस्तार पक्षीके अण्डेके समान नाडियोंका उत्पत्तिस्थान नाडीकन्द स्थित है । यहींसे बहत्तर हजार नाडियोंकी उत्पत्ति हुई है, अतः इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णाका भी यही उत्पत्तिस्थान है । सुषुम्णा नाड़ीका शरीर खिले हुए धतूरेके पुष्पके समान है । यही नाड़ी मस्तकमें स्थित सहस्रार पर्यन्त गयी है । इसके मध्यमें वज्रा नाड़ी है जो कि देदीप्यमान् है । इसका उत्पत्तिस्थान लिङ्गमूल है । यहींसे यह मस्तकमें स्थित सहस्रार पर्यन्त गयी है ।। १ ।।

### चित्रिणी नाड़ीकी संस्थिति

तन्मध्ये सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या
लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान् ।
भित्त्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्धबोधस्वरूपा
तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुखकुहरादादिदेवान्तसंस्था ॥ २ ॥

उस वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें चित्रिणी नाड़ी स्थित है। वह प्रणवके समान देदीप्यमान् है तथा मकड़ीके सूतके समान अतिसूक्ष्म होनेसे योगियोंको योगके द्वारा विदित होनेवाली है। वह नाड़ी मेरुके मध्यान्तरमें स्थित समस्त कमलोंको भेद कर उन्हें गूँथकर अत्यधिक प्रकाशित कर रही है। उस चित्रिणी नाड़ीके मध्यमें शुद्ध ज्ञानस्वरूपा ब्रह्म नाड़ी स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रसे निकलकर आदि-देव अर्थात् सहस्रदलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित ब्रह्म पर्यन्त चली गयी है।

**विमर्श**—चित्रिणी नाड़ीकी स्थिति वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें है। यह चित्रिणी नाड़ी मकड़ीके सूतके समान अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे योगियोंको योगके द्वारा ही विदित होती है। यही नाड़ी समस्त कमलोंका भेदन करती है। कमलोंकी स्थितिके सम्बन्धमें **'मेरुमध्यान्तरस्थान्'** शब्द सूचित करता है--पूर्व श्लोकके अनुसार यह तो निश्चित है कि मेरुदण्डके मध्यभागमें सुषुम्णा नाड़ी स्थित है। उसी सुषुम्णाके मध्यभागमें वज्रा नाड़ीकी स्थिति है। ये दोनों नाड़ियाँ कमलोंका भेदन नहीं करती हैं। भेदन करनेवाली नाड़ी एकमात्र चित्रिणी है; अतः कमलोंकी स्थिति इस प्रकारसे है—मेरुके मध्यभागमें सुषुम्णा नाड़ी है, सुषुम्णा नाड़ीके मध्यभागमें वज्रा नाड़ी है और वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें कमलोंकी स्थिति है। यहाँपर एक प्रश्न इस प्रकारसे उठता है कि क्या वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें सभी कमलोंकी स्थिति है ? तो कहते हैं—वज्रा नाड़ीके मध्यमें सभी कमलोंकी स्थिति नहीं हो सकती है; क्योंकि मूलाधार कमलके निरूपणमें कहा गया है कि मूलाधारका स्थान 'ध्वजाधो गुदोर्ध्वम्' अर्थात् लिङ्गमूलसे नीचे तथा गुदाके ऊपर है, और भी 'सुषुम्णास्यलग्नम्' सुषुम्णाके मुखमें संलग्न है। पूर्वश्लोकमें वज्राका उत्पत्तिस्थान लिङ्गमूल बताया गया है। लिङ्गमूलके नीचे मूलाधार कमलका स्थान होनेसे वज्राके अन्दर मूलाधारका स्थान नहीं हो सकता है। केवल मूलाधार ही सुषुम्णा मात्रके मध्यभागमें स्थित है, मूलधार कमलको छोड़कर अन्य कमलोंकी स्थिति वज्रा नाड़ीके मध्यमें है। मूलाधार कमल वज्रा नाड़ीके अधोभागमें स्थित है। मूलाधारस्थ त्रिकोणके निरूपणमें भी त्रिकोणकी स्थिति 'वज्राख्यावक्त्रदेशे'के अनुसार वज्राके मुखमें है। वज्राका उत्पत्तिस्थान लिङ्गमूल है, तो उसका मुख लिङ्गमूलके अधोभागमें होगा। इससे यह विदित होता है कि मूलाधार कमल मात्र सुषुम्णाके मध्यभागमें स्थित है। श्लोकमें 'मेरुमध्यान्तर-

**विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा**
**शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखमयी शुद्धबोधस्वभावा ।**
**ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशं**
**ग्रन्थिस्थानं तदेतद् वदनमिति सुषुम्णाख्यनाड्या लपन्ति ॥ ३ ॥**

---

स्थान्' शब्दका प्रयोग किया गया है। मेरुके मध्यमें रहनेवाली सुषुम्णा है। उसके मध्यमें रहनेवाली वज्रा नाड़ी है। उसमें रहनेवाले 'तत्स्थाः सरसिजाः' कमल हैं। इस प्रकारसे जब समझा जाय तो मूलाधारको छोड़ अन्य कमलोंका बोध होगा, किन्तु मूलाधारको केवल सुषुम्णाके मध्यभागमें तथा वज्राके बहिर्भागमें स्थित मानना होगा, अतः ग्रन्थकारने स्वाधिष्ठानके निरूपणप्रसङ्गमें स्वाधिष्ठानको 'सौषुम्णमध्यघटितम्' कहा है। इसका अर्थ इस प्रकारसे है—सुषुम्णाया इदं सौषुम्णम्, वज्रानाड्यादि, तन्मध्यभूतं पद्मम्, तस्येदमित्यर्थे अण् प्रत्ययः। इससे स्पष्ट होता है कि सुषुम्णाके मध्यमें वज्रा नाड़ी है तथा उस वज्रा नाड़ीके मध्यमें स्वाधिष्ठान कमल है। आगेके मणिपूरादि कमल भी वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें स्थित हैं। मूलाधारादि समस्त कमलोंका भेदन चित्रिणी नाड़ी करती है, अतः इसका उत्पत्तिस्थान मूलाधारके नीचे होना चाहिए, अतः चित्रिणीका उत्पत्तिस्थान स्वयम्भू लिङ्गका छिद्रभाग है। इसी चित्रिणी नाड़ीके मध्यभागमें ब्रह्म नाड़ी है। वस्तुतः ब्रह्म नाड़ी नामक कोई एक अन्य नाड़ी नहीं है। चित्रिणी ही ब्रह्म नाड़ी है; क्योंकि इसीके अन्दरमें सहस्रारस्थित ब्रह्म पर्यन्त जाननेके लिए पदवी—मार्ग है। 'नाड़ी' शब्दका अर्थ है पदवी—मार्ग। यह चित्रिणी नाड़ी स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रभागसे निकलकर सहस्रारके मध्यमें स्थित ब्रह्म पर्यन्त चली गयी है। इसीलिए इसे ब्रह्म नाड़ी कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि मेरुके मध्यभागमें सुषुम्णा नाड़ी स्थित है। सुषुम्णा नाड़ीके मध्यभागमें वज्रा नाड़ी स्थित है। वज्राके मध्यमें चित्रिणी अर्थात् ब्रह्म नाड़ी स्थित है। इसी ब्रह्म नाड़ीके मध्यमें कुण्डलिनी ब्रह्म पर्यन्त जाती है, अतः जहाँ कहीं भी ब्रह्म नाड़ीका नाम आता है उसे चित्रिणी नाड़ी समझना चाहिए अर्थात् चित्रिणी नाड़ीका दूसरा नाम ब्रह्म नाड़ी है। यह सङ्गत है। चित्रिणी नाड़ी आज्ञा चक्रका भी भेदन करनेसे आज्ञा चक्रस्थित प्रणवके प्रकाशसे स्वयं प्रकाशित होती है तथा समस्त कमलोंको भी प्रकाशित करती है; क्योंकि समस्त कमल एकमात्र सूत चित्रिणी नाड़ीसे गुँथे हुए हैं। यह ब्रह्म नाड़ी विशुद्ध ज्ञानस्वरूपा है ॥ २ ॥

यह ब्रह्म नाड़ी विजलीकी माला जैसी प्रकाशमान्, मुनियोंके हृदयमें देदीप्यमान्, तन्तु समान अत्यन्त सूक्ष्म, शुद्धज्ञानका प्रकाश करनेवाली, सर्वानन्दमयी, शुद्धज्ञानको प्रदान करनेवाली है। इसीके मुखमें ब्रह्मद्वार है, जिसमें कि अमृतका धार प्रवाहित होता रहता है। इसी द्वारके समीपवर्ती प्रदेशको ग्रन्थिस्थान कहते हैं। योगी पुरुष इसे सुषुम्णा नाड़ीका मुखप्रदेश कहते हैं।

### मूलाधार चक्रका निरूपण

अथाधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं
ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् ।
अधोवक्त्रमुद्यत्-सुवर्णाभवर्णै-
र्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ ४ ॥

### धरामण्डलका स्वरूप

अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रं
समुद्भासि-शूलाष्टकैरावृतं तत् ।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं
तदन्ते समास्ते धरायाः स्वबीजम् ॥ ५ ॥

---

**विमर्श**—ब्रह्म नाडीके मुखको ब्रह्मद्वार कहते हैं; क्योंकि यह ब्रह्म पर्यन्त गया है। ब्रह्म नाड़ी स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रभागमें भी स्थित है। ठीक् स्वयम्भू लिङ्गके ऊपर ब्रह्मद्वार है। ध्यान रहे कि मूलाधार कमल अधोमुख तथा विकसित है, अतः उसमें स्थित स्वयम्भू लिङ्ग भी अधोमुख है। स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रके मुखको ब्रह्मद्वार कहते हैं। यहीं तक सहस्रारस्थित ब्रह्मसे अमृतका प्रवाह होता रहता है। इसी द्वारके समीपवर्ती प्रदेशको सुषुम्णा नाड़ीका ग्रन्थिस्थान तथा मुखप्रदेश कहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मूलाधार कमल सुषुम्णा नाड़ी मात्रके मध्यभागमें स्थित है॥ ३ ॥

सुषुम्णाके मुखसे लगा हुआ लिङ्गमूलसे नीचे तथा गुदाके ऊपर मूलाधार कमल स्थित है। इस कमलका मुख नीचेकी ओर है। इसके चार दल हैं जो कि रक्त-वर्ण हैं। इन चारों दलोंपर उत्तप्त सुवर्णके जैसे वर्णवाले व, श, ष, स—ये चार अक्षर स्थित हैं।

**विमर्श**—सुषुम्णा नाड़ीके मध्यभागमें उसके मुखसे लगा हुआ मूलाधार चक्र स्थित है। समस्तचक्रोंके आधार होनेसे इसे मूलाधार कहते हैं। इस मूलाधार कमल-का मुख नीचेकी ओर है। इसके चार दल हैं। **वेदवर्णैः**-वेद चार हैं; अतः वेद शब्दसे चार संख्याका बोध होता है। इन चारों दलोंपर चार अक्षर—व, श, ष, स स्थित हैं। इनका वर्ण तप्त सुवर्णके समान है। दलोंपर अक्षर-लिखनक्रम दक्षिणावर्त्त होता है और भी समस्त अक्षर अर्धचन्द्र-बिन्दुयुक्त होते हैं; जैसे—वँ, शँ, षँ, सँ ॥ ४ ॥

इस मूलाधार कमलकी कर्णिकाके मध्यमें चार कोणवाला एक पृथ्वीमण्डल है। वह मण्डल आठों दिशाओंसे प्रकाशमान् आठ शूलोंसे घिरा हुआ है। वह मण्डल विजलीके समान पीतवर्ण तथा कोमल अङ्गवाला है। उस पृथ्वीमण्डलके मध्यमें पृथ्वीका अपना बीज 'लँ' स्थित है। इस बीजका वर्ण भी पीत है।

धराबीजका स्वरूप

चतुर्बाहुभूषं गजेन्द्राधिरूढं
तदङ्के नवीनार्कतुल्यप्रकाशः ।
शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदबाहु-
र्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेदः ॥ ६ ॥

मूलाधार पद्ममें रहनेवाली डाकिनी शक्तिका स्वरूप

वसेदत्र देवी च डाकिन्यभिख्या
लसद्वेदबाहूज्ज्वला रक्तनेत्रा ।
समानोदितानेक-सूर्य-प्रकाशा
प्रकाशं वहन्ती सदा शुद्धबुद्धेः ॥ ७ ॥

---

विमर्श—यहाँपर मूलाधार कमलमें स्थित पृथ्वीमण्डलके स्वरूपका निरूपण किया गया है । इस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें चार कोणवाला एक पृथ्वीमण्डल है । यह मण्डल आठों दिशाओंसे प्रकाशमान् आठ शूलोंसे घिरा है । इसका कोमल अङ्ग विजलीके समान पीत वर्णवाला है । इस मण्डलके मध्यमें पृथ्वीका अपना बीज 'लँ' स्थित है । इसका वर्ण भी विजलीके समान पीत है । यह सुकोमल अङ्गवाला है । यहाँपर 'लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गम्'का अन्वय मण्डल तथा बीज दोनोंसे है ॥ ५ ॥

चार बाहुवाला वह पृथ्वीबीज ऐरावत हाथीपर आरूढ़ है । उसके गोदमें प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान् सृष्टिकर्ता ब्रह्मा शिशु रूपमें शोभायमान् है । यह ब्रह्मा चतुर्भुज तथा चतुर्मुख है ।

विमर्श—मूलाधार कमलका अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मा है । ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, चतुर्मुख तथा चतुर्भुज है । यह ब्रह्मा प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान् रक्तवर्ण शिशुरूप है ॥ ६ ॥

इस मूलाधार कमलमें डाकिनी नामक देवी रहती है । यह चार भुजावाली, उज्ज्वल वर्णवाली तथा रक्तवर्णके समान नेत्रवाली है । एक ही समयमें उदित अनेक सूर्योंके समान प्रकाशवाली यह देवी सर्वदा तत्त्वज्ञानके प्रकाशका प्रदान करती रहती है ।

विमर्श—मूलाधारकी अधिष्ठात्री देवी डाकिनी शक्ति है । इसकी चार भुजाएँ हैं । यह उज्ज्वल वर्णवाली है तथा इसकी आँखें रक्तवर्णके समान हैं । यह डाकिनी देवी एक ही समयमें उदित अनेक सूर्योंके समान प्रकाशवाली है तथा सर्वदा तत्त्व-ज्ञानका सम्पादन करनेवाली है ॥ ७ ॥

मूलाधार पद्मकी कर्णिकामें स्थित त्रिकोणका स्वरूप

वज्राख्या-वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत् त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत् कोमलं कामरूपम् ।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ताज्-
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यऽऽकाशः ॥ ८ ॥

त्रिकोणके मध्यमें स्थित स्वयम्भु लिङ्गका स्वरूप

तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुत-कनककला-कोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भुः ।
विद्यु त्-पूर्णेन्दुबिम्ब-प्रकरकर-चय-स्निग्ध-सन्तान-हासी
काशीवासी-विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूपप्रकारः ॥ ९ ॥

---

वज्रा नाड़ीके मुखप्रदेशमें मूलाधार कमलकी कर्णिकाके मध्यमें त्रिपुरासे सम्बन्धित त्रैपुर नामक त्रिकोण सुशोभित है। यह विजलीके समान प्रकाशमान्, सुस्निग्ध तथा कामरूप है। उस त्रिकोणके मध्यमें सर्वत्र कन्दर्प नामक वायु व्याप्त होकर निवास करता है। यह जीवका धारण करनेवाला, बन्धुक पुष्पोंके समूहका उपहास करनेवाला तथा करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान् है।

**विमर्श**—वज्रा नाड़ीके मुखप्रदेशमें अर्थात् वज्राके अधोभागमें कमलकी कर्णिकाके मध्यमें एक त्रिकोण है। यह त्रिकोण त्रिपुर सुन्दरीका अधिष्ठान है; अतः यह त्रैपुर नामक कोण कहलाता है। यह त्रिकोण एक योनि है। यह विजलीके समान प्रकाशमान्, अत्यन्त सुस्निग्ध कोमल है। यह योनि मदनागार है। यहांपर कन्दर्प नामक वायु स्थित है अर्थात् काम यहांपर वायु बनकर सर्वदा निवास करता है। यही जीवका धारण करनेवाला है, बधुक पुष्पोंके समूहका उपहास करनेवाला है अर्थात् अत्यधिक रक्तवर्णवाला है तथा करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान् है ॥ ८ ॥

उस त्रिकोणके मध्यमें तप्त काञ्चनके समान कोमल, अधोमुख, ज्ञान तथा ध्यानसे विदित होनेवाला, नवीन पल्लवके समान रूपवाला, विजली और पूर्णचन्द्रके बिम्बके समूह किरणवृन्दके समान विशिष्ट प्रकाशवाला तथा अत्यन्त स्निग्ध, काशीमें वास करनेवालेके समान सुशोभित, नदीके आवर्तरूपके समान आकारवाला स्वयम्भू लिङ्ग शोभायमान् है।

**विमर्श**—उस त्रिकोण योनिके मध्यमें स्वयम्भू लिङ्ग शोभायमान् है। यह तप्त काञ्चनके समान कोमल अर्थात् अत्यन्त स्निग्ध है। इसका मुख नीचेकी ओर है। यह लिङ्ग ज्ञानके द्वारा निर्गुण रूपसे तथा ध्यानके द्वारा सगुण रूपसे विदित होता है। इसका रूप नवीन पल्लवके समान है अर्थात् श्याम वर्ण है। विजली तथा पूर्णचन्द्रके

स्वयम्भु लिङ्गमें रहनेवाली कुण्डलिनी शक्तिका स्वरूप

तस्योर्ध्वे बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम् ।
शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरिलसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥ १० ॥
कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचं कोमल-काव्य-बन्ध-रचना-भेदातिभेद-क्रमैः ।
श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः ॥ ११ ॥

---

बिम्बके समुहोंके समान इसका प्रकाश है। यह काशीमें वास करनेवालेके समान यहाँपर शोभायमान् है अर्थात् इसका स्थान काशी है। और भी **'काशीवासी विलासी'** शब्दसे इसका काशीमें निवास करनेवाला विश्वेश्वर होनेका प्रमाण मिलता है। स्वयम्भू लिङ्गका आकार नदीके जलमें जो जलभ्रम होता है उसीके समान है अर्थात् यह स्वयभूलिङ्ग लम्ब गोलाकार—स्तम्भाकार है, मूलभाग स्थूलाकार तथा अग्रभाग सूक्ष्म है। इसके मध्य में छिद्र है ॥ ९ ॥

उस स्वयम्भू लिङ्गके ऊर्ध्वमें कमलके तन्तुके समान अत्यन्त पतली देहवाली, जगत्को मोहित करनेवाली, ब्रह्मद्वारके मधुर मुखको अपने मुखसे आच्छादित करती हुई, शङ्खके वेष्टनाकारके समान, नवीन विजलीकी मालाकी शोभाके साथ आस्पर्द्धा करनेवाली, साढ़े-तीन लपेटोंसे लिपटी हुई सर्पके समान स्वयम्भू लिङ्गके ऊपर सोयी हुई, मत्त भ्रमरोंकी पंक्तिकी ध्वनिके समान कोमल काव्य, बन्ध, रचना तथा उनके भेद एवं अतिभेद क्रमसे मधुर वाणीका गुञ्जार करती हुई, श्वास तथा उच्छ्वास-रूपी वायुसे जीवका धारण करती हुई वह कुल-कुण्डलिनी उद्दीप्त तेजोमय त्रिबलीके रूपमें मूलाधार कमलकी कर्णिकाके गह्वरमें विलास करती है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकद्वयमें कुल-कुण्डलिनीका निरूपण किया जा रहा है। यह कुण्डलिनी स्वयम्भूलिङ्गके ऊपर कुण्डलाकारसे साढ़े-तीन लपेटोंसे लिपटी सर्पके समान सो रही है। यह कमलके तन्तुके समान-अत्यन्त पतली तथा लम्बी है। हय कुल कुण्डलिनी जगत्को मोहित करनेवाली महामाया है। स्वयम्भू लिङ्ग मूलाधार कमलमें अधोमुख है, अतः कुण्डलिनी भी अधोमुख है, किन्तु यह स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रको अपने मुखसे आच्छादित कर रक्खी है। सहस्रारस्थित नित्यानन्द ब्रह्मसे जो अमृतकी धारा स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रसे होकर प्रवाहित हो रही है, उसे कुण्डलिनी सर्वदा पी रही है। यह नवीन विजलीकी मालाको भी लज्जित करती हुई सुशोभित हो रही है अर्थात् विजलीसे भी अत्यधिक प्रकाशवाली है। जिस प्रकार मतवाले भौंरोंकी पंक्तिकी ध्वनि

कुण्डलिनीके मध्यमें रहनेवाली पर-शक्तिका स्वरूप

**तन्मध्ये परमा कलाऽतिकुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा**
**नित्यानन्द-परम्परातिविगलत्-पीयूषधारा-धरा ।**
**ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते**
**सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया ॥ १२ ॥**

---

होती है उसी प्रकार कुण्डलिनी भी **कोमलकाव्य**—मृदु शब्दघटित रूप, गुण तथा रसादि वर्णनात्मक वाक्य; **बन्ध**—पद्मबन्ध, अश्वबन्धादि चित्रकाव्य, **रचना**—उनसे भिन्न गद्यपद्यात्मक वाक्य; **भेद**—उनके प्रकार, **अतिभेद**—संस्कृत तथा अन्य वाक्य अर्थात् प्राकृतका समुदाय तथा **क्रम**—शास्त्रव्यवहारके अनुरूप रीतिसे मधुर वाणीका गुञ्जार करती है। यही वाणी वैखरी कहलाती है। इस कुण्डलिनीके श्वास तथा प्रश्वाससे जीव प्राणधारण करता है। **प्रोद्दामदीप्तावलिः**—यह शब्द यहाँपर कटिभाग-में स्थित रेखार्थक है। स्वयम्भू लिङ्गके कटिभागमें यह कुण्डलिनी त्रिवलीके रूपमें शोभायमान है, जो कि अत्यधिक तेजोमयी है। इस प्रकारसे यह मूलाधार कमलकी कर्णिकाके गह्वरमें विलास करती है ॥ १०–११ ॥

उस कुण्डलिनीमें नादरूपा श्रीपरमेश्वरी पर-शक्ति शोभायमान् है, जो कि सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अत्यन्त कुशल तथा नित्यानन्द ब्रह्मसे क्रमशः क्षरित अमृतके प्रवाह-का ग्रहण करनेवाली है। इसके प्रकाशसे ब्रह्माण्डसे लेकर पिण्ड पर्यन्त सकल जगत् प्रकाशित है तथा इससे नित्य ज्ञानका उदय होता है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें कुण्डलिनीमें रहनेवाली पर-शक्तिका निरूपण किया गया है। **तन्मध्ये**—इस शब्दसे यह बोध होता है कि पर-शक्ति कुण्डलिनीसे अभेद-शरीरवाली है। इसका स्वतन्त्र अन्य कोई शरीर नहीं है, अतः यह नादरूपा है। सर्वश्रेष्ठ शक्ति है अतः परमा शक्ति है। इसे पर-शक्ति कहते हैं। **अतिकुशला**—सृष्टिसम्पा-दनमें अत्यन्त कुशल है यह पर-शक्ति। यह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अर्थात् अत्यन्तसूक्ष्म निराकारा है। **नित्यानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा**—नित्यानन्द ब्रह्म है, उससे निरन्तर क्रमशः झरनेवाले अमृतके प्रवाहका ग्रहण करनेवाली है यह कुण्डलिनी अर्थात् कुण्डलिनी शरीरके माध्यमसे ब्रह्मद्वारके मुखमें अमृतका पान करती है। यहाँपर 'नित्यानन्दपरम्परातिचपलाविद्युल्लतादीधितिः' यदि इस प्रकारका पाठ माना जाय तो 'नित्यानन्दपम्परा'—नित्य आनन्दका निरन्तर बना रहना अर्थात् 'नित्यानन्द-स्वरूपा' तथा 'अतिचपलाविद्युल्लतादीधितिः'—अत्यन्त चञ्चल विजलीकी मालाके समान तेजवाली—ऐसा ही अर्थ करना होगा। 'नित्यानन्दपरम्परा'का अर्थ कुछ विद्वान् इस प्रकार करते हैं—नित्यानन्द निर्गुण ब्रह्म है, उससे सगुणका आविर्भाव है, सगुणसे शक्ति, शक्तिसे नाद, नादसे बिन्दु, बिन्दुसे कुण्डलिनी, कुण्डलिनीका अवा-

### मूलाधार तथा कुण्डलिनी शक्तिके चिन्तनका फल

**ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तर-विवर-लसत्-कोटिसूर्य-प्रकाशां**
**वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी।**
**आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा**
**वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः ॥ १३ ॥**

---

न्तररूप यह चित्कला होती है। इस प्रकारसे यह 'नित्यानन्दपरम्परा'का भाव है। हमारे मतमें तो 'नित्यानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा'—यह कुण्डलिनीका एकशब्दात्मक विशेषण है, जिसका अर्थ इस प्रकारसे होता है—नित्यानन्द ब्रह्मसे पर बिन्दु, बिन्दुसे पर आज्ञा चक्र, आज्ञा चक्रसे पर विशुद्ध चक्र, विशुद्ध चक्रसे पर अनाहत चक्र, अनाहत चक्रसे पर मणिपूर चक्र, मणिपूर चक्रसे पर स्वाधिष्ठान चक्र तथा स्वाधिष्ठान चक्रसे पर मूलाधार चक्र है। इस मूलाधार चक्रके मध्यमें स्वयम्भू लिङ्ग है, स्वयम्भू लिङ्गका छिद्र ब्रह्मद्वार है। इसी ब्रह्मद्वार पर्यन्त नित्यानन्द ब्रह्मसे अमृतका क्षरण होता है। इसी ब्रह्मद्वारके मुखमें कुण्डलिनीके शरीरमें अभेदरूपसे शक्तिरूपसे स्थित श्रीपरमेश्वरी पर-शक्ति अमृतका पान करती है। ब्रह्माण्डादिकटाहमेव–ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दो होते हैं। वृहद् रूपसे ब्रह्माण्ड तथा सूक्ष्म रूपसे पिण्ड–शरीर है; अतः ब्रह्माण्डसे लेकर पिण्ड पर्यन्त सकल पदार्थ उसकी कलासे भासित होते हैं। इसीसे ही नित्य ज्ञानका उदय होता है ॥ १२ ॥

इस मूलाधार चक्र तथा मूलाधार चक्रके गह्वरमें विलास करनेवाली, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाली कुण्डलिनी शक्तिका ध्यानकर वह साधक पुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा शीघ्र ही वृहस्पतिके समान समस्त विद्याओंका विनोदी बन जाता है। वह नित्य आरोग्य रहता है तथा अहर्निश ईश्वर चिन्तनसे युक्त विशिष्ट अन्तरात्मा होकर वह शुद्ध स्वभाववाला साधक वाक्य तथा काव्यप्रबन्धोंसे समस्त प्रमुख देवताओंको प्रसन्न कर लेता है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें मूलाधार चक्र तथा उसमें स्थित कुण्डलिनी शक्तिके चिन्तनके फल निरूपित हैं। इन दोनोंके चिन्तनसे साधक वृहस्पतिके समान वक्ता तथा सर्वविद्याका ज्ञाता बन जाता है। वह सब दिनके लिए व्याधिमुक्त हो जाता है। उसके अन्तःकरण ईश्वर चिन्तनसे शुद्ध हो जाते हैं। उसमें एक विशेष प्रकारकी योग्यता आ जाती है, जिससे स्वरचित काव्य तथा प्रबन्ध आदि स्तुतिसे समस्त श्रेष्ठ देवताएँ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश प्रसन्न हो जाते हैं, अर्थात् उसकी वाणी मन्त्रस्वरूपा बन जाती है। निष्कर्ष यह है कि साधकको शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकारकी शक्ति तथा शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १३ ॥

स्वाधिष्ठान चक्रका निरूपण

सिन्दूर-पूर-रुचिरारुण-पद्ममन्यत्
सौषुम्णमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे ।
अङ्गच्छदैः परिवृतं तडिदाभवर्णै-
र्बाद्यैः सबिन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः ॥ १४ ॥

अम्भोजमण्डलका स्वरूप

तस्यान्तरे प्रविलसद् विशद-प्रकाश-
मम्भोजमण्डलमथो वरुणस्य तस्य ।
अर्द्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दुशुभ्रं
वङ्कारबीजममलं मकराधिरूढम् ॥ १५ ॥

---

लिङ्गके मूलप्रदेशमें स्थित वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें निर्मित सुन्दर, कोमल, सिन्दूरके समान अरुण वर्णका छः दलवाला एक अन्य कमल सुशोभित है । इसे स्वाधिष्ठान कहते हैं । इस कमलके दलोंमें विजलीके समान प्रकाशवाले बिन्दुयुक्त 'ब'से लेकर 'ल' तक अक्षर सुशोभित हैं ।

**विमर्श**––मूलाधार चक्रके निरूपणके अनन्तर स्वाधिष्ठान चक्रका निरूपण किया गया है । यह स्वाधिष्ठान चक्र लिङ्गके मूलप्रदेशमें स्थित है । **सौषुम्णमध्यघटितम्**—इस शब्दसे विदित होता है कि स्वाधिष्ठान चक्र वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें हैं; क्योंकि—'सुषुम्णाया इदं सौषुम्णम्, तन्मध्ये घटितम्, सौषुम्णमध्यघटितम्'के अनुसार वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें स्वाधिष्ठान कमल स्थित है । अब यहाँसे आगेके कमल वज्रा नाड़ीके मध्यभागमें चित्रिणी नाड़ीके द्वारा गुँथे हुए हैं । इसीलिए उपर्युक्त पदका प्रयोग किया गया है । यह पद्म अत्यन्त सुन्दर, सिन्दूरके समान अरुण वर्णवाला है । **अङ्गच्छदैः**––वेदाङ्ग छः हैं, अतः 'अङ्ग' शब्दसे छ संख्याका बोध होता है, अतः इस कमलके छः दल हैं । इन छहों दलोंपर विजलीके समान प्रकाशमान् बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ—ये छः अक्षर सुशोभित हैं । 'पुरन्दर'का अर्थ है लकार ॥ १४ ॥

स्वाधिष्ठान चक्रकी कर्णिकाके मध्यमें शुक्लवर्ण, अर्धचन्द्राकार एक जलका मण्डल है । उस जलमण्डलके मध्यमें निर्मल शरत्कालीन चन्द्रमाके समान शुभ्र, मकरके ऊपर बैठा हुआ अर्धचन्द्राकार वरुणबीज 'वँ' शोभायमान हो रहा है ।

**विमर्श**––स्वाधिष्ठान चक्रकी कर्णिकाके मध्यमें एक जलमण्डल है । 'अम्भसि जातम् अम्भोजम्'के अनुसार इस मण्डलका उत्पन्न जलमें ही है अर्थात् यह जल-

### वरुणबीजबिन्दुवर्ती विष्णुका स्वरूप

तस्याङ्कदेश-कलितो हरिरेव पायात्
नील-प्रकाश-रुचिर-श्रियमादधानः ।
पीताम्बरः प्रथम-यौवन-गर्वधारी
श्रीवत्स-कौस्तुभ-धरो धृतवेदबाहुः ॥ १६ ॥

### स्वाधिष्ठान पद्ममें रहनेवाली राकिणी शक्तिका स्वरूप

अत्रैव भाति सततं खलु राकिणी सा
नीलाम्बुजोदर-सहोदर-कान्ति-शोभा ।
नानायुधोद्यत-करैर्लसिताङ्ग-लक्ष्मी-
र्दिव्याम्बराभरण-भूषित-मत्त-चित्ता ॥ १७ ॥

---

मण्डल है, जिसप्रकार कि मूलाधारमें पृथ्वीमण्डल है। इसीप्रकार पाँचों तत्त्वोंके पाँच मण्डल होंगे। इस जलमण्डलका आकार अर्धचन्द्रके समान है। यह मण्डल शुभ्र वर्णका है। 'अर्द्धेन्दुरूपलसितम्' तथा 'शरदिन्दुशुभ्रम्' ये दोनों शब्द मण्डल तथा बीज दोनोंके विशेषण हैं। ध्यान रहे कि मण्डलके अनुसार बीजका भी वर्ण होता है, अतः जलमण्डल शुभ्र है तथा 'वँ' बीज जो कि वरुणका बीज है शुभ्र है। जलका अधिष्ठातृदेवता वरुण है अतः जलका बीज अर्थात् वरुणका बीज 'वँ' है। वरुणका वाहन मकर है अत 'वँ' बीजका वाहन भी मकर है ॥ १५ ॥

उस वरुण बीजके गोदमें स्थित हरि सबकी रक्षा करे, कि जिसने नील तेज-पुञ्जकी कान्ति, पीतवस्त्र, प्रथम यौवनके गर्व, श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभका धारण किया है एवं जो चार भुजाओंसे युक्त है।

**विमर्श**—स्वाधिष्ठान चक्रका अधिष्ठातृदेवता हरि—विष्णु है। यह विष्णु वरुण बीज 'वँ'के गोदमें स्थित है। यह विष्णु पीतवस्त्रका धारण करनेवाला है। इसकी चार भुजाएँ हैं, शरीरका वर्ण नील कमलके समान श्यामल है, हृदयमें श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि शोभायमान् है। यह विष्णु प्रथम यौवनके गर्वका धारण करनेवाला है अर्थात् अत्यन्त नव यौवनका धारण करनेवाला है ॥ १६ ॥

इसी पद्ममें राकिणी नामक देवी शोभायमान् है। वह नील कमलके समान कान्तियुक्त शरीरवाली, नाना प्रकारके आयुधोंको धारण की हुई चारभुजाओंसे सुशोभित अङ्गवाली, दिव्य वस्त्र तथा आभरणसे अलंकृत, प्रसन्न चित्तवाली है।

**विमर्श**—स्वाधिष्ठान चक्रकी अधिष्ठात्री देवी राकिणी शक्ति है। यह विष्णुके वाम पार्श्वमें स्थित है। इसके शरीरकी शोभा नील कमलके समान श्याम है। इसकी चार भुजाएँ हैं, जिनमें कि इसने शूल, कमल, डमरु तथा तीक्ष्ण टङ्क धारण किये हैं। दिव्य वस्त्र तथा दिव्य आभरणसे यह अलंकृत है, मत्तचित्ता—प्रसन्न चित्तवाली है ॥

स्वाधिष्ठान चक्रके चिन्तनका फल

स्वाधिष्ठानाख्यमेतत् सरसिजममलं चिन्तयेद् यो मनुष्य-
स्तस्याऽहङ्कार-दोषादिक-सकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन ।
योगीशः सोऽपि मोहाद्भुत-तिमिरचये भानुतुल्यप्रकाशो
गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधावाक्यसन्दोहलक्ष्मीः ॥ १८ ॥

मणिपूर चक्रका निरूपण

तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदल-लसिते पूर्णमेघ-प्रकाशे
नीलाम्भोजप्रकाशैरुपहितजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः ।
ध्यायेद् वैश्वानरस्याऽरुणमिहिरसमं मण्डलं तत् त्रिकोणं
तद्बाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलसितं तत्र वह्नेः स्वबीजम् ॥१९॥
ध्यायेन्मेषाधिरूढं नवतपननिभं वेदबाहूज्ज्वलाङ्गम् ॥ १९½ ॥

---

जो मनुष्य इस निर्मल स्वाधिष्ठान नामक पद्मका चिन्तन करता है, उसके अहंकारादि दोषरूप समस्त शत्रु तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं । वह योगियोंमें श्रेष्ठ हो जाता है तथा मोहरूपी अन्धकारके समूहमें सूर्यके समान प्रकाशमान् हो जाता है; गद्य, पद्य तथा प्रबन्धोंसे अमृत वाक्यसमूह रूपी सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है ।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें स्वाधिष्ठान चक्रके चिन्तनका फल निरूपित है । स्वाधिष्ठान चक्रका चिन्तन करनेवाले पुरुषके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—ये छः शत्रु तत्काल नष्ट हो जाते हैं । वह पुरुष योगियोंमें श्रेष्ठ होता है, मोहरूपी अन्धकारके विनाशमें सूर्यके समान प्रकाशवाला हो जाता है । वह पुरुष गद्य, पद्य तथा प्रबन्धकी रचनासे अमृत वाक्यसमूहरूपी सम्पत्तिका उपभोग करता है ॥ १८ ॥

स्वाधिष्ठान कमलके ऊपर नाभिमूलमें स्थित दस दलयुक्त, पूर्ण मेघके समान कृष्ण वर्णवाले, नील कमलके समान प्रकाशमान्, अर्द्धचन्द्र बिन्दुयुक्त 'ड'से लेकर 'फ' तकके अक्षरोंसे युक्त मणिपूर नामक कमलकी कर्णिकाके मध्यमें उदयकालीन सूर्यके समान वर्णवाले त्रिकोणाकार अग्निमण्डलका ध्यान करें । वह त्रिकोण बाह्य प्रदेशस्थित तीन स्वस्तिकोंसे युक्त है । उस स्वस्तिकयुक्त त्रिकोणमें वह्निका अपना बीज 'रँ' स्थित है । इसप्रकार मेषके ऊपर आरूढ़, प्रातःकालीन सूर्यके समान रक्तवर्णवाले, चार भुजाओंसे सुशोभित, उज्ज्वल अङ्गवाले उस वह्निबीजका ध्यान करें ।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें मणिपूर चक्रके स्वरूपका निरूपण किया गया है । इसका अवस्थान स्वाधिष्ठान चक्रके ऊपर नाभिमूलमें है । मणिपूर कमल पूर्ण मेघके समान कृष्ण वर्णवाला है । इस कमलके दस दल हैं । इन दसों दलोंपर डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ—ये दस अक्षर सुशोभित हैं । नील कमलके समान अक्षरोंका वर्ण नीला है । इस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें बाह्यभागमें स्थित तीन स्वस्तिकोंसे युक्त त्रिकोणाकार एक वह्निका मण्डल है । इस वह्निमण्डलका वर्ण उदयकालीन

मणिपूर पद्ममें स्थित वह्निबीजवर्त्ती रुद्रका स्वरूप

तत्क्रोडे रुद्रमूर्तिर्निवसति सततं शुद्ध-सिन्दूर-रागः ।
भस्मालिप्ताङ्गभूषाभरण-सितवपुर्वृद्धरूपी त्रिनेत्रो
लोकानामिष्टदाताऽभयलसितकरः सृष्टिसंहारकारी ॥ २० ॥

मणिपूर पद्ममें रहनेवाली लाकिनी शक्तिका स्वरूप

अत्रास्ते लाकिनी सा सकलशुभकरी वेदबाहूज्ज्वलाङ्गी
श्यामा पीताम्बराद्यैर्विविधविरचनालङ्कृता मत्तचित्ता ॥२०½॥

मणिपूर चक्रके चिन्तनका फल

ध्यात्वैतन्नाभिपद्मं प्रभवति नितरां संहृतौ पालने वा
वाणी तस्याननाब्जे निवसति सततं ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः ॥ २१ ॥

---

सूर्यके समान रक्तवर्ण है। उस स्वस्तिकत्रययुक्त त्रिकोणके मध्यमें वह्निका अपना बीज 'रँ' अवस्थित है। वह्निबीजका वर्ण उदयकालीन सूर्यके समान रक्तवर्ण है। यह चार भुजाओंसे युक्त, उज्ज्वल अङ्गवाला है तथा मेषके ऊपर आरूढ़ है। अर्थात् वह्निबीजका वाहन मेष है। इसप्रकारसे स्वस्तिक-त्रययुक्त त्रिकोणस्थित वह्निबीज 'रँ' का ध्यान करें ॥ १९–१९¼ ॥

उस वह्निबीजकी गोदमें सिन्दूरके समान अतिशय रक्ताकार, भस्मरूपी अङ्गाभरणके धारणसे श्वेत शरीरवाला, वृद्धरूपी, तीन आँखवाला, अभय मुद्रासे युक्त हाथवाला, सृष्टि एवं संहार करनेवाला रुद्र निरन्तर शोभायमान् हो रहा है।

**विमर्श**—मणिपूर चक्रस्थ अधिष्ठातृ देवता रुद्र है। यह रुद्र वह्निबीजके गोदमें स्थित है। यह अतिशय रक्ताकार है। भस्मके लेपन करनेसे इसका सम्पूर्ण शरीर श्वेत दिखाई देता है। इसकी तीन आँखें हैं। यह वृद्धरूपी है। यह रुद्र समस्त लोकके अभीष्टका प्रदान करनेवाला है, अभय मुद्रासे युक्त हाथवाला है अर्थात् पालन करनेवाला है तथा सृष्टि एवं संहार करनेवाला है ॥ २० ॥

यहींपर प्रसिद्ध लाकिनी नामक देवी स्थित है। वह सकल शुभ करनेवाली, चार भुजावाली, उज्ज्वल अङ्गवाली, श्याम वर्णवाली, पीत वस्त्रादि नाना प्रकारकी विरचनासे अलंकृत तथा प्रसन्न चित्तवाली है।

**विमर्श**—मणिपुर चक्रकी अधिष्ठात्री देवी लाकिनी शक्ति है। यह देवी रुद्रके वाम भागमें स्थित है। इसकी चार भुजाएँ हैं, अङ्ग अत्यन्त उज्ज्वल हैं। इसके शरीरका वर्ण श्याम है। यह पीत वस्त्रादि नाना प्रकारके आभरणोंसे अलंकृत है तथा सर्वदा प्रसन्न चित्तवाली है ॥ २०½ ॥

इस नाभिमूल स्थित मणिपूर कमलका ध्यान करके साधक संहार तथा पालन करनेमें समर्थ हो जाता है। ज्ञानसमूहका प्रकाश करनेवाली लक्ष्मीरूपा वाणी उस साधकके कमलरूपी मुखमें निवास करती है।

### अनाहत चक्रका निरूपण

तस्योर्ध्वे हृदि पङ्कजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं
काद्यै र्द्वादशवर्णकैरुपहितं सिन्दूररागान्वितैः ।
नाम्नाऽनाहतसंज्ञकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं
वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम् ॥ २२ ॥

---

विमर्श––प्रस्तुत श्लोकार्धमें मणिपूर चक्रके चिन्तनके फलोंका निरूपण किया गया है। इस चक्रके ध्याताको पालन तथा संहार करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। यहाँपर **'वाणी'**का विशेषण **'ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः'** शब्द है। यह वाणी ज्ञान समूहको प्रकाशित करनेवाली है। यहाँपर बहुत ही सुन्दर रूपकका निर्देश किया गया है। लक्ष्मीका निवास स्थान अब्ज—जलज—पद्म है। वाणीका निवास स्थान आनन—मुख है। अतः लक्ष्मीरूपा वाणी अब्जरूपी आननमें निवास करती है। लक्ष्मी शब्दका अर्थ किसी भी अर्थमें––ऐश्वर्य, श्री, शोभा, सम्पत्ति आदिमें ले सकते हैं ॥ २१ ॥

उस मणिपूर कमलके ऊपर हृदय देशमें अत्यन्त मनोरम, बन्धुककी कान्तिः के समान उज्ज्वल, सिन्दूरके समान रक्त वर्णवाले 'क' आदि बारह अक्षरोंसे युक्त, कल्पवृक्षके समान, अमीष्टसे भी अधिक फल प्रदान करनेवाला अनाहत नामक कमल स्थित है। इस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित षट् कोणमें धूमके समान वायुका मण्डल है।

**विमर्श**––प्रस्तुत श्लोकमें अनाहत चक्रका निरूपण किया गया है। इस चक्रका अवस्थान मणिपूर चक्रके ऊपर हृदय प्रदेशमें है। अनाहत कमल अत्यन्त मनोरम और बन्धूक पुष्पकी कान्तिके समान उज्ज्वल है। अर्थात् बन्धूक पुष्पके समान रक्त वर्णवाला है। इस कमलके बारह दल हैं। इन बारह दलोंपर सिन्दूर-के समान रक्त वर्णवाले कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ ठँ––ये बारह वर्ण सुशोभित हैं। यह कमल कल्प वृक्षके समान है। कल्प वृक्ष तो वाञ्छित फल-का प्रदान करता है, किन्तु यह कमल उससे भी अधिक अर्थात् वाञ्छितसे भी अधिक फलका प्रदान करता है। **'सुरतरुम्' 'वाञ्छातिरिक्त पदम्'** इन दोनों शब्दों-से यह ज्ञात होता है कि कल्पतरु केवल अभीष्ट भोग मात्रका प्रदान करता है, किन्तु यह कमल अभीष्ट भोगके साथ-साथ मोक्षका भी प्रदान करता है। इस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें षट् कोणाकार एक वायुमण्डल स्थित है। इसका वर्ण धूमके समान है ॥ २२ ॥

वायुमण्डलके मध्यमें स्थित वायुबीजका स्वरूप

तन्मध्ये पवनाक्षरञ्च मधुरं धूमावली-धूसरं
ध्यायेत् पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परम् ॥ २२½ ॥

वायुबीजवर्ती ईश्वरका स्वरूप

तन्मध्ये करुणा-निधानममलं हंसाभमीशाभिधं
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विदधल्लोकत्रयाणामपि ॥ २३ ॥

अनाहत पद्मकी कर्णिकामें रहनेवाली काकिनी शक्तिका स्वरूप

अत्रास्ते खलु काकिनी नवतडित्पीता त्रिनेत्रा शुभा
सर्वालङ्करणान्विता हितकरी सम्यग् जनानां मुदा ।
हस्तैः पाश-कपाल-शोभन-वरान् सम्बिभ्रति चाभयं
मत्ता पूर्णसुधारसार्द्रहृदया कङ्कालमालाधरा ॥ २४ ॥

---

उस वायुमण्डलके मध्यमें अत्यन्त मनोहर, धूमसे ढके होनेके कारण धूम्र वर्णवाले, चतुर्भुज, कृष्णसार मृगके ऊपर आरूढ़, प्रकृष्ट वायुके बीज 'यँ'का ध्यान करें ।

विमर्श—प्रस्तुत श्लोकार्धमें वायुमण्डलस्थित वायुबीजके स्वरूपका निरूपण किया गया है । पवनाक्षर अर्थात् वायुका अपना बीज 'यँ' है । यह 'यँ' मूर्त्याकार है; क्योंकि इसे चतुर्भुज कहा गया है । वायुमण्डल धूम सदृश है, अतः उसमें स्थित वायुबीज भी धूमावलीसे आच्छादित होनेसे धूम्र वर्णवाला है । इसका वाहन कृष्णसार मृग है । कृष्णसार मृगको काला हरिण भी कहते हैं ॥ २२½ ॥

उस वायुबीजके मध्यमें करुणासागर रूपी, निर्मल, सूर्यके समान प्रभावाला, तीनों लोकोंको दोनों भुजाओंसे अभय तथा वरको प्रदान करता हुआ ईश्वर नामक देवता स्थित है ।

विमर्श—अनाहत चक्रके अधिष्ठातृ-देवता ईश्वर है । यह ईश्वर निर्मल तथा सूर्यके समान प्रभावाला है । इसकी दो भुजाएँ हैं । एक भुजामें अभय मुद्राका धारण किया है तथा अन्य भुजमें वर प्रदान करनेकी मुद्राका धारण किया है । यह ईश्वर करुणाका सागर है तथा तीनों लोकोंको अभय तथा वर प्रदान करनेवाला है ॥ २३ ॥

इसी पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें काकिनी नामक देवी स्थित है, जो कि नवीन विद्युत्के समान पीत वर्णवाली, तीन नेत्रवाली, शुभको प्रदान करनेवाली, समस्त प्रकारके अलङ्कारोंसे युक्त, हर्षपूर्वक योगिजनोंको सम्यक् रूपसे हित

**अनाहत पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित त्रिकोणका स्वरूप**

**एतन्नीरज-कर्णिकान्तर-लसच्छक्तिस्त्रिकोणाभिधा**
**विद्युत्कोटिसमानकोमलवपुः सास्ते तदन्तर्गतः।**
**बाणाख्यः शिवलिङ्गकोऽपि कनकाकाराङ्गरागोज्ज्वलो**
**मौलौ सूक्ष्मविभेदयुङ्मणिरिव प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः ॥ २५ ॥**

---

करनेवाली, हाथोंमें पाश, कपाल, शोभनवर एवं अभयको धारण करनेवाली, प्रसन्न चित्तवाली, पूर्णामृतरससे आर्द्र हृदयवाली तथा अस्थियोंकी मालाको धारण करनेवाली है।

**विमर्श**––अनाहत पद्मकी अधिष्ठात्री शक्ति काकनी देवी है। यह देवी त्रिनेत्रा तथा चतुर्भुजा है, चारों भुजाओंमें पाश, कपाल, वर तथा अभयको धारण की हुई है. हर्षपूर्वक योगिजनोंका हित करनेवाली है, जो स्वयं प्रसन्न चित्त-वाली है तथा दूसरेको भी प्रसन्न चित्त बनानेवाली है। **पूर्णसुधारसार्द्रहृदया**— सहस्रारसे पूर्णामृत क्षरण होते हुए कमलोंके मध्यमें स्थित छिद्रसे जाते हुए मूलाधार कमलमें पहुँचता है, जहाँ कि कुण्डलिनी इसका पान करती है। जब यह पूर्णामृत सहस्रारसे चलता है तो रास्तेमें प्रत्येक कमलमें स्थित देव एवं देवियोंको अमृतसे आप्लावित कर देता है। यह रस पूर्णानन्दका जनक है, अतः इसे पूर्णा-मृत रस कहते हैं, अतः इस रससे आर्द्र हृदयवाली काकिनी देवी **मत्ता**––उन्मत्ता अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न चित्तवाली है॥ २४ ॥

इस अनाहत कमलकी कर्णिकाके मध्यमें कोटि विद्युत्के समान सुन्दर देदीप्य-मान्, अत्यन्त कोमल शरीरवाली त्रिकोणाकार एक शक्ति शोभायमान् है। उस शक्ति के अन्दर सुवर्णाकार अङ्गरागसे उज्ज्वल, सूक्ष्म छिद्रसे युक्त मस्तकवाला, मणिके समान देदीप्यमान्, कामोद्गमकी शोभासे युक्त बाण नामक शिव लिङ्ग भी स्थित है।

**विमर्श**––प्रस्तुत श्लोकमें अनाहत कमलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित त्रिकोण तथा उस त्रिकोणान्तर्गत बाण नामक शिव लिङ्गका वर्णन किया जा रहा है। **शक्तिस्त्रिकोणाभिधा**—अनाहत कमलकी कर्णिकाके मध्यमें एक त्रिकोण है। यह त्रिकोण अधोमुख है; क्योंकि शक्ति पदका यहाँपर प्रयोग हुआ है, अतः यह भी निष्कर्ष कथन है कि यह एक त्रिकोणाकार योनि है। इसमें यह भी कारण है कि इसीमें बाण नामक शिव लिङ्ग स्थित है। इस त्रिकोणाकार योनि कोटि विद्युत्के समान प्रकाशमान् है। इसका शरीर अत्यन्त कोमल है। **बाणाख्यः शिव-लिङ्गकः**––त्रिकोणाकार योनिमें एक बाण नामक शिव लिङ्ग है। यह लिङ्ग सुवर्णा-कार अङ्गरागोंसे अत्यन्त उज्ज्वल बना है, अर्थात् सोनेके समान अत्यन्त चमकीला है। इस शिव लिङ्गके मस्तकमें एक छिद्र है। यह छिद्र अत्यन्त सूक्ष्म

### अनाहत चक्रके चिन्तनका फल

ध्यायेद् यो हृदि पङ्कजं सुरतरुं शर्वस्य पीठालयं
देवस्याऽनिलहीनदीपकलिकाहंसेन संशोभितम् ।
भानोर्मण्डल-मण्डितान्तर-लसत्किञ्जल्क-शोभाधरं
वाचामीश्वर ईश्वरोऽपि जगतां रक्षाविनाशे क्षमः ॥ २६ ॥
योगीशो भवति प्रियात् प्रियतमः कान्ताकुलस्याऽनिशं
ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणो ध्यानावधानक्षमः ।
गद्यैः पद्यपदादिभिश्च सततं काव्याम्बुधारावहो
लक्ष्मीरङ्गणदैवतः परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात् ॥ २७ ॥

---

है, अतः छिद्रयुक्त इस शिव लिङ्गका मस्तक भाग मणिके समान देदीप्यमान् है। लिङ्गके अग्रभागको 'मणि' भी कहते हैं। इससे 'बाण' लिङ्गका आकार स्पष्ट होता है कि यह पुरुष जननेन्द्रियके समान आकारवाला है। **प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः**—यह लिङ्ग कामके उद्गमकी शोभासे युक्त है, अर्थात् कमनीय कामकी शोभासे युक्त है॥ २५ ॥

जो व्यक्ति कल्प वृक्षके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, शिवका पीठालय, वायु रहित दीपशिखाकार हंस जीवात्मासे सुशोभित, सूर्यमण्डलसे मण्डित अन्तःस्थित केसरकी शोभाको धारण करनेवाला इस अनाहत हृत्कमलका ध्यान करता है वह वाणीमें बृहस्पतिके समान हो जाता है और भी जगत्के शासन, रक्षण तथा विनाश करनेमें समर्थ हो जाता है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें अनाहत पद्मके चिन्तनके फलका निरूपण किया जा रहा है। जो व्यक्ति अनाहत पद्मका ध्यान करता है वह वाणीमें बृहस्पतिके समान हो जाता है। इतना नहीं बल्कि वह सम्पूर्ण जगत्के शासन, रक्षण तथा विनाशन करनेमें भी समर्थ हो जाता है। यह अनाहत पद्म किस प्रकारका है? तो कहते हैं--यह कल्पवृक्षके समान समस्त अभीष्ट वस्तुका प्रदान करने वाला है। यह शर्व—बाण लिङ्गका पीठालय है। इस कमलमें हंस अर्थात् जीवात्मा निवास करता है जो कि वायु रहित दीपशिखाके आकारका है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जीवात्माका निवास अनाहत पद्म--हृत्कमलमें है। इस अनाहत कमलके ऊपरमें एक सूर्यमण्डल है, सूर्यमण्डलका मध्य केसरकी शोभाको धारण किया है॥२६॥

इस कमलका चिन्तक योगियोंमें श्रेष्ठ, समस्त स्त्रीवर्गके प्रियोंमें भी अत्यधिक प्रिय, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, शास्त्रकार, जितेन्द्रिय, ध्यान करनेमें कुशल, गद्य तथा पद्य आदि काव्यकी धाराको निरन्तर प्रवाहित करनेवाला, लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले देव विष्णुके सदृश तथा क्षण भरमें ही दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेमें सक्षम हो जाता है।

### विशुद्ध चक्रका निरूपण

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूमधूम्रावभासं
स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः।

---

**विमर्श**--जो कोई इस अनाहत कमलका चिन्तन करता है वह व्यक्ति **कान्ताकुलस्य प्रियात् प्रियतमः** अर्थात् स्त्रियोंके लिए अत्यन्त प्रिय बन जाता है। इस पुरुषमें स्त्रियोंको आकर्षण करनेवाली एक शक्ति स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न हो जाती है, जिससे कि अपने पतिके रहते हुए भी स्त्रियाँ चञ्चला बनकर इस पुरुषके प्रति अधिक प्रेम करने लगती हैं। **ध्यानावधानक्षमः**--ब्रह्मका चिन्तन करना ही ध्यान है। ब्रह्मचिन्तनमें स्वाभाविकरूपसे मनको अभिनिवेश करना आसान काम नहीं है, किन्तु अनाहत पद्मके चिन्तनसे ब्रह्मचिन्तनमें मनको आसानीसे अभिनिवेश कर सकते हैं। **लक्ष्मीरङ्गणदैवतः**--लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाला देवता विष्णु है। जहाँ कहीं भी लक्ष्मी रहती है वह स्थान आनन्द भोगका आगार बना रहता है। लक्ष्मीका अर्थ सम्पत्ति तथा विष्णु पत्नी लक्ष्मी है। अनाहतपद्मके चिन्तन करनेवाला पुरुष दोनों प्रकारसे परिपूर्ण हो जाता है, अर्थात् प्रचुर धन-सपत्तिका भोग करता है तथा भगवान् विष्णुके सदृश हो जाता है अर्थात् विष्णुके समान सकल ऐश्वर्यसे पूर्ण भगवान् बन जाता है। इसमें स्वतः विष्णुके समान शक्तिका उदय हो जाता है। **क्षणात् परपुरे प्रवेष्टुं शक्तः**--इन शब्दोंसे यहाँपर दो प्रकारके अर्थ निकलते हैं। पहला तो यह है कि इस अनाहत पद्मके चिन्तनसे साधक परपुरे अर्थात् दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेमें समर्थ हो जाता है, अर्थात् परकाय प्रवेशकी सिद्धिप्राप्ति होती है। इस पद्मके चिन्तनसे परकाय प्रवेशकी सिद्धि इसलिए होती है कि इसी पद्ममें निवातदीपकलिकाकार हंस—जीवात्माका निवास है। जीवात्माका चिन्तन यहीं पर होता है। जब कुण्डलिनीका जागरण करना होता है तो भी जीवात्माका ध्यान कर मूलाधारमें पहुँचाना होता है। प्राणप्रतिष्ठा जब मूर्तियोंकी करनी होती है तब इसी जीवात्माका ध्यान कर प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। निष्कर्ष यह है कि जीवात्माको स्थूल शरीरसे भिन्न मानकर चिन्तन करनेसे परकाय प्रवेशकी सिद्धि होती है, जो कि इसी पद्मके चिन्तनका फल है। दूसरा अर्थ यह है कि इस पद्मके चिन्तन करनेवाला पुरुष 'परपुरे' प्रवेश करता है अर्थात् कितना भी बड़ा गहन दुर्ग क्यों न हो भूत प्राणियोंके लिए अदृश्य बन जानेसे आकाशादिगमन करके परपुरमें प्रवेश कर सकता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि अनाहत पद्मके चिन्तनसे साधकको अदृश्यविद्या तथा आकाशादिगमन क्रियाकी सिद्धि प्राप्त होती है॥ २७॥

कण्ठमें अत्यन्त निर्मल, धूम्र वर्णवाला, रक्त वर्णवाले समस्त स्वरों--'अ'से लेकर 'अः' तक षोलह अक्षरोंसे युक्त दलवाला, निरन्तर योगाभ्याससे प्रकाशित

समास्ते पूर्णेन्दुप्रथिततम-नभोमण्डलं वृत्तारूपम् ॥ २७$\frac{3}{4}$ ॥

नभोबीजमवर्ती सदाशिवका स्वरूप

हिमच्छायानागोपरिलसिततनोः शुक्लवर्णाम्बरस्य ॥ २८ ॥
भुजैः पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैःशोभिताङ्गस्य तस्य
मनोरङ्के नित्यं निवसति गिरिजाभिन्नदेहो हिमाभः ।
त्रिनेत्रः पञ्चास्यो ललितदशभुजो व्याघ्रचर्माम्बराढ्यः
सदापूर्वो देवः शिव इति च समाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः ॥ २९ ॥

---

बुद्धिवालेके सम्बन्धमें प्रकाशित, पूर्णचन्द्रके मण्डलके समान सम्पूर्ण शुक्लवर्ण गोलाकार आकाशमण्डलसे युक्त कर्णिकावाला विशुद्ध नामक एक पद्म स्थित है ।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकके तीन पादोंमें विशुद्ध पद्मका निरूपण किया गया है । विशुद्ध पद्मका स्थान कण्ठ है । इसका वर्ण धूमके समान है अर्थात् यह धूम्र वर्ण-वाला है । इसके षोलह दल हैं । इन षोलह दलोंपर 'अ' से लेकर 'अः' तक बिन्दुयुक्त अर्थात् अँ, आँ, इँ, ईँ, उँ, ऊँ, ऋँ, ॠँ, ऌँ, ॡँ, एँ, ऐँ, ओँ औँ, अँ, अः—ये षोलह अक्षर विराजमान् हैं । इन अक्षरोंका वर्ण रक्त है । इस विशुद्ध पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें चन्द्रमण्डलके समान शुक्ल वर्णवाला गोलाकार एक आकाशमण्डल है । **दीपितं दीप्त-बुद्धेः**—यह विशुद्ध पद्म उसीके लिए प्रकाशित होता है अर्थात् उसीके ज्ञानका विषय बन सकता है जिसकी बुद्धि निरन्तर योगाभ्याससे प्रकाशित हो चुकी है, अतः प्रत्येक साधकको चाहिए कि कुण्डलिनी योगके लिए यम-नियमादि साधनोंसे चित्तवृत्तिको स्थिर करे ॥ २७$\frac{3}{4}$ ॥

उस शुक्ल वर्णके आकाशके मध्यमें शुक्लहस्तीके ऊपर आरूढ़ पाश, अंकुश, वर तथा अभयसे युक्त हाथोंसे सुशोभित अंगवाले उस आकाश बीज 'हँ'-की गोदमें अर्द्धनारीश्वररूप, शुक्लवर्णवाला, तीन नेत्रवाला, पाँच मुखवाला, दश भुजाओंसे सुशोभित, व्याघ्रचर्म रूपी वस्त्रको धारण किया हुआ नित्यस्वरूप प्रसिद्ध प्राधान्य-से प्रख्यात सदाशिव नामक देवता निरन्तर विराजमान् है ।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें आकाशमण्डलके मध्यमें स्थित आकाशबीजको बतलाते हुए उस आकाशबीजके गोदमें स्थित सदाशिव देवताको बतला रहे हैं । उस शुक्ल वर्णके आकाशके मध्यमें आकाशका बीज 'हँ' मूर्त्याकारसे विराजमान् है । आकाश शुक्ल वर्ण होनेसे इसका बीज 'हँ' भी शुक्ल वर्णवाला है । इसका वाहन **हिमच्छायानागः**—बरफके समान कान्तिवाला हस्ती अर्थात् शुक्ल हस्ती है । इस आकाशबीजकी चार भुजाएँ हैं । ये भुजाएँ पाश, अंकुश, वर तथा अभय—इनसे युक्त रहनेसे इस बीजकी अंगशोभा बढ़ रही है । इस आकाश

विशुद्ध पद्मकी कर्णिकामें रहनेवाली शाकिनी शक्तिका स्वरूप

**सुधासिन्धोः शुद्धा निवसति कमले शाकिनी पीतवस्त्रा**
**शरं चापं पाशं सृणिमपि दधती हस्तपद्मैश्चतुर्भिः ।**
**सुधांशोः सम्पूर्णं शशपरिरहितं मण्डलं कर्णिकायां**
**महामोक्षद्वारं श्रियमभिमतशीलस्य शुद्धेन्द्रियस्य ॥ ३० ॥**

---

बीजके गोदमें सदाशिव नामक देवता निरन्तर विराजमान् है। इसका वर्ण शुक्ल है। यह **गिरिजाभिन्नदेहः**--गिरिजा पार्वतीसे अभिन्न देह अर्थात् अर्द्धनारीश्वर विग्रह रूप है। इसकी तीन आँखें, पाँच मुख तथा दस भुजाएँ हैं। इसका वस्त्र व्याघ्रचर्म है। **समाख्यानसिद्धः**—इस सदाशिवकी शास्त्रानुमत रूपसे तथा योगियों-के मनमें प्रकाशित रूपसे नित्यस्वरूपके रूपसे प्रसिद्धि है। विशुद्ध पद्मका अधिष्ठातृ-देवता सदाशिव है ॥ २९ ॥

उस विशुद्ध पद्ममें सुधा समुद्रके समान शुक्ल वर्णवाली एवं सुशीतल किरणवाली, पीत वस्त्रको धारण करनेवाली, चारों करकमलोंमें शर, चाप, पाश तथा सृणिको धारण करनेवाली शाकिनी नामक देवी निवास करती है। इसी कमलकी कार्णिकाके मध्यमें कलंक रहित सम्पूर्ण चन्द्रका एक मण्डल है जो योगश्रीको चाहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषके लिए निर्वाण मुक्तिका द्वार है।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकके प्रथम दो पादोंमें शाकिनी देवीका तथा द्वितीय दो पादोंमें विशुद्ध पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित पूर्णचन्द्रमण्डलका कथन है। विशुद्ध पद्म-की अधिष्ठात्री देवी शाकिनी देवी है। **सुधासिन्धोः शुद्धा**–शाकिनी देवी सुधा समुद्रके समान शुद्धा–शुक्लवर्णा है। शाकिनी देवीको ज्योतिःस्वरूपा कहा गया है। शाकिनी देवीके शरीरसे जो किरण निकलती हैं वे सुशीतल तथा शुक्लवर्ण हैं। जिस प्रकारसे सुधा सिन्धुका अमृतमय सुशीतल शुक्लत्व कथन किया गया उसी प्रकार ज्योतिःस्वरूपा शाकिनी देवीका भी उत्ताप रहित शुक्ल किरण है। यह देवी पीत वस्त्रको धारण करनेवाली तथा चार भुजावाली है। चारों भुजाओंमें शर, चाप, पाश तथा अंकुश सुशोभित हो रहे हैं। विशुद्ध पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें एक निष्कलंक पूर्णचन्द्रका मण्डल है। **श्रियमभिमतशीलस्य**--श्रीशब्दसे योगश्री अर्थात् योगसे प्राप्त मुक्ति–मोक्ष है। इसी मुक्तिके लिए निरन्तर चिन्तन करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषके लिए योगमार्गके अवलम्बनसे यह चन्द्रमण्डल **मोहामोक्षद्वारम्**—निर्वाण मुक्तिका द्वार है। इसे इसलिए निर्वाणमुक्तिका द्वार कहा गया है कि इस चन्द्रमण्डलके चिन्तनसे योग मार्गके अव-लम्बनसे योगी निर्वाण मुक्तिको अवश्य प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥

### विशुद्ध चक्रके चिन्तनका फल

**इह स्थाने चित्तं निरवधि विनिधायाऽऽत्मसम्पूर्णयोगः**
**कविर्वाग्मी ज्ञानी स भवति नितरां साधकः शान्तचेताः।**
**त्रिकालानां दर्शी सकलहितकरो रोगशोकप्रमुक्त-**
**श्चिरञ्जीवी जीवी निरवधिविपदां ध्वंसहंसप्रकाशः ॥ ३१ ॥**

इस विशुद्ध पद्मका जो साधक चिन्तन करता है वह ब्रह्मात्मयोगको प्राप्त करता है; कवि, वक्ता, तथा ज्ञानी होता है; उसका चित्त निरन्तर शान्तिगुणोंसे युक्त रहता है। वह भूत, वर्तमान तथा भविष्य—तीनों कालोंका द्रष्टा बन जाता है। वह सबका कल्याण करनेवाला तथा समस्त रोग तथा शोकोंसे मुक्त होकर चिरंजीवी होता है। इस प्रकारका पुरुष असीमित विपत्तियोंको नष्ट करनेवाले हंसके प्रकाश-वाला—सूर्यरूप हो जाता है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें विशुद्ध पद्मके चिन्तनसे प्राप्त होनेवाले फलका कथन किया गया है। **आत्मसम्पूर्णयोगः**—आत्मा शब्दसे जीवात्मा अर्थ प्रतीत होता है। सम्पूर्ण–परमात्मा–ब्रह्म है। जीव अज्ञानके कारण अपनेको अपूर्ण समझता है। तब वह सम्पूर्ण—ब्रह्म होना चाहता है। जब अज्ञान नष्ट हो जाता है तब जीव अपनेको सम्पूर्ण मानता है। उस समय वह अपूर्ण–जीव नहीं रहता बल्कि सम्पूर्ण–ब्रह्म हो जाता है–यही है आत्म-ब्रह्मका योग। समस्त योगका मूल लक्ष्य आत्म-ब्रह्मका योग–मोक्ष है और यही योगकी परमसिद्धि कैवल्यप्राप्ति है। इस विशुद्ध पद्मके चिन्तनसे यह आत्म-ब्रह्म योग प्राप्त हो जाता है। **शान्तचेताः**—जिसका हृदय–चित्त शान्त है उसे शान्तचेताः कहते हैं। चित्त तभी शान्त होगा जब वह शान्तिगुणोंसे युक्त हो। दया, प्राणियोंमें अलोलुपता, मृदुता, लज्जा, चपलतारहित, तेज, क्षमा, धृति, शौच, द्रोहशून्यता, अतिमानितासे शून्य होना आदि–ये शान्तिगुण कहलाते हैं। इन गुणोंसे युक्त व्यक्ति शान्तचेताः कहलाता है। विशुद्ध पद्मके ध्यानसे साधक शान्त-चेताः हो जाता है। **चिरञ्जीवी**—चिरञ्जीवीका अर्थ यहाँ पर शरीरके साथ सब-दिनके लिए जीवन यापन करना नहीं है। जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब समस्त शोक नष्ट हो जाता है। शोकरहित होनेसे पुरुषका शारीरिक व्याधि भी नहीं होती है; क्योंकि शोक एक मानसिक व्याधि है। मानसिक व्याधि कारण बनता है शारीरिक व्याधिके उत्पन्न करनेमें; अतः ज्ञान प्राप्त होनेसे दोनों प्रकारके व्याधिनाशसे मनुष्य चिर समय तक देह धारण करता है। प्रारब्ध कर्मके क्षयके पश्चात् शरीर त्याग अवश्य होता है। **ध्वंसहंसप्रकाशः**—असीमित विपदाओंको नष्ट करनेमें साधक सूर्यके समान तेजस्वी बन जाता है। विशुद्ध पद्मके चिन्तनसे साधकको वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे सकल विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं। हंस

### आज्ञा चक्रका निरूपण

आज्ञानामाऽम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधाम प्रकाशं।
हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम्॥ ३१½॥

### आज्ञा पद्मकी कर्णिकामें रहनेवाली हाकिनी शक्तिका स्वरूप

तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना।
विद्यामुद्रां कपालं डमरु जपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता॥ ३२॥

---

शब्दसे सहस्रार स्थित हंस रूप आत्माका भी ग्रहण होता है, जो सूर्यके समान प्रकाशवाला है; अर्थात् अज्ञान तथा आपदाओंको नष्ट करनेवाला है। विशुद्ध चक्रमें वैखरी शक्ति स्थित है॥ ३१॥

भौहोंके मध्यमें चन्द्रमाके समान शुक्लवर्णवाला, ध्यानका स्थान, प्रकाशस्वरूप, स्वरयुक्त 'ह' तथा 'क्ष' दोनों अक्षरोंसे युक्त दो दलवाला, अत्यन्त शुभ्र आज्ञा नामक एक पद्म स्थित है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकार्धमें अब आज्ञा चक्रका निरूपण किया जा रहा है। यह आज्ञा पद्म दोनों भौहोंके बीचमें स्थित है। इसका वर्ण चन्द्रमाके समान शुक्लवर्ण है। **ध्यानधाम**—सामान्यतः यदि ध्यान केन्द्रित करना हो तो आज्ञा चक्रमें ही ध्यान रखना सर्वोत्तम है। यहाँपर शीघ्रतासे ध्यान केन्द्रित होता है; अतः इसे ध्यानका स्थान—धाम कहा गया है। **प्रकाशम्**—यह प्रकाश स्वरूप है; अर्थात् यह अत्यन्त प्रकाशमान् है। **नेत्रपत्रम्**—नेत्रशब्द दो संख्याका सूचक है। पत्र कहते हैं दलको; अतः यह पद्म नेत्रपत्र—दो दलवाला है। इन दोनों दलोंमें 'हँ' तथा 'क्षँ' विराजमान होनेसे यह कमल अत्यन्त शुभ्र दीखता है। इससे स्पष्ट होता है कि 'हँ' तथा 'क्षँ'—दोनों अक्षर शुभ्र हैं। **कलाभ्याम्**—कला शब्द स्वरों या अक्षरोंका वाचक है। 'ह' तथा 'क्ष' दोनों स्वरोंसे युक्त एवं बिन्दुसे युक्त होकर 'हँ' तथा 'क्षँ'के रूपमें दलोंमें स्थित हैं॥ ३१½॥

उस आज्ञा पद्मके मध्यमें चन्द्रमाके समान शुक्ल वर्णवाली, छः मुखवाली, हाथोंमें ज्ञानमुद्रा, कपाल, डमरु तथा जपमालाको धारण करनेवाली, शुद्ध चित्तवाली हाकिनी देवी स्थित है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकार्धमें आज्ञा चक्रमें स्थित हाकिनी देवीके स्वरूपका विवेचन किया गया है। आज्ञा चक्रकी अधिष्ठात्री देवी हाकिनी शक्ति है। यह देवी चन्द्रमाके समान शुक्ल वर्णवाली है। इसके छ मुख हैं, चार भुजाएँ हैं। इन चारों भुजाओंमें ज्ञानमुद्रा, कपाल, डमरु तथा जपवटी अर्थात् जपमाला सुशोभित हैं। यह देवी अत्यन्त शुद्ध चित्तवाली है॥ ३२॥

### आज्ञा पद्ममें रहनेवाले मनकी स्थितिका स्वरूप

एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धं
योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिह्नप्रकाशम् ।
विद्युन्माला-विलासं परम-कुल-पदं ब्रह्मसूत्र-प्रबोधं
वेदानामादिबीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत् तत् क्रमेण ॥ ३३ ॥

---

इस पद्मके अन्तरालमें सूक्ष्म रूपसे प्रसिद्ध मन स्थित है। इसी पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित त्रिकोणमें विद्युत्की मालाके समान प्रकाशवाला इतर नामक शिव लिङ्गरूपसे भासित हो रहा है। इसीके ऊपर विद्युत्के समान प्रकाशवाले शक्तिरूप त्रिकोणमें वेदोंका आदिबीज प्रणव 'ॐ' स्थित है जो कि ब्रह्मनाड़ीको प्रकाशित करनेवाला है, उनका क्रमसे स्थिर चित्तसे चिन्तन करे।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकमें आज्ञा चक्रमें स्थित मन, इतर लिङ्ग तथा प्रणवका निरूपण किया गया है। **मनः सूक्ष्मरूपम्**—इसी आज्ञा चक्रमें मन सूक्ष्मरूपसे स्थित है। यह इतना सूक्ष्म है कि इसे देखा नहीं जा सकता है; क्योंकि यह संकल्प-विकल्पात्मक वृत्तिरूप है। इसकी अनुभूति होती है। **प्रसिद्धम्**—यद्यपि मनको देख नहीं सकते तथापि इसकी स्थितिकी अनुभूति होनेसे ध्यान--चिन्तन द्वारा यह मन ज्ञेय बन जाता है; अतः यहाँपर मनकी सत्ताको स्वीकारते हुए 'प्रसिद्ध' पदका प्रयोग किया गया है। आज्ञा पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें **योनौ**—एक त्रिकोण है। उस त्रिकोणके मध्यमें इतर नामक शिव स्थित है। **इतरशिवपदम्**--'इ'का अर्थ है काल। इ--कालको जो तर जाता है अर्थात् जो कालातीत है वही इतर है। शिव इसी पद्ममें लिङ्गरूपसे विराजमान् है। इसे 'इतर लिङ्ग' कहते हैं। यह विजलीकी मालाके समान प्रकाशवाला अर्थात् अत्यन्त शुक्ल वर्णवाला है। **परमकुलपदम्**--कुल कहते हैं शक्तिको, जो कि एक त्रिकोणरूपा है। यह त्रिकोण इतर लिङ्गके ऊपर स्थित है जो कि परमा अर्थात् बिजलीके समान प्रकाशवाला सर्वोत्कृष्ट है। यहाँ पर वस्तुतः पाठ 'परमकुलपथम्' होना चाहिए; क्योंकि 'परमकुलपथम्'का अर्थ होगा परशक्तिका पथ अर्थात् कुण्डलिनीका मार्ग उस इतर लिङ्गके मध्यमें है। अर्थात् अन्य लिङ्गोंके समान यह छिद्रयुक्त है। **वेदानामादिबीजम्**--वेदोंका आदिबीज प्रणव है। प्रणव कहते हैं 'ॐ' को। यह 'ॐ' इतर लिङ्गके ऊपर स्थित त्रिकोणके मध्यमें विद्यमान है। आगे इसे प्रणवाकृति अन्तरात्मा ज्योतिः रूप कहा गया है। **ब्रह्मसूत्रप्रबोधम्**--ब्रह्म नाड़ीके निरूपणके समयमें कहा गया है कि ब्रह्म नाड़ी ही चित्रिणी नाड़ी है। इस चित्रिणी नाड़ीको 'प्रणव विलासिता' भी कहा गया है। यहींपर उसी बातको पुनः कहते हैं कि ब्रह्म नाड़ीको प्रकाशित करनेवाला प्रणव--ॐ ही है। 'ॐ' इतना प्रकाशवाला है कि यहाँपर पहुँचनेवाली ब्रह्म नाड़ी भी अत्यन्त प्रकाशवाली तेजोमयी बन जाती है, जिससे कि समस्त

आज्ञा चक्रके चिन्तनका फल

**ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः**
**सर्वज्ञः सर्वदर्शी सकलहितकरः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता।**
**अद्वैताचारवादी विलसति परमापूर्वसिद्धि-प्रसिद्धो**
**दीर्घायुः सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने च ॥ ३४ ॥**

---

कमल प्रकाशित हो जाते हैं। **चिन्तयेत् तत् क्रमेण**—यहाँपर क्रमसे चिन्तन करनेके लिए कहा गया है। श्लोकमें क्रमसे नहीं दिया गया है। वस्तुतः क्रम इस प्रकार है—इस आज्ञा पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें हाकिनी शक्ति है। इस हाकिनी शक्तिके ऊपरमें स्थित त्रिकोणमें इतर लिङ्ग है। इतर लिङ्गके ऊपरमें स्थित त्रिकोणमें प्रणव स्थित है। प्रणवके ऊपरमें मन स्थित है। उपर्युक्त क्रमसे स्थिर चित्त होकर चिन्तन करना चाहिए ॥ ३३ ॥

आज्ञा चक्रका ध्यान करनेवाला पुरुष साधकोंमें श्रेष्ठ, शीघ्र ही दूसरेके पुरमें प्रवेश करनेवाला, मुनियोंमें श्रेष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सबका हित करनेवाला, सकल शास्त्रोंके अर्थोंको जाननेवाला, अद्वैतवादी, उत्तम महासिद्धियोंकी प्राप्तिमें समर्थ तथा दीर्घायु हो जाता है। वह पुरुष भी तीनों लोकोंके रचना, पालन तथा संहार करनेमें सक्षम हो जाता है।

**विमर्श**–प्रस्तुत श्लोकमें आज्ञा चक्रके चिन्तनसे प्राप्त होनेवाले फलोंका कथन किया जा रहा है। आज्ञा चक्रका जो पुरुष चिन्तन करता है वह साधकोंमें श्रेष्ठ हो जाता है। उसे परकाय प्रवेशसिद्धि तथा अभेद्य दुर्गमें प्रवेश करनेकी सिद्धिकी प्राप्ति होती है। **मुनीन्द्रः**–मनन करना जिसका स्वभाव हो उसे मुनि कहते हैं। आज्ञा चक्रका मनन करनेवाला पुरुष मुनियोंमें श्रेष्ठ हो जाता है। **सर्वज्ञः**–सर्वज्ञका अर्थ है सब कुछ जाननेवाला; अर्थात् जगत्को जगत् तथा ब्रह्मको ब्रह्मके रूपमें जानना; प्रत्येक वस्तुओंका विवेचन कर सद् तथा असत्का ज्ञान करना है। **सर्वदर्शी**–सर्वदर्शीका अर्थ है सब कुछ देख लेना। शास्त्रके नियमोंके अनुसार विवेक बुद्धिसे पूर्व तथा परका ज्ञान करना। **सर्वशास्त्रार्थवेत्ता**—सकल वेदादि शास्त्रोंमें एकमात्र ब्रह्म तथा आत्माका प्रतिपादन किया गया है। यही शास्त्रोंका अर्थ है। इसे जो जानता है वस्तुतः वही शास्त्रार्थवेत्ता है। **अद्वैताचारवादी**–शास्त्रोंमें ब्रह्म तथा आत्माके एकत्वका प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म ही आत्मा है। मायाके कारण भिन्न-सा अनुभव होता है; किन्तु माया मिथ्या है। जैसे एक बुन्द जल भी जल है तथा सम्पूर्ण तालाबका जल भी वही जल। इसी प्रकार शरीरमें जब ब्रह्म रहता है तो वह आत्मा—जीवात्मा कहलाता है, किन्तु जब इन शरीरादि पदार्थोंसे अलग हो जाता है तो वह ब्रह्म कहलाता है। इस प्रकार आत्मा तथा ब्रह्मके एकत्वका जो आचरण करता है वही अद्वैता–

### आज्ञा-पद्ममें रहनेवाले प्रणवका स्वरूप

तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् निवसति सततं शुद्धबुद्ध्यन्तरात्मा
प्रदीपाभ-ज्योतिः प्रणव-विरचना-रूप-वर्ण-प्रकाशः।
तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्धस्तदुपरि विलसद्-बिन्दुरूपी मकार-
स्तदूर्ध्वे नादोऽसौ जलधवल-सुधाधारसन्तान-हासी ॥ ३५ ॥

---

चारवादी—अद्वैतवादी है। **परमापूर्वसिद्धिप्रसिद्धः**—सिद्धियाँ अनेक हैं, किन्तु उनमें अणिमा-महिमा आदि अष्टसिद्धि प्रमुख हैं। इस आज्ञा चक्रके ध्यानसे साधकको ये सारी सिद्धियाँ तो प्राप्त हो ही जाती हैं और भी इसकी विशेषता यह है कि इच्छित सिद्धियाँ अर्थात् जो चाहे वह सब कुछ अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए 'परमापूर्वसिद्धि' शब्दका प्रयोग यहाँपर किया गया है। अतः इसी श्लोकमें यह भी कहा गया है कि त्रिभुवनकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके समान शक्ति उस साधकको प्राप्त होती है। इससे बढ़कर और कौन-सी सिद्धि होगी ॥ ३४ ॥

उस आज्ञा चक्रके मध्यमें शुद्ध बुद्धिवालोंके द्वारा जानी जानेवाली अन्तरात्मा निवास करती है। जो कि प्रदीपकी आभाके समान ज्योतिवाली तथा प्रणवके विरचना रूप अक्षरके रूपमें प्रकाशित होनेवाली है। उस अक्षरके ऊपर अर्द्धचन्द्र है। उसके ऊपर बिन्दु रूपी मकार सुशोभित हो रहा है। उसके ऊपरमें यह जल-कणके समान धवल अमृताधार चन्द्रमाके समूहके समान दीप्तिवाला नाद स्थित है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें प्रणवाकृति अन्तरात्माका निरूपण है। **शुद्धबुद्ध्यन्त-रात्मा**—आज्ञा चक्रमें स्थित त्रिकोणके मध्यमें अन्तरात्माका निवास है। यह अन्त-रात्मा शुद्ध बुद्धिवाले साधकोंके द्वारा विदित होती है। इसके स्वरूपके निर्धारणमें यह बताया गया है कि यह प्रणवाकृति है। इसी प्रणवको योगी लोग अन्तरात्माके रूपमें माना है। **प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः**—प्रणवकी विरचनाके लिए 'ओ'—इस अक्षरकी आवश्यकता है। यह अक्षर अकार तथा उकारके योगसे बनता है। इसी अक्षरको प्रणवाक्षर कहते हैं। इसी अक्षरके रूपसे अन्तरात्मा स्थित है। अर्थात् यह अक्षर रूपी है। इस प्रणवाकृति अक्षर 'ओ'के ऊपरमें एक अर्द्धचन्द्र है, जिससे इसका स्वरूप 'ओ॑' बना है। इसी अर्द्धचन्द्रके मध्यमें बिन्दु रूपी मकार स्थित है जिससे इसका स्वरूप अब 'ओँ' प्रणवमन्त्र बन गया है। इसी बिन्दुके ऊपर नाद स्थित है। 'ओँ' इस अक्षरका मुद्रण चिह्न 'ॐ' है। इन दोनोंमें भेद नहीं है। **जलधवलसुधाधारसन्तानहासी**—नाद अत्यन्त शुक्ल वर्ण है, जल कणके समान धवल वर्णवाला है तथा अमृताधार—चन्द्र समूहके समान दीप्तिवाला है। अर्थात् चन्द्रसे भी अत्यधिक शुक्ल वर्णवाला है यह नाद ॥ ३५ ॥

**आज्ञा पद्ममें प्रणवयोगका निरूपण**

**इह स्थाने लीने सुसुखसदने चेतसि पुरं**
**निरालम्बां बद्ध्वा परमगुरुसेवासुविदिताम् ।**
**तदभ्यासाद् योगी पवनसुहृदां पश्यति कणान्**
**ततस्तन्मध्यान्तः प्रविलसितरूपानपि सदा ॥ ३६ ॥**

**आज्ञा पद्ममें परमशिवकी स्थितिका वर्णन**

**ज्वलद्-दीपाकारं तदनु च नवीनार्कबहुल-**
**प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितम् ।**

---

अत्यन्त सुखमय इस आज्ञा चक्रमें परमगुरुकी सेवासे प्राप्त की गयी निरालम्बा मुद्रासे पुरका बन्धन करनेसे चित्तके लीन होनेपर उसके बार-बार अभ्यास करनेसे योगी उस प्रणवाधार त्रिकोणके मध्यमें प्रकृष्ट रूपसे भासमान वह्निके कण अर्थात् ज्योतिके स्फुलिङ्गोंको देखता है ।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकमें आज्ञा चक्रमें प्रणव योगका निरूपण किया जा रहा है । **सुसुखसदने**--यह आज्ञा चक्र सुखका सदन-गृह है । यहाँपर सुखका अविच्छिन्न प्रवाह रहता है । दुःख नामक कोई वस्तु यहाँपर है ही नहीं । **पुरं निरालम्बां बद्ध्वा**--आज्ञा चक्रमें चित्तके लीन होनेके लिए पुर-बन्धनकी आवश्यकता है । पुर बन्धनके लिए निरालम्बा मुद्राका प्रयोग किया जाता है । जब तक पुर बन्धन नहीं होता है तब तक मनकी शुद्धि तथा स्थिरता नहीं हो सकती है । पुर बन्धनके लिए अनेक उपाय बताये गये हैं । जैसे--योनि मुद्रा, खेचरी मुद्रा तथा निरालम्बा मुद्रा । योगी गुरुपरम्परासे प्राप्त मुद्रासे ही पुर बन्धन करे । 'पुर' निरालम्ब होना चाहिए अर्थात् मनका विषय-सम्बन्ध लेश मात्र भी न हो । विषयसे हटाकर निर्विषय मनका आज्ञा चक्रमें स्थापन करना पुर बन्धन है । अर्थात् पुरमें मनको निरुद्ध कर देना पुर बन्धन है । गुरु परम्परासे प्राप्त मुद्रासे पुर बन्धन करना अनिवार्य है; क्योंकि मुद्राओंके बन्ध करते समय अनेक विघ्न आते हैं तथा शरीर स्थित वायुओंके स्थानमें परिवर्तन हो जाता है । वायुओंके परिवर्तनसे योगमें विपरीत फल भी प्राप्त हो जाते हैं । अतः अनुभवी परम गुरु अर्थात् श्रेष्ठ योगियोंसे प्राप्त मुद्रासे पुर बन्धन करना चाहिए । इसके बार-बार अभ्यास करनेसे आज्ञा चक्रमें मनके लीन हो जाने पर योगीको प्रणवके आधारमें त्रिकोणमें ज्योतिके स्फुलिङ्गोंका साक्षात्कार होता है, जो कि प्रकृष्ट रूपसे भासमान् हैं ॥ ३६ ॥

उसके बाद जलते हुए दीपके समान, प्रातःकालीन सूर्यके प्रकाशोंके समान आकाश एवं धरतीके मध्य मिलित ज्योतिका दर्शन होता है । इसी स्थानमें भगवान्-

इह स्थाने साक्षाद् भवति भगवान् पूर्णविभवो-
ऽव्ययः साक्षी वह्नेः शशिमिहिरयोर्मण्डल इव ॥ ३७ ॥

आज्ञा पद्ममें योगसे प्राणत्याग करनेका फल

इह स्थाने विष्णोरतुल-परमामोद-मधुरे
समारोप्य प्राणं प्रमुदितमनाः प्राणनिधने ।
परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम् ॥ ३८ ॥

---

का साक्षात्कार होता है, जो कि अविनाशी, पूर्ण विभव, साक्षी है तथा अग्नि; चन्द्र एवं सूर्यमण्डलके समान तेजोमय है ।

**विमर्श**––प्रस्तुत श्लोकके पूर्वार्द्धमें ज्योतिका तथा उत्तरार्द्धमें भगवान्का कथन किया गया है । जब योगीको प्रणवाधार त्रिकोणके मध्यमें ज्योतिः स्फुलिङ्गों-का दर्शन होता है तब अत्यधिक अभ्यासके कारण उस ज्योतिका भी दर्शन हो जाता है । यह ज्योति जलते हुए दीपके समान आकारवाली है । इसका प्रकाश प्रातः कालीन सूर्यके प्रकाशोंके समान है । **गगनधरणीमध्यमिलितम्**––आज्ञा चक्रके ठीक ऊपर सहस्रारका शून्य है, यह शून्य ही गगन है । शून्यके नीचे धरणी है जो कि मूलाधार स्थित धरामण्डल है । अर्थात् मूलाधारसे लेकर सहस्रार पर्यन्त यह ज्योति व्याप्त है । **पूर्णविभव**––इसी स्थानमें अर्थात् आज्ञा चक्रमें भगवान् पूर्णविभवका दर्शन होता है । पूर्णविभवका अर्थ है––समस्त विभव अर्थात् सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने आदि समस्त प्रकारके विभवोंसे संयुक्त होना है । और भी सम्पूर्ण रूपसे 'विभुत्वम्' अर्थात् सर्वव्यापक रूपसे स्थित होना है । यह भगवान् सर्व साक्षी है, तथा अविनाशी है, एवं अग्नि, चन्द्र तथा सूर्यके मण्डलके समान स्थित होकर तेजोमय बना हुआ है ॥ ३७ ॥

इस विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक पूर्णविभवके असीमित परमानन्दरसस्वरूप स्थानमें प्राणका समारोपण करके प्राण निधन होनेपर योगीन्द्र जन आनन्द स्वरूप को प्राप्तकर तीनों लोकोंके आदि, अजन्मा, अविनाशी, पुराण, चैतन्यस्वरूप, वेदान्त द्वारा विदित परमपुरुषमें प्रवेश कर जाता है ।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें आज्ञा चक्रमें योगसे प्राणत्याग करनेके फलका निरूपण किया गया है । **विष्णोरतुलपरमामोदमधुरे**—यहाँपर 'विष्णु' शब्दका प्रयोग किया गया है जो कि पूर्व श्लोकमें कथित पूर्णविभव–सर्वव्यापकका ही अर्थ है । उस विष्णु पूर्णविभव भगवान् किस प्रकारका है तो कहते हैं—'अतुलपरमा-मोदमधुरे' है । अर्थात् वहाँ परमानन्दरसकी प्राप्ति होती है । उसकी भी कोई सीमा

आज्ञा पद्मके ऊर्ध्वमें महानादके दर्शनका फल

**लयस्थानं वायोस्तदुपरि च महानादरूपं शिवार्द्धं**
**सिराकारं शान्तं वरदमभयं शुद्धबुद्धि-प्रकाशम्।**
**यदा योगी पश्येद् गुरु-चरणयुगाम्भोज-सेवासुशील-**
**स्तदा वाचां सिद्धिः करकमलतले तस्य भूयात् सदैव॥ ३९॥**

---

नहीं है और न ही यह किसकी उपमा बन सकती है। अर्थात यह निरन्तर अविच्छिन्न असीमित आनन्दका स्वरूप है। इसी स्थानमें जब योगी प्राणका समारोपण करता है तब उसके निधन होनेपर वह परब्रह्ममें प्रवेश करता है। **नित्यम्**—ब्रह्म अविनाशी होनेसे नित्य है। **देवम्**—द्योतनात् देव, अर्थात् चैतन्य स्वरूप है। **अजम्**—जिसका कभी जन्म नहीं हुआ है। जन्म नहीं तो मरण भी नहीं। **आद्यं त्रिजगताम्**—वह तीनों जगत्का आदि है; क्योंकि जगत्की सृष्टिके पूर्व केवल उसकी सत्ता मात्र रहती है। अतः सबका कारण एक मात्र यही है। **पुराणम्**—सृष्टि, स्थिति तथा लयका कारण होनेसे सबसे प्राचीन वह पुराण है। **परम्**—यह सबसे परे है अर्थात् मायासे भी यह परे होनेसे सर्वश्रेष्ठ सर्वातीत कहलाता है। **पुरुषम्**—पुरमें अर्थात् शरीरमें शयन करनेसे यह पुरुष कहलाता है अर्थात् यह सकल प्राणियोंमें अन्तरात्मा रूपसे स्थित है। **वेदान्तविदितम्**—वेदान्त कहते हैं श्रुति—उपनिषद्को। उपनिषद् अर्थात् श्रुतिमें ब्रह्मका प्रतिपादन किया गया। श्रुति ब्रह्मके लिए प्रमाण है। अतः यह ब्रह्म श्रुतिवाक्योंद्वारा विदित होता है। **प्रविशति**—प्रवेश करनेका अर्थ है कि उस ब्रह्ममें जब योगी प्रवेश करता है अर्थात् जब उसे स्वात्मस्वरूपसे जान लेता है तो योगीको निर्वाण अर्थात् मुक्ति—मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है॥ ३८॥

जिस समय योगी गुरुके पादपद्मयुगलकी सेवासे सुन्दर योगानुष्ठानरूपी सद्गुणोंसे युक्त होकर आज्ञा चक्रके ऊर्ध्वमें वायुके लयस्थान, शक्तिरूप हलके समान आकारवाले, सौम्यमूर्त्ति, वर तथा अभयके प्रदायक, शुद्धबुद्धिके प्रकाशक महानाद स्वरूपका दर्शन कर लेता है, उस समय उसके करकमलतलगत सर्वदा वाणीकी सिद्धि हो जाती है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें आज्ञा चक्रके ऊपर महानादके दर्शनके फलोंका निरूपण किया गया है। आज्ञा चक्रके ऊपर तथा सहस्रारके नीचे योगीजन महानादके स्वरूपका दर्शन करते हैं। **गुरुचरणयुगाम्भोजसेवासुशीलः**—महानादके स्वरूपके दर्शनके लिए योगीकी योग्यताका निर्धारण किया गया है कि योगी गुरुके चरण कमलोंकी सेवा करे। इससे अत्यन्त समर्पण भाव तथा श्रद्धाका बोध होता है। उसकी सेवासे योगी योगानुष्ठानरूपी सद्गुणोंसे युक्त हो जाता है अर्थात् निर्विघ्न योगसिद्धिको प्राप्त

सहस्रारपद्मका स्वरूप

**तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशं**
**विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम् ।**
**अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकला-कान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं**
**लकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसित-वपुः केवलानन्द-रूपम् ॥ ४० ॥**

---

कर लेता है। अब महानादके स्वरूपका निर्धारण किया जा रहा है। **वायोः लयस्थानम्**—महानाद वायुका लयस्थान है। इसीमें वायुका लय होता है; क्योंकि इसीसे वायुकी सृष्टि होती है। **शिवार्द्धम्**—नाद शक्तिरूप है। शिव अर्द्धनारीश्वर विग्रह होनेके कारण उसका आधा भाग शक्ति है। अतः नाद शक्तिरूप है। **सिराकारम्**—महानादको सिराकार बतलाया गया है अर्थात् यह लाङ्गलाकार--हलके समान इसका आकार है। और भी यह सौम्यमूर्ति, वर तथा अभयको प्रदान करनेवाला है। **शुद्धबुद्धिप्रकाशम्**--यह महानाद शुद्धबुद्धिका प्रकाशक है। जब बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब उसमें सदसद्विवेककी शक्ति पूर्ण रूपसे फलीभूत होती है। मलिन बुद्धि युक्तियुक्त निर्णय नहीं ले सकती है। जब महानादसे यह शुद्धबुद्धि प्रकाशित हो जाती है तब निश्चित ही निर्विघ्न पूर्वक योगीकी योगसिद्धि हो जाती है तथा उसे वाणीकी सिद्धि प्राप्त है। योगी जो कुछ भी कहेगा वह सत्य ही होगा ॥ ३९ ॥

उस महानादके ऊपरमें शङ्खिनी नामक नाड़ीके शिखर प्रदेशमें विसर्ग नामक शक्तिके नीचे पूर्णचन्द्रके समान अत्यन्त शुभ्र प्रकाशरूप सहस्रदल कमल स्थित है, जो नीचेकी ओर मुखवाला है, अत्यन्त सुन्दर है, प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिवाले केशरपुञ्जसे युक्त है, अकार आदि अक्षरोंसे सुशोभित शरीरवाला है तथा केवलानन्द स्वरूप है।

**विमर्श**—षट्चक्रका निरूपण करके अब सहस्रारका निरूपण करते हैं। इससे पहले आज्ञा चक्रके क्रममें महानादका निरूपण किया जा चुका है। उस महानादके ऊपरमें सहस्रारका अवस्थान है। **शङ्खिन्याः शिखरे**--शङ्खिनी नाड़ीका उद्गम स्थान नाड़ीकन्द है। यहींसे शङ्खिनी नाड़ी सरस्वती एवं गान्धारी नाड़ीके मध्यमें होकर मस्तकपर्यन्त गयी है। यही मस्तक स्थान ही शङ्खिनीका शिखर प्रदेश है। **शून्यदेशे**—इसी शङ्खिनी नाड़ीका शिखर प्रदेश शून्य स्थान है। यहाँपर कोई भी नाड़ी स्थित नहीं है। मेरुदण्डकी समाप्ति भी यहीं पर हुई है। अतः सुषुम्णाका भी ऊर्ध्व देश यही है। इसी शून्य प्रदेशमें सहस्रार स्थित है। **विसर्गाधः**—इस शून्य प्रदेशके ऊपर विसर्ग नामकी शक्तिका अवस्थान है। अतः सहस्रदल कमल विसर्गके नीचे स्थित है। यह कमल प्रकाश रूप है। इसके एक हजार दल हैं। अतः इसे सहस्र दल कमल कहते हैं। यह पूर्णचन्द्रके समान अत्यन्त शुभ्र है। इसका मुख नीचेकी ओर

सहस्रार पद्मकी कर्णिकामें स्थित चन्द्रमण्डलका स्वरूप

**समास्ते तस्यान्तः शशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः**
**स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी।**
**त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं**
**तदन्तःशून्यं तत् सकलसुरगणैः सेवितं चातिगुप्तम् ॥ ४१ ॥**

---

है। **तरुणरविकलाकान्तिकिञ्जल्कपुञ्जम्**—यहाँपर तरुण रविसे अभिप्राय प्रातः कालीन सूर्यसे है। प्रातः कालमें सूर्य अत्यन्त रक्त वर्णाकार होता है। उसकी किरणें रक्तवर्णकार होती हैं। उन किरणोंकी कान्तिके समान सहस्रदल कमलका केशर-पुञ्ज है। पद्मके मध्यमें केशर रहते हैं। इस कमलका केशरपुञ्ज रक्ताकार है। **ललाटाद्यैर्वर्णैः प्रविलसितवपुः**—मातृकान्यासमें 'अ' ललाट वर्णके रूपमें जाना जाता है। ललाट अर्थात् मूर्धन्य अक्षर 'अ' है। ललाटादि—अकार आदि वर्णोंसे यह कमल युक्त है। सहस्र दलोंपर स्थित अक्षरोंकी संख्या पचास है। इसके दल एक हजार हैं, अतः बीस-बीस दलोंपर एक-एक अक्षर स्थित है। 'अ'से लेकर 'क्ष' पर्यन्त—'अकारादिक्षकारान्तम्'—के अक्षरोंसे युक्त है यह कमल। **केवलानन्दरूपम्**—यह सहस्रदल कमल नित्यानन्दस्वरूप है। यह विशुद्ध आनन्दघन है ॥ ४० ॥

उस सहस्रदल कमलकी कर्णिकाके मध्यमें परमामृतसमूहसे अत्यन्त स्निग्ध दीप्तिवाला, किरणोंके समूहको स्फुरित करता हुआ निष्कलङ्क निर्मल पूर्णचन्द्र-मण्डल विद्यमान है। उसके मध्यमें विजलीके रूपवाला एक त्रिकोण निरन्तर स्फुरित हो रहा है। उसके मध्यमें बिन्दु रूप शून्य स्फुरित हो रहा है। वह समस्त देवगणोंके द्वारा सेवित है तथा अत्यन्त गुप्त है।

**विमर्श**—अब सहस्रदलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थित चन्द्रमण्डल तथा उसके मध्यमें स्थित त्रिकोणके अन्तर्गत बिन्दु रूप शून्यका वर्णन किया जा रहा है। सहस्र-दलकी कार्णिकाके मध्यमें कलङ्कसे रहित एक निर्मल पूर्णचन्द्रका मण्डल विद्यमान है। **स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः**—उस चन्द्रमण्डलमें किरणोंका समूह स्फुरित हो रहा है। **परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी**—इसी चन्द्रमण्डलमें परमामृत विद्यमान है। इसी स्थानसे परमामृतका क्षरण होता है। अतः यह चन्द्रमण्डल परमामृतके समूहसे अत्यन्त स्निग्ध दीप्तिवाला है अर्थात् अमृतके समान शीतल किरणवाला है। इसी चन्द्रमण्डलके मध्यमें एक त्रिकोण विद्यमान है। वह त्रिकोण विद्युत्के समान स्फुरित हो रहा है। उसी त्रिकोणके मध्यमें बिन्दु रूप शून्य विद्यमान है। इसे परंबिन्दु भी कहते हैं। यह चैतन्यस्वरूप होनेसे तेजस्वरूप होनेसे शून्याकारके रूपमें स्थित है। अतः इसे शून्य भी कहते हैं। यह शून्य–परंबिन्दु समस्त देवगणोंसे सेवित है। अर्थात् समस्त देवगण एकमात्र उसी परंबिन्दुकी आराधना करते हैं। **अतिगुप्तम्**—यह

### सहस्रार पद्मकी कर्णिकामें रहनेवाले परम शिवकी स्थितिका स्वरूप

**सुगोप्यं तद् यत्नादतिशय-परमामोद-सन्तान-राशेः**
**परं कन्दं सूक्ष्मं सकल-शशिकला-शुद्धरूपप्रकाशम् ।**
**इह स्थाने देवः परमशिवसमाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः**
**खरूपी सर्वात्मा रसविरसमितोऽज्ञानमोहान्धहंसः ॥ ४२ ॥**

---

परंबिन्दु अति गुप्त है; क्योंकि यह शून्याकारसे भासित होता है। तथा मन आदिका विषय नहीं बन सकता है ॥ ४१ ॥

उस बिन्दुरूप शून्यको यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए, जो कि अतिशय परमानन्दके विस्तृत समूहका प्रधानमूल है, अत्यन्त सूक्ष्म है तथा निर्वाण कलाके साथ विद्यमान चन्द्रकी षोलहवीं कलाके द्वारा निर्मल प्रकाश रूपवाला है। इसी स्थानमें परम शिवके रूपमें सर्वविदित प्रसिद्ध देव है, जो कि शून्याकार, सबकी आत्मा, परमानन्दरससे आच्छादित तथा अज्ञानसे प्राप्त मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेमें सूर्यके समान है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें शून्यको बतलाते हुए परम शिवके स्वरूपका निरूपण किया गया है। पहले श्लोकमें ही बतलाया गया है कि चन्द्रमण्डलके मध्यमें एक त्रिकोण है, उसी त्रिकोणके मध्यमें बिन्दूरूप शून्य है। वह शून्य समस्त देवगणोंसे सेवित है तथा अतिगुप्त है। **सुगोप्यम्**—उसी शून्यकी विशेषताको बतलाते हुए यहाँ-पर कहते हैं कि प्रयत्नपूर्वक शून्यकी गोपनीयता बनायी रखनी चाहिए। जिस-किसी व्यक्तिके पास इसके रहस्यको नहीं बतलाना चाहिए। **अतिशयपरमामोदसन्तान-राशेः परं कन्दम्**—यह शून्य अतिशय परमानन्दके विस्तृत समूहका प्रधान मूल है, यहींसे ही परमानन्द मोक्षकी प्राप्ति होती है। अर्थात् यह परमानन्द स्वरूप है। यह अत्यन्त सूक्ष्म है अर्थात् अतीन्द्रिय है। **सकलशशिकलाशुद्धरूपप्रकाशम्**—यहाँपर 'कला' शब्दसे निर्वाण कलाका बोध होता है। 'शशिकला'से चन्द्रकी षोलहवीं कला अमा कलाका बोध होता है। यह शून्य निर्वाण कलाके साथ विद्यमान अमाकलाके द्वारा निर्मल प्रकाश रूपवाला है। अब शून्यका सगुण परमशिवके रूपमें वर्णन किया जा रहा है। **परमशिवसमाख्यानसिद्धः**—इसी स्थानमें अर्थात् यही शून्य सगुण परम शिवके रूपमें भी सर्वविदित है। **खरूपी**—यह शून्याकार है। यह ध्यान रहे कि 'शून्य' शब्द 'चैतन्य'का प्रतीक है अर्थात् आकाररहित है। **सर्वात्मा**—यह परम-शिव सकल प्राणियोंमें अन्तरात्माके रूपमें निवास करता है। जब अन्तरात्माके रूपमें विराजमान रहता है तब अविद्याके कारण वह जीवात्मा कहलाता है। वस्तुत वही एक मात्र चैतन्य है। **रसविरसमितः**—यहाँ सर्वप्रथम विषय रसकी प्राप्ति होती है, अतः 'रस' शब्दका प्रयोग हुआ है। उस विषय रसमें विरसा—अर्थात् हेयता बुद्धि जिस रससे होती

**सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां**
**यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान् निर्मलमतेः।**
**समास्ते सर्वेशः सकल-सुख-सन्तान-लहरी-**
**परीवाहो हंस परम इति नाम्ना परिचितः ॥ ४३ ॥**

---

है वह परमानन्द रस है। उस परमानन्द रसको 'इतः'--प्राप्त करनेवाला परम शिव है। यही परमानन्द रस परमामृत है। **अज्ञानमोहान्धहंसः**--यह परम शिव अज्ञान-से उत्पन्न मोहको नष्ट करनेवाला है। यहाँपर मोहका अन्धकारके रूपमें कथन किया गया है। अन्धकारको नष्ट केवल सूर्य ही कर सकता है। ठीक उसी प्रकार मोहको केवल 'हंसः' परम शिव ही नष्ट कर सकता है। 'हंसः'से तात्पर्य केवल सूर्यसे ही नहीं है अपितु 'हंसः'—'हंसः'मन्त्राकार है। 'हंसः' मन्त्रसे ही मोहका नाश होता है ॥ ४२ ॥

निरन्तर अतिशय अमृतधारासारका वर्षण करता हुआ वह भगवान् परम शिव निर्मल बुद्धिवाले योगिजनोंको स्वात्मज्ञानका बोध कराता है। वही सर्वेश शिव समस्त सुखका विस्ताररूप लहरीका धारण करता है। वही परम हंसके नामसे भी विख्यात है।

**विमर्श**–प्रस्तुत श्लोकमें भी परम शिवका ही वर्णन किया गया है। **अतितरां सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्**--पहले ही श्लोकमें बताया गया है कि परम शिव परमानन्दामृतसे आच्छादित अर्थात् पूर्ण है। अतः वही अमृतधारकी वर्षा कर सकता है। यही अमृतकी वृष्टि निरन्तर होती रहती है। अखण्ड धारा प्रवाहित होती रहती है। वृष्टि भी अतिशय होती है। **भगवान्**---ये छः भग कहलाते हैं--समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य तथा मोक्ष। इन छहोंसे जो युक्त है वही भगवान् है। अतः परम शिव भगवान् सर्व समर्थ है। **निर्मलमतेः यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति**—जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है उसीको ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। स्वच्छ दर्पणमें ही चेहरा साफ दीखती है न कि मलिनमें। इसी प्रकार जिसका अन्तःकरण---मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार–शुद्ध है, जिसके पास सद्-असद्की विवेक-शक्ति है, वही स्वात्मज्ञानका अधिकारी है। स्वात्मज्ञानके लिए यत्न भी करना चाहिए। जो यत्न करता है वही यति है। वैसे शुद्धान्तःकरण यतिको ही स्वात्मज्ञान हो सकता है। इसी प्रकारके योगीको परम शिव स्वात्मज्ञान प्रदान करता है, यागी एवं स्वयंमें विद्यमान अभेदात्मैक्यबोध कराता है। अतः वही गुरु भी है; क्योंकि स्वात्मज्ञानको जागृत करना गुरुका कार्य है। **सर्वेशः**---परम शिव सबका ईश्वर है। वही सबका शासक है। त्रिगुणात्मिका मायोपाधि विशिष्ट ईश्वर होता है। वही सम्पूर्ण जगत्का शासक है। **सकलसुखसन्तानलहरीपरीवाहः**---परम

### सहस्रार पद्मकी कर्णिकाके सर्वदेवस्थानका वर्णन

**शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा**
**लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे।**
**पदं देव्या देवीचरणयुगलाम्भोजरसिका**
**मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम्॥ ४४॥**

---

शिव सुखका सागर है। अर्थात् सुख स्वरूप है। सागरमें जिस प्रकार जल तरङ्ग उठते हैं उसी प्रकार परम शिवमें भी सुखके तरङ्ग उठकर सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं, अर्थात् इसका सुख सर्व व्यापक है। **हंसः परम इति नाम्ना परिचितः**—यह परम शिव परम हंस कहलाता है। 'हंसः' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार शास्त्रोंमें की गयी है—'हंस' इस शब्दमें हं, स—ये दो वर्ण विद्यमान हैं। प्रकृति-पुरुषात्मक यह संसार है। जिसमें कि 'हंसः' व्यापक रूपसे विद्यमान है। 'हं' पुरुष है तथा 'स' प्रकृति है। इन्हीं दोनोंका संयुक्त रूप जीवात्मा 'हंस' है जो कि तमोगुण-प्रधान है। एवं सत्त्व-गुण-प्रधान ईश्वर—'परम हंस' है। यही परम शिव सत्त्वगुण-प्रधान ईश्वर होनेसे 'परम हंस'के नामसे विख्यात है॥ ४३॥

इसी परम शिवके स्थानको शैव शिवस्थान कहते हैं तो वैष्णव परम पुरुष विष्णुस्थान। कुछ अन्य लोग इसे हरिहर पद भी कहते हैं। देवीके चरण कमल युगलकी सेवासे ही आनन्द प्राप्त करनेवाले सेवक इसे देवीका स्थान मानते हैं तो अन्य श्रेष्ठ मुनिजन इसे पवित्र प्रकृति एवं पुरुषका स्थान मानतेहैं।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें बताया गया है कि साधक इस परम शिवस्थान-को स्वेष्टदेवताका स्थान ही मानते हैं। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उपासक स्वेष्ट-की उपासना करता है। कोई शैव है तो कोई वैष्णव है। शिवकी उपासना करनेवाले इसे शिवस्थान मानते हैं। **वैष्णवगणाः परमपुरुषम्**—परम पुरुष विष्णुको ही कहते हैं, इसकी व्याख्या इस प्रकार होती है—परा = प्रकृष्टा, मा = लक्ष्मीः यस्य एवम्भूत-पुरुषम् = परमपुरुषं विष्णुम्। प्रकृष्ट लक्ष्मी जिसकी है, उसे परम कहते हैं। अतः विष्णुको ही परम कहा गया है। इन्हीं विष्णुके उपासक वैष्णव कहलाते हैं। वैष्णव जन इस परम शिवस्थानको विष्णुस्थान कहते हैं और जो वैष्णव एवं शैव दोनों हैं वे इसे हरिहरका स्थान कहते हैं। जो देवीके भक्त हैं अर्थात् शक्तिके उपासक शाक्त हैं वे इसे देवीस्थान—शक्तिस्थान मानते हैं। **प्रकृतिपुरुषस्थानम्**—श्रेष्ठ मुनिजन इस परम शिवस्थानको प्रकृति-पुरुषस्थान कहते हैं। पहले ही बताया जा चुका है कि परम शिव ही परम हंसके नामसे विख्यात है और भी 'हंस' शब्दमें 'हं' पुरुष है तथा 'स' प्रकृति है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि मुनीन्द्र अर्थात् जो 'हंस' मन्त्रके उपासक हैं वे इस परम शिवस्थानको प्रकृतिपुरुषस्थान कहते हैं। वस्तुतः यही निष्कर्ष है कि उपासक इस परम शिवस्थानको अपने इष्टका स्थान कहते हैं॥ ४४॥

### सहस्रारके ज्ञानका फल

**इदं स्थान ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो**
**न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।**
**समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः**
**सदा कर्त्तुं हर्त्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला॥ ४५॥**

इस स्थानको जानकर उसमें अपने चित्तको नियुक्त करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष संसारमें जन्म-मृत्युको प्राप्त नहीं करता है और तीनों भुवनोंमें भी वह बद्ध नहीं होता है। उस स्थरचित्त पुरुषको सदा अभीष्ट कार्यको करने या नष्ट करनेकी एवं आकाशगमन करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा उसकी वाणी सुविमल शक्ति रूप बन जाती है।

**विमर्श**–प्रस्तुत श्लोकमें सहस्रारको जानकर उसमें चित्तके संयम करनेसे उससे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन किया जा रहा है। **नरवरः**–'नर'का अर्थ है मनुष्य। एवं 'वर'का अर्थ है श्रेष्ठ। मनुष्यश्रेष्ठसे अभिप्राय है जिस व्यक्तिका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसे एकतग्रता शक्ति प्राप्त है वही व्यक्ति इस स्थानपर चित्त स्थिर कर सकता है, वही मनुष्यश्रेष्ठ है। अतः उपर्युक्त अर्थमें हमने पुण्यात्मा शब्दका प्रयोग किया है। **नियत-निजचित्त इदं स्थानं ज्ञात्वा संसारे न भूयात्**–यह शून्य स्थान परम शिवका स्थान है। इसे जानना अर्थात् स्वात्म स्वरूपसे ज्ञान करना है। इससे श्रवण-मनन भी हो जाते हैं। उसमें चित्तको संयत करना अर्थात् निदिध्यासन करना है। इसी निदिध्यासनके अनन्तर साधकको यह स्थान स्वात्मस्वरूपसे बोध होता है। अतः इस प्रकारके बुद्ध–ज्ञानीका संसारचक्र नष्ट हो जाता है। वह पुनः जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त नहीं करता है। उसके सारे कर्म भस्मसात् हो जाते हैं। **त्रिभुवने बद्धः न**—वह ज्ञानी पुरुष तीनों भुवनोंमें भी बद्ध नहीं होता है। त्रिभुवन—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल। कहा गया है कि जीव स्वर्गमें पुण्य, पातालमें पाप तथा मर्त्त्यमें पाप-पुण्यरूप उभय कर्मफलका भोग करता है। तत्तत्कर्मके लिए इन लोकोंमें भ्रमण करता रहता है। अतः यहाँपर जीवको त्रिभुवनमें बद्ध बताया गया है। जो ज्ञानी होता है, उसके सारे पाप-पुण्यरूप कर्म नष्ट हो जानेसे इन लोकोंका आवागमन नहीं होता है। **तस्य नियममनसः कृतिनः समग्रा शक्तिः स्यात्**–इस स्थानमें मनके संयमन करनेसे साधकको सारी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जैसे– किसी भी अभीष्ट कार्य करने या उसे नष्ट करनेकी शक्ति उसमें आ जाती है, चाहे कार्य कितना ही बड़ा क्यों न हो। इतना ही नहीं, उसे आकाशमें गमन करनेकी शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। **सुविमला वाणी**—और भी उसकी वाणी सुविमला शक्तिरूपा बन जाती है। अर्थात् वाणी सिद्ध हो जाती है। उसमें आह्लादकत्व, माधुर्य, काव्य कर्तृत्व आदि शक्तियाँ आ जाती हैं॥ ४५॥

### अमा कलाका स्वरूप

अत्रास्ते शिशुसूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी
शुद्धा नीरज-सूक्ष्म-तन्तु-शतधाभागैकरूपा परा।
विद्युत्कोटि-समान-कोमल-तनूर्विद्योतिताऽधोमुखी
नित्यानन्द-परम्पराऽतिविगलत्-पीयूषधारा-धरा ॥ ४६ ॥

### निर्वाण कलाका स्वरूप

निर्वाणाख्यकला परा परतरा साऽऽस्ते तदन्तर्गता
केशाग्रस्य सहस्रधा-विभजितस्यैकांशरूपा सती।
भूतानामधिदैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया
चन्द्रार्द्धाङ्ग-समान-भङ्गुरवती सर्वार्कतुल्यप्रभा ॥ ४७ ॥

---

इसी सहस्रार पद्ममें वह अमा नामकी चन्द्रकी षोलहवीं कला विद्यमान है, जो कि प्रातःकालीन सूर्यकी कलाके समान रक्तवर्णवाली है, अत्यन्त शुद्ध–कलङ्कसे रहित है, कमलके सूक्ष्म तन्तुके सौवें भागके समान रूपवाली है, अत्यन्त श्रेष्ठ है, कोटि विद्युत्के समान कोमल शरीरवाली है, अत्यन्त चमकीली है, अधोमुखवाली है, तथा नित्यानन्द परम्परासे क्षरित होनेवाली अमृतधाराका धारण करनेवाली है।

**विमर्श**––प्रस्तुत श्लोकमें सहस्रार स्थित अमा कलाके स्वरूपका कथन किया जा रहा है। यह अमा कला चन्द्रकी षोलहवीं कला है। यह कलङ्क रहित है, प्रातःकालीन सूर्यकी कलाके समान रक्तवर्णवाली है। इसके रूपके बारे बताया गया है कि यह कमलके सूक्ष्म तन्तुके सौवें भागके समान अत्यन्त पतली है। करोड़ों विजलीके समान कोमल शरीरवाली यह अमा कला अत्यन्त चमकीली है। इसका मुख नीचेकी ओर है। **नित्यानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा**—नित्यानन्द ब्रह्म है, अर्थात् सगुण बिन्दुरूप है। उससे क्रमसे क्षरित होनेवाली अमृतधाराका धारण करनेवाली है यह अमा कला। नित्यानन्द ब्रह्म, सगुण बिन्दुरूप, निर्वाण शक्ति, निर्वाण कला, अमा कला––इस क्रमसे अमृत क्षरित होता है। वस्तुत इसे जानना चाहिए कि निर्गुण ब्रह्म जब तक माया शक्तिसे युक्त होकर सगुण नहीं हो जाता है तब तक सृष्टि नहीं होती है। मायोयाधि शक्तिसे युक्त हो ईश्वर बनकर यहाँ परम शिव बन जाता है। यही शिव-शक्तिका संयोगरूप फल अमृतका प्रवाह होना है। इसी शिव-शक्ति योगसे उत्पन्न सामरस्यानन्दरूप रस–अमृतका क्षरण मूलधार पर्यन्त होता है, जहाँपर कुण्डलिनी इसीका पान करती है ॥ ४६ ॥

वह सर्वश्रेष्ठ निर्वाण नामक कला अमा कलाके अन्तर्गत विद्यमान है जो कि केशके अग्रभागके एक हजार भागोंमेंसे एक भागके समान रूपवाली है, सकल प्राणियों-के हृदयमें चैतन्य स्वरूपसे स्थित रहनेवाली, समग्र ऐश्वर्यादिसे युक्त, नित्य ज्ञानका सम्पादन करनेवाली, अर्द्धचन्द्राकारवाली, समस्त सूर्योंके समान किरणवाली है।

### परंबिन्दुका स्वरूप

एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वनिर्वाणशक्तिः
कोट्यादित्यप्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा।
केशाग्रस्याऽतिगुह्या निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरा सा
सर्वेषां जीवभूता मुनिमनसि मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती ॥ ४८ ॥

---

विमर्श--प्रस्तुत श्लोकमें निर्वाण कलाका निरूपण किया जा रहा है। यह निर्वाण कला अमा कलाके अन्तर्गत स्थित है। यह अमा कलासे भी श्रेष्ठ है। इसका रूप केशके अग्रभागके हजार भागोंमेंसे एक भागके समान है अर्थात् यह अत्यन्त सूक्ष्म है। यह समस्त प्राणियोंके हृदयमें चैतन्य स्वरूपसे विराजमान है। भगवान्के समान सकल ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्यसे युक्त हो तत्त्वज्ञानका सम्पादन करनेवाली है यह निर्वाण कला। इसका शरीर अर्धचन्द्रके समान वक्राकार है। बारह सूर्योंके एक साथ उदित होनेपर जितनी प्रभा फैलती है उतनी प्रभावाली है यह निर्वाण कला ॥ ४७ ॥

इस निर्वाण कलाके मध्यदेशमें अपूर्वा परमा निर्वाण शक्ति विराजमान है, जो कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान् है, तीनों भुवनोंकी उत्पति करनेवाली है, केशके अग्रभागके कोटिभागामेंसे एक भागरूप अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे अत्यन्त गुप्त है, निरन्तर क्षरित अमृतधाराका धारण करनेवाली है। वह शक्ति समस्त जीवोंकी प्राणरूपा है तथा मुनियोंके मनमें हर्षपूर्वक तत्त्वज्ञानका सम्पादन करनेवाली है।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकमें निर्वाण शक्तिका निरूपण किया गया है। यह निर्वाण शक्ति निर्वाण कलाके मध्यमें स्थित है। **परमा**-निर्वाण शक्तिको परमा कहा गया है। परम कहते हैं ब्रह्मको। यह निर्वाण शक्ति उसी ब्रह्मकी शक्ति है, अतः यह परब्रह्म-शक्तिरूपा परमा कहलाती है। **अपूर्वा**--पूर्वका अर्थ है आदि। अपूर्वा अर्थात् अनादि है यह निर्वाण शक्ति। वेदान्तमें इसी निर्वाण शक्तिको माया भी कहते हैं। माया भी अनादि है। इस शक्ति कबसे प्रादुर्भुत हुई है कोई नहीं कह सकता है। इसे इस प्रकारसे कह सकते हैं कि यह सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हुई है, लेकिन इसका समय निश्चित नहीं है। **कोट्यादित्यप्रकाशा**--यह निर्वाणशक्ति अत्यन्त प्रकाशमान है। करोड़ों सूर्योंके प्रकाशके समान यह अत्यन्त प्रकाशमान् है। **त्रिभुवन-जननी**--तीन भुवन--स्वर्ग-मर्त्य-पाताल हैं। त्रिभुवनपदसे केवल इतना ही ग्रहण नहीं होता बल्कि प्रपञ्च समुदायका भी ग्रहण होता है। जो कुछ भी सृष्टि हुई है उस सबका उत्पत्तिस्थान रूप यह निर्वाण शक्ति है। इसीसे सकल प्रपञ्चका उदय हुआ है। अतः यह त्रिभुवन जननी कहलाती है। **केशाग्रस्य कोटिभागैकरूपा**--यह निर्वाण शक्तिके रूपके सम्बन्धमें कहा गया है कि एक केशके अग्रभागको करोड़ों भागोंमें विभक्त

## निर्वाण शक्तिके मध्यमें रहनेवाले परब्रह्मका स्थान

**तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगिगम्यं**
**नित्यानन्दाभिधानं सकलसुखमयं शुद्धबोधस्वरूपम् ।**
**केचिद् ब्रह्माभिधानं पदमिति सुधियो वैष्णवं तल्लपन्ति**
**केचिद्धंसाख्यमेतत् किमपि सुकृतिनो मोक्षमात्मप्रबोधम् ।। ४९ ।।**

---

करने पर उसमेंसे एक भागके समान इसका रूप है। अर्थात् यह अत्यन्त सूक्ष्म है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म । **अतिगुह्या**--अतः यह अत्यन्त गोपनीया है । सामान्य चक्षुरिन्द्रियसे इसे देख नहीं सकते हैं । **निरवधिविगलत्प्रेमधाराधरा**—पहले ही बताया जा चुका है कि यह निर्वाण शक्ति परब्रह्मशक्तिरूपा है । ब्रह्मसे परमामृतका निरन्तर क्षरण होता रहता है । इसी अमृतका सर्वप्रथम यही निर्वाण शक्ति धारण करती है; क्योंकि यही ब्रह्मसे जुड़ी रहती है । **सर्वेषां जीवभूता**—यह निर्वाण शक्ति समस्त प्राणियोंके शरीरमें जीवके रूपमें विद्यमान रहती है । जीवसे तात्पर्य है प्राण । यदि यह न रहे तो जीव निर्जीव हो जायेगा । वेदान्तकी दृष्टिसे यही अवद्याके रूपसे प्रति प्राणीके अन्तःकरणमें रहकर उसे जीवात्माकी संज्ञा धारण कराती है । ब्रह्मके साथ माया वह कहलाती है । **मुनिमनसि मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती**--वह निर्वाण शक्ति प्रत्येक शरीरमें स्थित होकर जीवभूता हो जाती है, किन्तु जो निरन्तर मनन करनेवाला अर्थात् ब्रह्मका चिन्तन करनेवाला है उसके अन्तःकरणमें मुदा--हर्षसे अर्थात् विशुद्ध सत्त्वरूपा बनकर तत्त्वज्ञानका सम्पादन करती रहती है । तभी तो यह निर्वाण शक्ति कहलाती है । निर्वाण अर्थात् मोक्ष—जीवात्म भावसे छुटकारा ।। ४८ ।।

उस निर्वाण शक्तिके मध्यस्थित शून्यमें नित्यानन्द नामक शिवपद विद्यमान है, जो निर्मल, नित्य, योगियोंके द्वारा गम्य, समस्त सुखस्वरूप तथा शुद्धज्ञान-स्वरूप है । उसी पदको कोई ब्रह्मपद तो कोई विद्वान् विष्णुपद कहते हैं, तो कोई हंसपद तो कोई सुकृती जन मोक्षरूप अनिर्वचनीय आत्मसाक्षात्कारका स्थान कहते हैं ।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकमें एकमात्र लक्ष्यस्थान ब्रह्मपदका निरूपण किया गया है । **शिवपदम्**—उस निर्वाण शक्तिके मध्यमें एक शून्यस्थान है जो कि शिवका स्थान है । पदका अर्थ है स्थान । शिवका अर्थ शिव भी है तथा कल्याण भी है । जीवका तभी कल्याण होगा जब जीव कल्याण--शिवपदको प्राप्त कर ले, शिवस्वरूपको प्राप्त कर ले । जो शिवके उपासक हैं वे इसे शिवपद कहते हैं । **अमलम्**--मल कहते हैं मायाको । ब्रह्म जब मायासे निर्लिप्त रहता है तो उसे निर्मल--विशुद्ध ब्रह्म कहते हैं । माया त्रिगुणात्मिका है । सत्त्व, रज तथा तम—ये तीन गुण हैं । ये मल हैं । इन मलोंसे रहित है यह स्थान, अर्थात् मायातीत, त्रिगुणातीत है । **शाश्वतम्**—यह स्थान शाश्वत अर्थात् नित्य है । जिसका कभी भी ध्वंस नहीं होता है जो सदा

अक्षुण्ण बना रहता है उसे नित्य कहते हैं। कालके अन्दर जो कुछ है वह अनित्य है। यह पद कालातीत है। यह मायातीत है अतः नित्य है । **योगिगम्यम्**--यह अत्यन्त सूक्ष्म है। इसे इन्द्रियोंके द्वारा नहीं देख सकते हैं। इसे अवाङ्मनसो गोचर कहा गया है। इसे न मनका विषय बना सकते, न वाणीका। तो फिर कैसे जान जाकते हैं? कहते हैं–ज्ञानके द्वारा। योगी जन योगके द्वारा इस पदको प्राप्त करते हैं। **नित्यानन्दाभिधानम्**--इस पदका नाम नित्यानन्द है। नित्यानन्द केवल ब्रह्म ही है। ब्रह्म नित्यानन्द स्वरूप है। जिस प्रकार गुड़का स्वरूप मधुर होता है उसी प्रकार ब्रह्मका स्वरूप नित्यानन्द है। क्षणिक आनन्द मात्र तो भौतिक वस्तुसे मिल जाता है, किन्तु वह तत्काल नष्ट हो जाता है; किन्तु जब ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं तब नित्यानन्द प्राप्त हो जाता है। **सकलसुखमयम्**--ब्रह्मको सकलसुखधाम कहा गया है। सांसारिक भौतिक वस्तुमें सुखको प्राणी खोजता रहता है। वस्तुमें वास्तविक सुख न होनेसे अर्थात् वस्तुका धर्म सुख प्रदान करना न होनेसे सुख उसमें नहीं मिलता है। इसी सुखके अन्वेषणमें प्राणी भौतिक वस्तुका संग्रह करता रहता है। किन्तु अन्तमें उसकी इच्छा पूरी नहीं होती है। उसे सुखकी प्राप्ति उनसे नहीं होती है। किन्तु जब ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो सुखप्राप्ति उसे हो जाती है; क्योंकि ब्रह्म सुखस्वरूप है। सारे संसारकी समस्त वस्तुओंसे भी जितना सुख नहीं प्राप्त हो सकता उससे कहीं कई गुना सुख ब्रह्मसे प्राप्त होता है। सांसारिक वस्तुसुख ब्रह्मसुखके कणभर भी नहीं है। अतः ब्रह्मको सकल सुखमय कहा गया है। **शुद्धबोधस्वरूपम्**--जब देहादि उपाधिसे आत्मा युक्त हो जाती है तब जीव संज्ञाको धारण करती है। तब वह जीव देहादिके धर्मको अपना धर्म मान कर सुखी-दुःखी होता रहता है। जब विवेकके द्वारा देहादि धर्मका त्याग कर अपने आत्मस्वरूपको पहचान लेता है तो इसे शुद्धबोध–विशुद्ध ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान कहते हैं। इस प्रकारसे वह केवल मात्र रहता है। वही केवल अपना रूप ही है। स्व अर्थात् अपना। स्वरूप--अपना रूप केवल रूप कैवल्य स्वरूप है। इसी कैवल्यस्वरूपको प्राप्त करनेका अर्थ है ब्रह्मपदको प्राप्त करना है। अतः ब्रह्मपद शुद्धबोधस्वरूप है। **केचिद् ब्रह्माभिधानं पदमिति**—वेदान्तियोंने इस स्थानको ब्रह्मपद कहा है, जो कि नित्यानन्द नामक पदके रूपसे पहलेसे ही उक्त है। **सुधियो वैष्णवम्**--इस नित्यानन्द नामक पदको कुछ विद्वान् अर्थात् विष्णुकी उपासना करनेवाले विष्णुका पद–स्थान मानते हैं। विष्णुका अर्थ व्यापक भी है और वैकुण्ठाधिपति भी है। **केचिद्धंसाख्यमेतत्**—जो 'हंसः' मन्त्रके उपासक हैं वे इस नित्यानन्द पदको हंसका पद कहते हैं। 'हंसः' मन्त्रका पहले ही विवेचन किया जा चुका है। हंस मन्त्रमें ही कहा गया है कि यह मन्त्र ब्रह्मविष्णुशिवशक्तिस्वरूप है। **सुकृतिनः किमपि मोक्षमात्मप्रबोधम्**--सुकर्म करनेवाले पुरुष

### कुण्डलिनीके उत्थापनका प्रकार

**हूङ्कारेणैव देवीं यम-नियम-समभ्यास-शीलः सुशीलो**
**ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम् ।**

अर्थात् कर्मयोगी जन इसे अनिर्वचनीय मोक्षरूप आत्मसाक्षात्कारका स्थान मानते हैं। 'सकृतिनः'का अर्थ है अच्छे कर्म करनेवाले। अच्छे कर्मका अर्थ है निष्काम कर्म। निष्काम कर्म करनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। सकाम कर्मसे तो तत्तल्लोकोंको प्राप्त कर सकते हैं, जहाँसे कि पुण्य क्षीण होने पर पुनः वापस आना पड़ता है। किन्तु जब मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है तो आवागमनचक्र समाप्त हो जाता है। जन्म-मरणरूपी बन्धनसे छुटकारा ही मोक्ष है। मोक्ष कर्मयोगी ही प्राप्त कर सकता है। सर्वकर्मफलार्पण ईश्वरमें करना ही कर्मयोग है। इस कर्मयोगसे कर्मयोगी आत्म-साक्षात्कार होना स्वीकार करते हैं। आत्मसाक्षात्कार होना ही मोक्ष है। इसी नित्यानन्दपदको कर्मयोगी आत्मसाक्षात्कारस्थान मानते हैं। अब सम्प्रदायानुसार कुछ विचार करते हैं––(१) यहाँपर गहराईसे विचार करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'शिवपद' शब्दसे 'शैव' जन इस नित्यानन्द नामक पदको शिवपद कहते हैं। इनके अनुसार 'अमल' शब्दसे कार्मिक-आणव-मायिक मलसे रहित अर्थ लेना होगा। शैवागममें मलके नामसे आणव-मायिक-कार्मिक जाने जाते हैं। (२) 'योगिगम्यम्' शब्दसे योग सम्प्रदायका ग्रहण होता है। योगदर्शनके अनुसार योगी योगके द्वारा कैवल्यकी प्राप्ति करता है। 'शुद्धबोधस्वरूपम्' शब्दसे इस नित्यानन्द पदको कैवल्य स्वरूप माना गया है। ( ३ ) भौतिक वस्तुमें सुख खोजनेवाले सांसारिक जनोंके लिए यह नित्यानन्द पद 'सकलसुखमयम्' शब्दसे समस्त सुखका धाम बताया गया है। ( ४ ) वेदान्तियोंके द्वारा स्पष्ट रूपसे यह नित्यानन्द पद 'ब्रह्माभिधानम्' शब्दसे ब्रह्मपदके रूपसे जाना गया है। ( ५ ) 'वैष्णवम्' शब्दसे इस नित्यानन्द पदको विष्णुपद कहा गया है। वैष्णव सम्प्रदायका यह मत है। ( ६ ) 'हंसाख्यम्' शब्दसे 'हंसः' मन्त्रके उपासकोंने इस नित्यानन्द पदको हंसपद माना है। 'हंसः' पदकी व्याख्यासे यह कहा गया है कि ब्रह्म-विष्णु-शिवशक्ति स्वरूप है 'हंसः' मन्त्र। और भी हंसको प्रकृति-पुरुषात्मक कहनेसे यह सांख्यमत सिद्ध होता है। 'प्रपञ्चसार'में कहा गया है कि—'पुं-प्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्' हंसः पुरुष-प्रकृतिरूप है और यह जगत् भी हंस रूप है। ( ७ ) 'सुकृतिनः' शब्दसे कर्ममार्गियोंका निर्देश किया गया है। और भी सुकृतका अर्थ धर्म या पुण्य होनेसे मीमांसामत भी यहाँपर सिद्ध होता है। इस प्रकार यहाँपर विभिन्न मतोंका एकत्र समावेश किया गया है॥ ४९ ॥

यम-नियम आदिका समुचित अभ्यास करनेवाला, सुशील, शुद्धबुद्धि स्वभाववाला वह योगी महामोक्षमार्गका प्रकाश एवं क्रमका श्रीगुरुजीके मुखसे ज्ञान करके

**ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति स तां शुद्ध-बुद्धि-स्वभावो**
**भित्त्वा तल्लिङ्गरूपं पवनदहनयोराक्रमेणैव गुप्तम् ॥ ५० ॥**

वायु एवं अग्निके आक्रमणसे ही हूङ्कारके द्वारा उस गुप्त लिङ्गरूपका भेदन करके उस कुण्डलिनी देवीको ब्रह्मद्वारके मध्यमें स्थापन करता है ।

**विमर्श**— प्रस्तुत श्लोकमें कुण्डलिनीको जागृत करनेके लिए विधि बतायी गयी है । **यमनियमसमभ्यासशील**:——कुण्डलिनी जागरणके लिए अधिकारी कौन है इस पर विचार करते हुए सर्वप्रथम कहते हैं कि वही व्यक्ति कुण्डलिनीको जागृत कर सकता है जिसने यम-नियम आदिका सम्यक् रूपसे अभ्यास किया हो । यहाँपर यम एवं नियम शब्दोंसे केवल इन दोनोंका ग्रहण नहीं होता; अपितु आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिका भी ग्रहण होता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह——ये पाँच यम हैं । शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान——ये पाँच नियम हैं । पद्मासन, वीरासन आदि अनेक आसन हैं । इन आसनोंमें जो कुण्डलिनी जागरणके लिए विशेष उपयोगी है उसका अभ्यास अधिक करना चाहिए । प्राणायामके चार प्रकार हैं । पूरक, रेचक, कुम्भक–विशेषतः ये तीन प्राणायाम स्पष्ट रूपसे जाने जाते हैं, किन्तु चौथा प्रकारका एक प्राणायाम भी है जो पातञ्जल योगदर्शनमें स्पष्ट तथा विवेचित है । चित्तका किसी स्थान विशेष-पर एकाग्र करना धारणा कही जाती है । उस स्थानपर चित्तका स्थिर हो जाना ध्यान कहलाता है जिस स्थानपर उसे स्थिर किया गया हो । वह ध्यान जब ध्येयके स्वरूप मात्रका प्रकाशक होते हुए अपने स्वरूपसे शून्य-सा हो जाता है, तब वह समाधि कहलाता है । यमादिके विशेष ज्ञानके लिए पातञ्जल योगदर्शनका अवलोकन करें । उपर्युक्त यमादिका सम्यक् रूपसे अभ्यास करना चाहिए । इस जन्ममें यदि जन्मसे ही व्यक्ति यमादिसे युक्त है तो समझें कि उसने जन्मान्तरमें यमादिका अभ्यास किया है । अतः वह कुण्डलिनीयोगका अधिकारी है । **सुशीलः**——उपर्युक्त यमादिका अभ्यास करनेवाला योगी सुशील हो ही जाता है । **शुद्धबुद्धिस्वभावः**——शुद्धबुद्धि-स्वभाववाला होना अधिकारी पुरुषके लिए आवश्यक है । 'बुद्धि' शब्द अन्तःकरण-का उपलक्षण है, अतः इस प्रकारसे कह सकते हैं कि विशुद्ध अन्तःकरणात्मक स्वभाव-वाला योगी अधिकारी है । 'स्वभाव' अर्थात् अपने आत्मामें भाव जिसका है, किस प्रकारसे ? शुद्धबुद्ध्या अर्थात् शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा । और भी शुद्धबुद्धिका अर्थ ब्रह्म किया जाता है तो ब्रह्ममें जिसका स्वभाव अर्थात् आत्मभाव है——ऐसा भी माना जा सकता है । निष्कर्ष रूपसे हम यही कह सकते हैं कि जिस विशुद्ध अन्तःकरणवाले योगीका ब्राह्मात्मैक्य भावमें अवस्थान होता है वही शुद्धबुद्धि स्वभाववाला योगी कुण्डलिनी जागरणके लिए अधिकारी है । **महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्**——कुण्डलिनी ब्रह्म

नाड़ीके मार्गसे होकर ब्रह्म पर्यन्त पहुँचती है। जब ब्रह्ममें पहुँच जाती तब योगीको मोक्ष प्राप्त होता है, जिससे उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अतः इसे महामोक्ष कहा गया है। ब्रह्म नाड़ीके मध्यमें विद्यमान मार्ग ही महामोक्ष-मार्ग है। इसी मार्गका ज्ञान जब तक न हो तब तक कुण्डलिनीको ब्रह्मपर्यन्त नहीं पहुँचा सकते हैं। अतः महामोक्ष-मार्गका ज्ञान अत्यावश्यक है। **क्रममिति च**—केवल महामोक्ष-मार्गका ज्ञान प्राप्त कर लेनेसे ही कुण्डलिनी ब्रह्म तक नहीं पहुँच जाती। इसके लिए षट्चक्रका क्रम एवं जिस क्रमसे कुण्डलिनीका जागरण होगा उस क्रमका ज्ञान अत्यावश्यक है। जैसे–पहले प्राणायाम किया जाय या नहीं? जीवात्माको कब, कहाँ लाया जाय? इत्यादि। **श्रीनाथवक्त्रात्**—बिना गुरुके ज्ञान प्राप्त नहीं होते हैं। गुरु भी स्वयं अनुभवी होना चाहिए। केवल शास्त्रोंसे जानकारी प्राप्त कर अभ्यास करनेसे हानि होगी। अभ्यास किस प्रकारसे करना चाहिए, किस प्रकारका अभ्यास सुगम है उसका गुरु ही निर्णय कर सकता है। जिसने स्वयं कुण्डलिनीको जाग्रत किया है वही वास्तविक गुरु हो सकता है। जागरण करते समय नाना प्रकारके विघ्न आते हैं। उन्हें अनुभवी व्यक्ति ही दूर कर सकता है या करा सकता है। अतः गुरुकी अत्यन्त आवश्यकता है। जहाँ तक, योगके अभ्यासमें शास्त्रज्ञान मात्रसे साधक कभी भी सफल नहीं हो सकता है। अतः यहाँपर निर्देश दिया गया है कि अनुभवी गुरुसे ही जानकारी प्राप्त करके योगभ्यासमें प्रवेश करे। **पवन-दहनयोराक्रमेणैव गुप्तं तल्लिङ्गरूपं भित्त्वा**—मूलाधारके निरूपणके समयमें बताया जा चुका है कि मूलाधारमें स्वयम्भू लिङ्ग विराजमान है। वह स्वयम्भू लिङ्ग अत्यन्त गुप्त है। अर्थात् वह अत्यन्त सूक्ष्म है। उस स्वयम्भू लिङ्गके ऊपर साढे-तीन वलयाकारमें कुण्डलिनी लपेटी हुई है। उस स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रको उसने अपने मुँहसे आच्छादित कर रक्खी है जिससे वह निरन्तर सहस्रारसे क्षरित अमृतका पान करती रहती है। उसी स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रसे होकर उसके मूलसे ब्रह्म नाड़ी सहस्रार पर्यन्त गयी है। इसी ब्रह्म नाड़ीके मार्गमें कुण्डलिनीको प्रवेश करना है। कुण्डलिनी इस प्रकार चिपकी हुई है कि उसे रँचमात्र भी हटाना मुसकिल है। अतः जब अग्नि—तेजके द्वारा लिङ्गको गरम कर दिया जाता है तथा वायु द्वारा उसे आन्दोलित कर दिया जाता है तब कहीं वह उस स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रमें प्रवेश कर पाती है। अतः बार-बार आग और वायु दोनोंके सम्मिलित आक्रमण किया जाता है। **हूङ्कारेणैव**–इसी प्रकार आक्रमण मात्रसे काम नहीं चलता है। उसे बार-बार झटका भी लगाना चाहिए। अतः 'हूं' 'हूं' करना—यह झटका लगाना है। 'हूं' यह कूर्चबीज कहलाता है। इसे कुण्डलिनी जागरण करनेका मन्त्र कहा गया है। इसका विशेष विवेचन हम भूमिकामें करेंगे। **ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति**—उपर्युक्त प्रकारसे 'हूं' करते हुए पवन तथा

### कुण्डलिनी-योगका प्रकार

**भित्त्वा लिङ्गत्रयं तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे**
**सा देवी शुद्धसत्त्वा तडिदिव विलसत्तन्तुरूपस्वरूपा।**
**ब्रह्माख्यायाः शिरायाः सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तन्-**
**मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मतालक्षणेन ॥ ५१ ॥**

---

दहन दोनोंके सम्मिलित आक्रमणसे उस कुण्डलिनीको स्वयम्भू लिङ्गके छिद्रमें प्रविष्ट कराया जाता है। तब उसका भेदन करके उसके मूलमें स्थित ब्रह्म नाड़ीके छिद्रमें उसे पुनः प्रविष्ट कराया जाता है। इस प्रकारसे मूलाधारका भेदन होकर द्वितीय चक्रका पुनः क्रमसे भेदन किया जाता है ॥ ५० ॥

शुद्ध स्वभाववाली, विजलीके समान प्रकाशरूपी तन्तुरूप स्वरूदवाली वह कुण्डलिनी तीनों लिङ्गोंका भेदन कर ब्रह्म नाड़ीके द्वारा समस्त कमलोंको प्राप्त कर, सूक्ष्म धाममें स्थित प्रदीपके समान परमानन्दस्वरूप शिवमें देदीप्यमान होती है तथा शीघ्र ही सूक्ष्मभावसे उस नित्यानन्दरूप मुक्तिको प्राप्त कराती है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें कुण्डलिनी योगके प्रकारका वर्णन किया गया है। **शुद्धसत्त्वा**—कुण्डलिनी जब जागृत हो जाती है तब वह शुद्ध स्वभाववाली बन जाती है। शुद्धसत्त्व हुए बिना कुण्डलिनी जागृत नहीं हो सकती है। जब योगी यमादिके अभ्याससे सत्त्वयुक्त हो जाता है तभी यह कुण्डलिनी जागृत होती है। उसमें भी जब वह जागृत होती है तब पूर्णरूपसे शुद्धसत्त्व स्वभाववाली हो जाती है। वही शुद्धसत्त्व स्वभाववाली कुण्डलिनी ही मोक्षदायिका है। **तडिदिव विलसत्तन्तुरूप-स्वरूपा**—जब यह कुण्डलिनी जागृत हो जाती है तव यह विजलीके समान अत्यन्त तेजोमयी बन जाती है। वही तेजोमयी कुण्डलिनी तन्तुके समान रूपवाली बन जाती है अर्थात् यह तन्तुके समान प्रकाशरूपी रेखा-सी बन जाती है। **तत् लिङ्गत्रयं भित्त्वा**—पहले ही चक्रोंके निरूपणोंमें बताया गया है कि मूलाधार चक्रमें स्वयम्भू लिङ्ग, अनाहतमें बाण लिङ्ग तथा आज्ञा चक्रमें इतर लिङ्ग विद्यमान है। कुण्डलिनी जब जागृत होकर ऊर्ध्वमुखी बन जाती है तब क्रमसे उपर्युक्त तीनों लिङ्गोंका भेदन कर सहस्रारमें पहुँच जाती है। पहले भी हमने बताया है कि कुण्डलिनीकी वाणी चार तरहकी होती है अर्थात् यह चार प्रकारके भावसे लिङ्गोंको मोहित कर युक्त हो जाती है। जैसे कि——मूलाधार चक्रमें कुण्डलिनी स्वयम्भू लिङ्गके समीपमें वैखरी भावसे उसे मोहितकर, इस प्रकार हृदयस्थ अनाहत चक्रमें मध्यमा भावसे बाण लिङ्गको तथा भ्रूमध्यस्थ आज्ञा चक्रमें इतर लिङ्गको पश्यन्ती भावसे मोहितकर सहस्रारस्थ परंबिन्दुके समीपमें पराभावको प्राप्त करती है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती तथा परा——ये चार शब्दको उपन्न करनेवाली शक्तियाँ कुण्डलिनीके अभेदरूपा हैं।

### समाधियोगका स्वरूप

नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज् जीवेन सार्द्धं सुधी-
र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।
ध्यायेदिष्टफलप्रदां भगवतीं चैतन्यरूपां परां
योगीन्द्रो गुरुपादपद्म-युगलालम्बी समाधौ यतः॥ ५२॥

---

**ब्रह्माख्यायाः शिरायाः सकलसरसिजं प्राप्य**—ब्रह्म नाड़ी मूलाधार चक्रसे सहस्रार पर्यन्त गयी है। इस ब्रह्म नाड़ीसे सभी छहों कमल गुँथे हुए हैं। अर्थात् ब्रह्म नाड़ी छहों कमलोंके मध्यमें होकर सहस्रार पर्यन्त गयी है। कुण्डलिनीका मार्ग ब्रह्म नाड़ीके मध्यमें है। अतः मूलाधारसे जब कुण्डलिनी सहस्रारमें पहुँचती है तो स्वाभाविक रूपसे इन छहों कमलोंको प्राप्त करती है। इन छहों कमलोंमें क्षणभर विश्राम करती है। **सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे परमरसशिवे**—कुण्डलिनी जागृत होकर अन्तिम स्थान परमानन्दरूप शिवके पास पहुँच जाती है। वह परमानन्दरूप शिवका स्थान अत्यन्त सूक्ष्म है। यह स्थान सहस्रारस्थित परंबिन्दुका तेज है। इसे ही ब्रह्मका स्थान भी कहते हैं। 'प्रदीपे' शब्द यह निर्देश करता है कि यह परमरस शिव प्रदीपाभ है अर्थात् अत्यन्त तेजस्वरूप है। इसी परमरसरूप शिवमें पहुँचकर कुण्डलिनी भी तेजोमयी बन जाती है। **सूक्ष्मतालक्षणेन सहसा तन्मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति**—जब कुण्डलिनी सूक्ष्मधाममें स्थित परमरस शिवमें पहुँच जाती है तब वह अत्यन्त सूक्ष्म भावको प्राप्त हो जाती है और उस नित्यानन्दरूप मुक्तिको प्राप्त कराती है। जब कुण्ड-लिनी परमशिवमें पहुँच जाती है और सूक्ष्मभावको प्राप्त कर लेती है, उसके साथमें गया हुआ जीवभाव भी उस परमशिवमें विलीन हो जाता है अर्थात् साधक शिवा-त्मैक्य रूपसे उस परंबिन्दुके चिन्तनसे मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। कोई शक्त्यात्मक चिन्तनसे तो कोई परमपुरुषात्मक चिन्तनसे तो कोई शिवशक्ति सामरस्य चिन्तनसे मुक्तिको कुण्डलिनीके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। चाहे जोभि हो, ब्रह्मात्मैक्य बोध होना ही योगका परम लक्ष्य है॥ ५१॥

श्रीगुरुके पादपद्म युगलका आश्रित, समाधि क्रियामें तत्पर, योगियोंमें श्रेष्ठ सुधीजन उस इष्ट फलको देनेवाली, भगवती, चैतन्य स्वरूपा, परा कुण्डलिनीको जीवके साथ लयक्रमसे मोक्षके स्थान, सहस्रारके मध्यमें परंबिन्दुरूप, सबके अधिकारी शिवपदके निकटमें लेकर उसका चिन्तन करे।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें समाधि योगका निरूपण किया जा रहा है। **गुरु-पादपद्मयुगलालम्बी**—योगी सर्वदा गुरुका आश्रय ले। गुरुद्वारा निर्दिष्ट विधिसे कुण्ड-लिनीको सहस्रारस्थित शिवपदमें पहुँचाना होगा। बिना गुरुके बताये यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। प्रारम्भसे लेकर अन्तिम तक सदा गुरुका आश्रित बने रहे। अतः

बार-बार 'गुरु' शब्दका श्लोकोंमें कथन किया गया है। **समाधौ यतः**—यहाँपर 'समाधि' शब्दका अर्थ है—मोक्षप्राप्तिके लिए चित्तको बाह्य वस्तुसे हटाकर एकमात्र मोक्षके धाममें स्थित शिवमें उसे विलीन कर दे, अर्थात् ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपको प्राप्त करे। इस प्रकारसे कुण्डलिनीको शिवमें स्थापित करना तथा एकाकारका चिन्तन करना समाधिका अध्यास करना है। **योगीन्द्रः**—उपर्युक्त प्रकारसे जो कुण्डलिनी-योग करता है वही योगियोंमें सर्वश्रेष्ठ होता है। **सुधीः**—सुधीका अर्थ होता है विद्वान्। जब साधक गुरुके बताये गये मार्गसे कुण्डलिनीको जागृत कर उसे सहस्रारके मोक्ष-स्थानमें पहुँचा देता है तो उसका उत्थापनक्रम पूर्ण हो जाता है। एवं शिवके साथ अभेद चिन्तन करते हुए पुनः उसी क्रमसे कुण्डलिनीको ले आता है। अतः इस प्रकार-से वह साधक सिद्ध होकर कुण्डलिनी योगका सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हो जाता है। **इष्ट-फलप्रदाम्**—कुण्डलिनी जब जागृत हो जाती है तो इष्ट फलोंका प्रदान करती है। जब मूलाधारसे लेकर सहस्रार पर्यन्त आ जाती है तो साधकको स्वतः उन षट्चक्रोंके फल प्राप्त हो जाते हैं। इस शब्दसे यह बोध होता है कि मानसिक चिन्तन्तसे अर्थात् अभीष्टकी कामना करनेसे तत्काल कामना पूर्ण हो जाती है। अर्थात् साधक जो चाहे सो कर सकता है। **भगवतीम्**—भौतिक जगत्में अर्थात् व्यवहार जगत्में साधकको सम्पूर्ण सांसारिक साधन या पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। भगका निर्देश इस प्रकार किया गया है—समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य—ये छः भग कहलाते हैं। इन छहोंसे जो युक्त है वह भगवती कहलाती है। कुण्डलिनी इन छहोंसे युक्त है तो साधकके चाहने पर यह इन छहों भगोंको प्रदान कर सकती है। **चैतन्यरूपाम्**—कुण्डलिनी चैतन्यरूपा है। साधक जब मोक्षके लिए कुण्डलिनीको जागृत करता है तब उसका चैतन्य रूपसे ध्यान करता है; क्योंकि ब्रह्म अर्थात् परमरसशिव भी चैतन्य-स्वरूप है। चैतन्यस्वरूप परमरसशिवमें कुण्डलिनीको स्थापित करनेके लिए कुण्ड-लिनीका चैतन्यरूपसे ध्यान किया जाता है। इस प्रकारसे मोक्षार्थीके लिए कुण्डलिनी चैतन्यरूपा है। **परा**—कुण्डलिनी जब परमरसशिव अर्थात् परंबिन्दुमें पहुँच जाती है तब परा शक्ति भावको प्राप्त हो जाती है। अर्थात् वह परंबिन्दुस्वरूपा बन जाती है। इस प्रकारसे यह अन्तिम अवस्था है कुण्डलिनीकी। इसी रूपमें अर्थात् परंबिन्दु-स्वरूपाके रूपसे कुण्डलिनीका ध्यान साधक करे। निष्कर्ष रूपसे हम यह कह सकते हैं कि वह कुण्डलिनी इष्टफलको देनेवाली है अर्थात् भोग चाहने पर भगवती बनकर तथा मोक्ष चाहने पर चैतन्यरूपा बनकर परा अवस्था अर्थात् तुरीयावस्थाका प्रदान करती है। अत. अभीष्ट फलके लिए तत्तद्रूपसे उस कुण्डलिनीका चिन्तन करना चाहिए। **तां कुलकुण्डलिनीं जीवेन सार्द्धम्**—अनाहत पद्मके विवेचनमें कहा गया है कि दीपकलिकाकार हंस रूप जीवात्मा अनाहत पद्मकी कर्णिकामें स्थित है। इसी

जीवात्माको गुरुके द्वारा बतायी गयी विधिसे 'हसः' मन्त्रसे अथवा प्रणवसे मूलाधारमें ले जाया जाता है। उस जीवके साथ कुण्डलिनीको जागृत करके षट्चक्रोंका भेदन करते हैं। इस जीवके साथ कुण्डलिनी एक-एक चक्रका क्रमशः भेदन करती हुई सहस्रारमें पहुँच जाती है, वहींपर परबिन्दुमें परंबिन्दुस्वरूपा बनकर जीवभावको चैतन्यस्वरूप परंबिन्दुमें लीन करा देती है। **लयवशात्**—कुण्डलिनी लयक्रमसे ही जीवके साथ सहस्रारमें पहुँचती है। लय क्रम क्या है? कहते हैं—जब कुण्डलिनी जागृत होती है तो चक्रमें स्थित देवता, शक्ति आदिका लय बीजमें हो जाता है। वही बीज अपनी तन्मात्राके साथ कुण्डलिनीके देहमें सूक्ष्म रूपसे रहता है। जब कुण्डलिनी दूसरे पद्ममें जाती है तो पहले पद्मके बीज तथा दूसरे पद्मके देवता आदिका दूसरे पद्मके बीजमें लय हो जाता है। इस प्रकार कुण्डलिनीमें दूसरे पद्मका बीज तत्त्वके साथ सूक्ष्मरूपमें रहता है। इसी प्रकार क्रमसे षट्चक्रका लय हो जाता है। इसी क्रमको लयक्रम कहते हैं। इसका विशेष विवेचन हम भूमिकामें करेंगे। वहीं पर कृपया देखनेका कष्ट करें। **मोक्षे धामनि**—जरा, मरण, दुःख आदि भवबन्धनोंसे छुटकारा पाना ही मोक्ष है। जब तक जीवभाव उस परंबिन्दुस्वरूप ब्रह्ममें लीन नहीं हो जाता है अर्थात् जब तक ब्रह्मात्मैक्यबोध नहीं होता है, तब तक मुक्ति किसी भी प्रकार प्राप्त हो नहीं सकती है। परंबिन्दुका धाम—स्थान ही मोक्षका धाम है। जीवके साथ कुण्डलिनीको यहीं पहुँचाना है। कुण्डलिनीके पहुँचनेपर अभेद चिन्तनसे मुक्ति मिल जाती है अर्थात् जीवको मोक्षप्राप्ति यहीं पर होती है अतः यह मोक्षका धाम है। **शुद्धपद्मसदने**—शुद्धपद्म कहते हैं सहस्रारको। अन्य छ कमल दुःखमय हैं। अतः उन्हें शुद्ध नहीं कह सकते हैं। और भी वहाँपर पञ्चभूतादिका कार्य विशेष तौर पर होता रहता है; क्योंकि उनके बीजादिका वर्णन उन-उन कमलोंपर देखनेको मिलता है। किन्तु सहस्रार उपर्युक्त विषयोंसे भिन्न है। यहाँ जरा-मरण-दुःखादिकी स्थिति नहीं है। इसी सहस्रारमें सदन अर्थात् स्थान है परंबिन्दुका। इसीके पास कुण्डलिनीको पहुँचना है। **परे**—सबसे परे होनेके कारण इसे पर कहते हैं। इसीको परंबिन्दु भी कहते हैं। **शैवे**—इसी परंबिन्दुको शैव शिवपद कहते हैं तो अन्य परब्रह्म कहते हैं। साधकोंने इस स्थानको अपने-अपने इष्टका स्थान माना है। यही परमरस शिवपद है। **स्वामिनि**—वह परमपद सर्वाधिकारी पद है। इस पदपर पहुँचने पर साधक स्वामी बन जाता है अर्थात् सर्वशक्तिमान् बन जाता है। वही परंबिन्दुरूप शिवपद सर्वोच्च है। सहस्रारमें इसीका ही प्राधान्य है। यहींसे अन्य कमलोंका पोषण होता है अर्थात् यहींसे अमृतका क्षरण होकर अन्य कमल तथा उनमें स्थित देवता आदिका पोषण होता है, अतः यही सर्वोच्च, सर्वशक्तिमान्, स्वामी है। इसी स्थानपर कुण्डलिनी जब पहुँच जाती, तो यहींपर सूक्ष्मतारूप धारण करके अमृतका पान कर मोक्ष प्रदान करती है॥ ५२॥

### कुण्डलिनीके मूलाधारमें प्रत्यावर्त्तन करनेका प्रकार

**लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली**
**नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी।**
**तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं**
**योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्ड-भाण्डस्थितम् ॥ ५३ ॥**

---

पुनः वह सुन्दरी कुण्डलिनी परम शिवसे लाक्षा वर्णके समान परमामृतका पान कर नित्यानन्दके महोदयसे ब्रह्म नाड़ीके मार्गसे मूलाधारमें प्रवेश कर सुस्थिर हो जाती है। योगी योग-परम्परासे जानी गयी उस दिव्य अमृतकी धारासे स्थिरमति हो कर कुण्डलिनी रूपी पात्रमें स्थित सकल इष्ट दैवतोंका सन्तर्पण करे।

**विमर्श**––प्रस्तुत श्लोकमें कुण्डलिनीको मूलाधारमें वापस लानेकी विधि बतायी गयी है। **परशिवात् परमामृतं पीत्वा**–कुण्डलिनी जब परशिवमें पहुँच जाती है तब वह सूक्ष्मतारूप धारण कर एकाकार हो जाती है और यही एकाकार हो जाना ही परमामृतका पान करना है। एकाकारका चिन्तन करना ही पान करना है। जब यह अमृतका पान कर लेती है तब पुनः वापस आ जाती है। जिस प्रकार यह मूलाधारसे लयक्रमसे गयी थी उसी प्रकार पुनः सृष्टिक्रमसे ब्रह्म नाड़ीके मार्गसे मूलाधारमें आकर सुस्थिर हो जाती है। **लाक्षाभम्**––परमामृतको लाक्षाके वर्णके समान माना गया है; क्योंकि रजका सम्बन्ध रहता है। **नित्यानन्दमहोदयात्**––परमशिव नित्यानन्द-स्वरूप है। जब कुण्डलिनी उसमें तदाकार बन जाती है तो वह भी नित्यानन्दस्वरूपा बन जाती है। **योगपरम्पराविदितया**—वह दिव्य अमृतकी धारा योगपरम्परासे ही जानी जाती है। सामान्य रूपसे इसे जान नहीं सकते। **स्थिरमतिः**—योगी स्थिर बुद्धिवाला बन कर ही दैवतका सन्तर्पण कर सकता है। एकाग्र चिन्तनसे ही सब कुछ सम्भव हो सकता है; क्योंकि एक बारमें ही षट्चक्रके सभी देवताओंका तर्पण करना है। **ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम् दैवतम्**–ब्रह्माण्डका भाण्ड अर्थात् आधारपात्र कुण्डलिनी है; क्योंकि यही सकल उत्पन्न वस्तुओंका कारण है। और भी षट्चक्रके सभी देवता आदिका लय इसी कुण्डलिनीमें हुआ है। इसी कुण्डलिनीमें सभी देवताएँ स्थित होने-से कुण्डलिनी जब अमृतके पानसे परमानन्दरूपा बन जाती तब देवताओंका भी तर्पण हो जानेसे सब परमानन्दरूप हो जाते हैं। इस प्रकारसे सभी देवताओंका तर्पण हो जाता है। **सन्तर्पयेद्**—यहाँपर वस्तुत सन्तर्पणका अर्थ यह है कि सभी देवताओंका भी स्वात्मस्वरूपसे चिन्तन करे। **तद्दिव्यामृतधारया**—दिव्य अमृतकी धारासे तर्पण करना चाहिए। वस्तुतः अमृत कहते हैं मोक्षको। अमृतकी धारा अर्थात् अविरत ब्रह्मात्मक स्थितिका चिन्तन करना ही अमृतधाराका प्रवाह होना है और यही

## षट्चक्रयोगके क्रमके ज्ञानका फल

**ज्ञात्वैतत् क्रममुत्तमं यतमना योगी यमाद्यैर्युतः**
**श्रीदीक्षागुरु-पादपद्म-युगलामोदप्रवाहोदयात् ।**
**संसारे न हि जन्यते न हि कदा संक्षीयते संक्षये**
**नित्यानन्दपरम्पराप्रमुदितः शान्तः सतामग्रणीः ॥ ५४ ॥**

ब्रह्मभावमें स्थित होना ही मोक्ष है। यही अमृत है। निरन्तरता धारा है। इसी प्रकार-से योगी योगमार्गसे जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥

इस उत्तम क्रमको जान कर समाधिमें अभ्यस्त योगी यम आदिसे युक्त होकर, श्रीदीक्षागुरुके पाद-पद्मयुगलके अवलम्बनसे अखण्ड आनन्दका उदय होनेसे संसारमें न तो वह जन्म लेता है और न तो किसी भी प्रकार प्रलयमें नष्ट होता है। वह नित्यानन्द परम्परारूपी हर्षसे युक्त हो जाता है, शान्त हो जाता है तथा सज्जनोंमें अग्रगण्य हो जाता है।

**विमर्श**—प्रस्तुत श्लोकमें षट्चक्र योगके क्रम-ज्ञानके फलका कथन किया जा है। **श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयात्**—जब योगी षट्चक्रके क्रमको जान कर श्रीदीक्षागुरुके पादपद्मयुगलका अवलम्बन लेकर योगाभ्यास करता है, उसके लिए अखण्ड आनन्दके प्रवाहका उदय होता है। अर्थात् उसकी योगसिद्धि हो जाती है। यहाँपर गुरुकी सेवा तथा श्रद्धाको विशेष महत्त्व दिया गया है। बिना गुरुके ज्ञान नहीं होता है। गुरु प्रारम्भिक ज्ञान प्रदान करते हैं। अतः दीक्षागुरुका सबसे ऊँचा स्थान है। दीक्षागुरुके न रहने पर अन्य सिद्धयोगियोंको भी गुरुके रूपमें स्वीकार कर उनसे योगज्ञान प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकारसे योगी जब सिद्ध हो जाता है तब उसे योगके फल प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं—(१) **संसारे न हि जन्यते**—योगीका योग सिद्ध हो जाने पर उसे मोक्षप्राप्ति हो जाती है। मोक्षप्राप्ति होने पर जन्मके कारण-का विनाश हो जाता है। अतः योगी संसारमें पुनः जन्म नहीं लेता है। जन्मबन्धनसे वह मुक्त हो जाता है। जब जन्म नहीं होगा तो शारीरिक यातनाएँ भी उसकी नहीं हो सकती हैं। **न हि कदा सङ्क्षये सङ्क्षीयते**—जब योगीका योग सिद्ध हो जाता है तो उसकी मृत्यु इच्छाधीन हो जाती है। वह चाहेगा तो अमर होकर संसारमें विच-रण कर सकेगा; क्योंकि वह कालजयी हो जाता है। जब यह संसार सङ्क्षयमें अर्थात् प्रलयकालमें विनष्ट हो जाता है तो संसारके सभी प्राणी विनष्ट हो जाते हैं। किन्तु यह योगी चाहेगा तो प्रलयकालमें भी विनष्ट नहीं होगा। यही विशेषता है योगी-में वेदान्तके ज्ञानी पुरुषकी अपेक्षा। ज्ञानी पुरुषके प्रारब्धकर्म समाप्त हो जाने पर स्वतः शरीरपात हो जाता है, किन्तु योगीका शरीरपात नहीं होता है। शरीर-पात उसका इच्छाधीन है। उपर्युक्त दोनों फल शरीरसम्बन्धी हैं। **नित्यानन्दपरम्परा-**

षट्चक्रश्लोकके अध्ययनका फल

योऽधीते निशि सन्ध्ययोरथ दिवा योगी स्वभावे स्थितो
मोक्षज्ञाननिदानमेतदमलं शुद्धञ्च गुप्तं परम्।
श्रीमत् श्रीगुरुपादपद्मयुगलालम्बी यतान्तर्मना-
स्तस्यावश्यमभीष्टदैवतपदे चेतो नरीनृत्यते ॥ ५५ ॥

इति षट्चक्रनिरूपणम्

----:०:----

**प्रमुदितः**--वह योगी योगसिद्ध हो जाने पर अत्यन्त हर्षयुक्त हो जाता है। वह आनन्दित हो जाता है। उसका आनन्द—हर्ष किस प्रकारका होता है ? कहते हैं— अखण्ड नित्य आनन्द, जिसमें दुःखका लेशमात्र गन्ध नहीं रहता है। अतः वह योगी सर्वदा संसारमें प्रसन्नचित्त दीखाई देता है। यह फल योगीका मानसिक है। मानसिक फलसे शारीरिक उत्फुल्लता बनी रहती है। (४) **शान्तः**--वह सिद्धयोगी शान्त रहता है; क्योंकि उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। पानेको कुछ भी शेष नहीं है। वह पूर्ण है। जहाँ पूर्णता है वहाँ शान्ति है। जहाँ अपूर्णता है अर्थात् और कुछ पानेकी लालसा है वहाँ अशान्ति है। अतः वह योगी सांसारिक पुरुषके समान सांसारिक दस्तुकी प्राप्तिके लिए भाग-दौड़ नहीं करता है। वह शान्त है। (५) **सतामग्रणीः**—वह योगी मानव समाजमें भी श्रेष्ठ कहलाता है। समाजमें सज्जन पुरुष श्रेष्ठ कहलाते हैं। इन सज्जनोंमें भी वह सर्वोच्च कहलाता है, अग्रगण्य हो जाता है। इस प्रकार सिद्धयोगीकी स्थिति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक सभीरूपसे अच्छी रहती है ॥ ५४ ॥

श्री गुरुके पादपद्म युगलका आश्रय लेता हुआ, अन्तरात्मामें मनको स्थिर करता हुआ, अपने आत्मभावमें स्थित रहकर जो योगी दिवस, सन्ध्या, रात्रि समयमें मोक्षज्ञानके निदानभूत, पवित्र, शुद्ध, गुप्त, ऐश्वर्यप्रद तथा श्रेष्ठ इस क्रमका अध्ययन करता है, अवश्य ही उसका चित्त अपने इष्ट देवताके पदमें नृत्य करता है।

**विमर्श**--प्रस्तुत श्लोकमें षट्चक्रनिरूपण क्रमके पाठके फलोंका कथन किया जा रहा है। **श्रीगुरुपादपद्मयुगलालम्बी**--आध्यात्मिक मार्गका दर्शक गुरु ही हो सकता है; क्योंकि उसने साधनासे सिद्धिको प्राप्त कर चुका है। जिसने सिद्धि नहीं प्राप्त की है अर्थात् केवल सिद्धियोंके बारेमें सैद्धान्तिक ज्ञान मात्र प्राप्त किया है तो वह गुरु नहीं हो सकता है। प्रस्तुत षट्चक्रके क्रमका अध्ययन पुस्तक मात्रसे कर लेनेसे अभीष्ट फल प्राप्त नहीं हो जाता है। अतः अध्येताको सख्त निर्देश दिया गया है कि वह श्रीगुरुके चरणकमल युगलका आश्रय ले। ग्रन्थकार बार-बार इसी बातका निर्देशन देते रहे हैं। **यतान्तर्मनाः**—योगीके लिए एक और योग्यताकी

आवश्यकता है। अपनी अन्तरात्मामें मनको स्थिर अवश्य करे। मन स्वभावतः चञ्चल है। इसे प्रयत्नपूर्वक अन्तरात्मामें स्थिर करे। जब तक योगी एकाग्रचित्त नहीं हो जाता है उसका योग सिद्ध नहीं होगा। अतः बाह्य विषयोंसे मनको हटाकर अन्तरात्मामें स्थिर करे। **स्वभावे स्थितः**—स्वका अर्थ है—**आत्मा**। स्वभाव अर्थात् आत्मभावमें स्थित रहना अनिवार्य है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, सुख आदि धर्म आत्माके नहीं हैं। सुख-दुःख आदि जो धर्म हैं वे आत्मासे भिन्न अन्य पदार्थके धर्म हैं। आत्मासे भिन्न देह आदि हैं। देह आदि—देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इत्यादि हैं। जीव देह आदिके धर्मको अपना धर्म मान कर उन उन धर्मोंसे उत्पन्न परिणामका स्वीकार करता है, तो कभी सुखी, तो कभी दुःखी होता है। इन सबसे आत्माको पृथक् मानकर उस आत्मभावमें स्थित रहना चाहिए, जिससे नित्यानन्दकी प्राप्ति होती है। **योगी**—योगी शब्दके प्रयोगसे यह निश्चित है कि साधकको योगाभ्यासी होना चाहिए, यम-नियम आदिका सम्यक् रूपसे अभ्यस्त होना चाहिए। **निशि सन्ध्ययोरथ दिवा**—निशाका अर्थ है रात। दिवाका अर्थ है दिन। सन्ध्याका अर्थ है—सन्ध्या समय। इन तीनों शब्दोंके प्रयोगसे यह निर्देशन मिलता है कि किसी भी समय पाठ किया जा सकता है। सन्ध्या कालसे तीनों सन्ध्याकालोंका बोध होता है। पाठके लिए समयका प्रतिबन्ध नहीं है। **मोक्षज्ञाननिदानम्**—ब्रह्मात्मैक्यबोध ही मोक्षज्ञान है। जब जीव और ब्रह्मका भेदज्ञान समाप्त हो जाता है तब मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस अभेद ज्ञानका निदान यह षट्चक्रक्रमज्ञान है। षट्चक्रके क्रमको जानकर उसका अभ्यास करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतः इसे मोक्षज्ञानका निदान कहा गया है। यह अत्यन्त शुद्ध, दोष रहित, गुप्त, ऐश्वर्यप्रद तथा श्रेष्ठ है। **अभीष्टदैवतपदे**—साधक जिस रूपसे सहस्रारस्थित देवकी उपासना करता है उस रूपसे उसे वह देव प्राप्त होता है। अर्थात् सहस्रारस्थित देवताके स्थानपर उसका चित्त सर्वदा रमण करता रहता है। अन्तमें साधक अभीष्ट देवस्वरूपताको प्राप्त करता है। यही अन्तिम लक्ष्य है ॥ ५५ ॥

इस प्रकारसे श्रीपूर्णानन्द यति द्वारा विरचित 'षट्चक्रनिरूपण'में गोस्वामी प्रह्लाद गिरि कृत सविमर्श 'प्रह्लाद' हिन्दीव्याख्या समाप्त हुई।

# परिशिष्ट

प्रत्येक आधुनिक विचारकके मनमें षट्चक्रके आधुनिक विवेचनके ज्ञानकी उत्सुकता रहती है। पहले मेरे मनमें भी अनेक प्रश्न उठते थे। पूज्य परम गुरुवर्य म०म० पं० रामेश्वर झा जीसे भी मैंने आधुनिक विषयक प्रश्न किये थे। उन्हींके अनुसार षट्चक्रका आधुनिक विवेचन किया जा रहा है—

**षट्चक्र व कमल :—**

स्थूल शरीर अन्नरससे बना हुआ है। मानव शरीरमें बहत्तर हजार नाडियाँ स्थित हैं। जिस प्रकार कमलकी फूलके केन्द्रसे अनेक दल निकलकर उससे जूडे रहते है, उसी प्रकार नाडियाँ भी एक केन्द्रसे निकलकर शरीरके विभिन्न भागमें गयी हैं। उनकी स्थिति ठीक कमल अर्थात् पद्मकी तरह होती है। अतः इनके केन्द्रस्थान व आकार विशेषको कमल कहा गया है। इस प्रकार शरीरमें छ कमल हैं—जैसे—( १ ) मूलाधार, ( २ ) स्वाधिष्ठान, ( ३ ) मणिपूर, ( ४ ) अनाहत, ( ५ ) विशुद्ध तथा ( ६ ) आज्ञा। इनका निर्माण चक्रके समान होनेसे इन्हें षट्चक्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त सहस्रारको भी सम्मिलित कर अर्थात् सहस्रारको सहस्र-दल कमल मानकर आठकमल गिने गये हैं। इन चक्रोंको समझनेके लिए परम गुरु-वर्यजीने रेल इञ्जनका उदाहरण दर्शाया था। यह उदाहरण युक्ति-युक्ति तथा स्पष्ट है। इसे सभी स्थानोंपर प्रयुक्त करें।

**कमलके दल :—**

नाडियाँ गुच्छ-गुच्छ बनकर केन्द्रसे निकली हुई हैं। एक केन्द्रसे नाडियोंके जितने गुच्छ निकलते हैं वे उतने दल कहलाते हैं। अतः इसीके अनुसार पद्म द्विदल, चतुर्दल, षड़दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा सहस्र दल होते हैं।

**दलोंके अक्षर :—**

वायुके आघातसे जिस गुच्छसे जो अक्षर निकलता है वही उस दलका अक्षर है। षट्चक्रके पचास दलोंपर स्थित अक्षरोंकी संख्या 'अ' से 'ह' तक पचास हैं। सहस्रदलोंके बीस-बीस दलोंसे एक-एक अक्षर निकलता है। इसप्रकार पचास अक्षर सहस्रदलपर भी स्थित हैं।

**दलोंके तत्त्व :—**

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये पाँच तत्त्व हैं। शरीरके भीतर रहकर ये पाँच तत्त्व शरीरका निर्माण करते हैं। इन पाँचों तत्त्वोंके स्थान इस

प्रकारसे शरीरके अन्दर निर्धारित हैं—( १ ) चतुर्दलमें पृथिवीतत्त्व, ( २ ) षड्दलमें जलतत्त्व, ( ३ ) दशदलमें अग्नितत्त्व, ( ४ ) द्वादशदलमें वायुतत्त्व तथा ( ५ ) षोडशदलमें आकाशतत्त्व। इनके अतिरिक्त द्विदलमें महत्तत्त्व तथा सहस्रदलको तत्त्वहीन माना गया है।

**तत्त्वोंके बीज :—**

पाँचों तत्त्वोंके पाँच बीज अक्षर हैं, जैसे—पृथ्वीका लँ, जलका वँ, अग्निका रँ, वायुका यँ तथा आकाशका हँ। कमलोंमें तत्त्वका निर्माण होता रहता है। जिस तत्त्वके निर्माणमें वायुके आघातसे जो शब्द निकलता है वही उस तत्त्वका बीज है। जब पृथ्वी तत्त्वका निर्माण चतुर्दलमें होता है तब वायुके आघातसे लँ लँ लँ····शब्द होता है। इसी प्रकार षड्दलमें जल तत्त्वके निर्माणके समय वायुके आघातसे वँ वँ वँ····शब्द, दशदलमें अग्नि तत्त्वके निर्माणमें वायुके आघातसे रँ रँ रँ····शब्द, दाद्वशदलमें वायु तत्त्वके निर्माणमें वायुके आघातसे यँ यँ यँ····शब्द, षोडशदलमें आकाश तत्त्वके निर्माणमें वायुके आघातसे हँ हँ हँ····शब्दका उच्चारण होता है। द्विदलमें प्रणव बीज 'ॐ'का उच्चारण होता है। सहस्रदलमें तत्त्वोंकी स्थिति न होनेसे वहाँपर विसर्ग ( : ) ही बीज है।

**बीजोंके वाहन :—**

भिन्न-भिन्न कमलोंपर वायु जिस तत्त्वके साथ मिलकर जिस पशुकी चालके समान चलता है वही उस वाहनका बीज है। जैसे—लँ बीजका वाहन ऐरावत हाथी, वँ बीजका वाहन मकर, रँ बीजका बाहन मेष, यँ बीजका वाहन मृग तथा हँ बीजका वाहन हाथी। चतुर्दलमें वायु पृथ्वी तत्त्वके साथ मिलकर ऐरावत हाथीके समान चलता है अतः इसका वाहन ऐरावत हाथी है। इसी प्रकार वायु षड्दलमें जल तत्त्वके साथ मिलकर मकरके समान चलता है अतः इसका वाहन मकर है। दशदलमें वायु अग्नि तत्त्वके साथ मिलकर मेषके समान चलता है अतः इसका वाहन मेष है। द्वादशदलमें वायु वायु तत्त्वके साथ मिलकर मृगके समान चलता है, अतः इसका वाहन मृग है। षोडश दलमें वायु आकाश तत्त्वके साथ मिलकर हाथीके समान चलता है अतः इसका वाहन हाथी है। द्विदलमें केवल नाद मात्र हो रहा है अतः 'ॐ'का वाहन अनाहत नाद ही है। सहस्रदलमें विसर्ग ( : ) का वाहन बिन्दु ( ˙ ) है। यहाँपर सदा गति-शून्यता रहती है।

**दलोंके वर्ण :—**

रुधिरके अरुण वर्णपर भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके प्रतिबिम्ब पड़नेसे जिस स्थानपर रुधिरका जैसा वर्ण दिखाई पड़ता है उसी दलका वर्ण वही होता है, जैसे—चतुर्दलका

वर्ण रक्त, षड्दलका वर्ण सिन्दूर, दशदलका वर्ण नील, द्वादशदलका वर्ण लाल तथा षोडशदलका वर्ण धूम्र होता है। रुधिरके अरुण वर्णपर पृथ्वी तत्त्वके प्रतिबिम्ब पड़नेपर चतुर्दलका वर्ण रक्त होता है। इसी प्रकार रुधिरके अरुण वर्णपर जल तत्त्वके प्रतिबिम्ब पडनेपर षड्दलका वर्ण सिन्दूर, रुधिरके अरुण वर्णपर अग्निके प्रतिबिम्ब पडनेपर दशदलका वर्ण नील, रुधिरके अरुण वर्णपर वायु तत्त्वके प्रतिबिम्ब पडनेपर द्वादशदलका वर्ण लाल तथा रुधिरके अरुणवर्णपर आकाश तत्त्वके प्रतिबिम्ब पडनेपर षोडशदलका वर्ण धूम्र दिखाई पड़ता है। द्विदलमें ज्योतिका अवस्थान है अतः रुधिरके अरुण वर्णपर ज्योतिके प्रतिबिम्ब पडनेसे द्विदलका वर्ण श्वेत है तथा सहस्रारमें शून्य तत्त्वके कारण रुधिर शुभ्र दिखाई पड़ता है।

**कमलोंके यन्त्र :—**

कमलोंमें नाडियाँ वायुकी सहायतासे भिन्न-भिन्न प्रकारसे चक्कर खाती हुई जिन आकारोंको बनाती हैं उन आकारोंको यन्त्र कहते हैं। जैसे—चतुर्दलका यन्त्र चतुरस्र, षड्दलका अर्द्धचन्द्राकार, दशदलका त्रिकोण, द्वादशदलका षट्कोण, षोडशदलका वर्त्तुलाकार तथा द्विदलका लिङ्गाकार एवं सहस्रदलका यन्त्र पूर्णचन्द्र निराकार है।

**कमलोंके देव एवं देवी :—**

ब्रह्म स्वयं कार्य नहीं करता है। उसके विशेष अंशसे कार्य होते हैं। इन्हीं विशेष अंशोंको देव या उसकी शक्तिको देवी कहते हैं। कमलोंमें जिस देव तथा देवीके अंशसे जो कार्य होता है उस कमलमें उन देव तथा देवीका स्थान कहा गया है। इनका विशेष निर्देश विमर्शमें किया गया है। उपर्युक्त षट्चक्रोंका हमने विशेषरूपसे ग्रन्थकी भूमिकामें निरूपण किया है। पाठक उसका अवलोकन करें। इति शिवम्।

दीपावली
वि० सं० २०४५ —प्रह्लाद
वाराणसी

कृष्णदास अकादमी
वाराणसी